ट्रैक्ट नं० ८

जैनधर्म और विधवा विवाह

(प्रथम भाग)

लेखक :—

श्रीयुत "सव्यसाची"

प्रकाशक :—

दौलतराम जैन, मंत्री
जैन बाल विधवा सहायक सभा
दरीबा कलाँ, देहली

शान्तिचन्द्र जैन के प्रबन्ध से
"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस, बिजनौर में छपी।

प्रथम बार	पौष	मूल्य
२०००	वीर नि० सम्वत् २४५५	=)।

* धन्यवाद *

इस ट्रैक्ट के छपवाने के लिये निम्न लिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की है, जिनको सभा हार्दिक धन्यवाद देती है। साथ ही समाज के अन्य स्त्री पुरुषों से निवेदन करती है कि वे भी निम्न श्रीमानों का अनुकरण करके और अपनी दुखित बहिनों पर तरस खाकर इसी प्रकार सहायता प्रदान करने की उदारता दिखलावें :—

१०) लाला दौलतराम जैन, कटरा गौरीशंकर देहली।
१०) लाला केसरीमल श्रीराम चावल वाले देहली।
१०) लाला शिखरचन्द्र जैन।
५) लाला कश्मीरीलाल पटवारी बदखांवाले डाकखाना छपरोली।
१०) मुसद्दीलाल लेखराज कसेरे मेरठ छावनी।
१०) गुप्तदान (एक जौहरी)।
१०) गुप्तदान (एक बाबू साहिब)।
१०) गुप्तदान (एक जौहरी)।
१०) गुप्तदान (एक ठेकेदार)।
५) गुप्तदान (एक सराफ़)।
१०) गुप्तदान (एक गोटेवाले)।
१०) ला० झम्मूलाल शिवसिंहराय जैनी, शाहदरा देहली

११०) कुल जोड़

नम्र निवेदन

यह पाठकों से छिपा नहीं है कि विधवा विवाह का प्रश्न दिन २ देश व्यापी होता जा रहा है। एक समय था कि जब विधवा विवाह का नाम लेने ही में लोग भय खाते थे: आज वह समय आगया है कि सब से पीछे रहने वाले सनातन धर्मी और जैन धर्मी बड़े २ विद्वान भी इसका प्रचार करने में तन मन और धन से जुटे हुए दिखाई पड़ते हैं। यह देश के परम सौभाग्य की बात है कि अब सर्व साधारण को विधवा विवाह के प्रचार की आवश्यक्ता का अनुभव हो चला है। यद्यपि कहीं २ थोड़ा २ इसका विरोध भी किया जा रहा है, लेकिन सभ्य और शिक्षित समाज के सामने उस विरोध का अब कोई मूल्य नहीं रहा है। जैन समाज में भी यह प्रश्न ज़ोरों से चल रहा है। कुछ लोग इसका विरोध कर रहे हैं। इस विषय पर निर्णय करने के लिये जैन समाज के परम विद्वान, अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महा सभा द्वारा 'विद्या वारिधि' की पदवी से विभूषित श्रीमान पं० चम्पतराय जी जैन बार-एट्-ला, हरदोई ने जैन समाज के सामने कुछ प्रश्न हल करने को श्रीमान साहित्य रत्न पं० दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ द्वारा सम्पादित सुप्रसिद्ध पत्र "जैन जगत" (अजमेर) में प्रकाशित कराये थे। इन प्रश्नों को श्रीयुत "सव्यसाची" महोदय ने इसी पत्र में बड़ी योग्यता से हल किया है कि जिसका उत्तर देने में लोग अब तक असफल रहे हैं। हम चाहते हैं कि समझदार जैन समाज पक्षपात को त्याग कर श्रीयुत 'सव्यसाची' की विद्वत्ता से लाभ उठावें। अतः

"श्री बैरिस्टर साहब के प्रश्नों का उत्तर" जैन जगत (अजमेर) से उद्धत करके ट्रैक्ट रूप में जैन समाज के लाभार्थ प्रकाशित किया जाता है। जो जैनी भाई विधवा विवाह के प्रश्न से डर कर दूर भागते हैं उनको चाहिये कि वे कृपा करके इस ट्रैक्ट को अवश्य पढ़ लेवें। आशा की जाती है कि जो जैन बन्धु ज्ञानावरणी कर्मों के उदय से "विधवा विवाह" को बुरा समझते हैं और समाज सुधार के शुभ कार्य में अन्तराय डाल कर पाप कर्म के भागी बनते हैं, उनको इसकी स्वाध्याय कर लेने पर विधवा विवाह की वास्तविकता का सच्चा स्वरूप सहज ही में दर्पणवत् स्पष्ट दीखने लग जावेगा।

श्रीयुत "सव्य साची" महोदय द्वारा दिये हुए उत्तर को जैन जगत में पढ़कर कल्याणी नामक किसी बहन की इसी पत्र में एक चिट्ठी छपी है। उस चिट्ठी में बहन कल्याणी ने श्री 'सव्य साची' जी से कुछ प्रश्न भी किये हैं। इन प्रश्नों का उत्तर भी श्री० 'सव्यसाची' जी ने उक्त 'जैन जगत' में छपवाये हैं। लिहाज़ा, बहन कल्याणी का पत्र व श्रीयुत सव्य साची द्वारा दिया हुआ इसका उत्तर भी इसी ट्रैक्ट में 'जैन जगत' से लेलिया गया है। जो बातें पूर्व में रह गई थीं, वे प्रश्न करके बहन कल्याणी ने लिखवादी हैं।

यह बात नहीं है कि यह ट्रैक्ट केवल जैनियों के ही लिये लाभदायक हो, बल्कि जैनेतर बन्धु भी इसमें प्रकाशित विधवा विवाह की समर्थक युक्तियों से लाभ उठाकर विरोधियों को मुँह तोड़ उत्तर दे सकते हैं। किस उत्तमता के साथ धर्म चर्चा की गई है, यह बात इसके स्वाध्याय से ही मालूम होगी।

—मन्त्री

जैनधर्म और विधवा विवाह

प्रश्न (१)—विधवा विवाह से सम्यग्दर्शन का नाश हो जाता है या नहीं? यदि होता है तो किसका? विवाह करने कराने वालों का या पूरी जाति का?

उत्तर—विधवा विवाह से सम्यग्दर्शन का नाश नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन अपने आत्मस्वरूप के अनुभव को कहते हैं। आत्मस्वरूप के अनुभव का, विवाह शादी से कोई ताल्लुक नहीं। जब सातवें नरक के नारकी और पाँचों पाप करने वाले प्राणियों का सम्यग्दर्शन नष्ट नहीं होता तब, विधवा विवाह तो ब्रह्मचर्याणुव्रत का साधक है उससे सम्यक् दर्शन का नाश कैसे होगा? विधवा विवाह अप्रत्याख्याना-वरण कषाय के उदय से होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय से सम्यग्दर्शन का घात नहीं हो सकता।

कहा जा सकता है कि विधवा विवाह को धर्म मानना तो मिथ्यात्व कर्म के उदय से होगा, और मिथ्यात्व कर्म सम्यग्दर्शन का नाश करदेगा। इसके उत्तर में इतना कहना बस होगा कि यों तो विधवा विवाह ही क्यों, विवाह मात्र धर्म नहीं है: क्योंकि कोई भी प्रवृत्तिरूप कार्य जैन शास्त्रों की अपेक्षा धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि कहा जाय कि विवाह सर्वथा प्रवृत्यात्मक नहीं है किन्तु निवृत्यात्मक भी है, अर्थात् विवाह से एक स्त्री में राग होता है तो संसार की बाकी सब

स्त्रियों से विराग भी होता है। विराग अंश धर्म है, जिसका कारण विवाह है। इस लिए विवाह भी उपचार से धर्म कहलाता है। तो यही बात विधवा विवाह के बारे में भी है। विधवा विवाह से भी एक स्त्री में राग और बाकी सब स्त्रियों में विराग पैदा होता है। इस लिये कुमारी विवाह के समान विधवा विवाह भी धर्म है।

यदि कहा जाय कि शास्त्रों में तो कन्या का ही विवाह लिखा है, इस लिए विधवा विवाह, विवाह ही नहीं हो सक्ता, तो इसका उत्तर यह है कि शास्त्रों में विवाह के सामान्य लक्षण में कन्या शब्द का उल्लेख नहीं है। राजवार्तिक में लिखा है—"सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः"—साता वेदनीय और चारित्र मोहनीय के उदय से "पुरुष का स्त्री को और स्त्री का पुरुष को स्वीकार करना" विवाह है। ऊपर जिस सिद्धान्त से विवाह धर्म-साधक माना गया है, उसी सिद्धान्त से विधवा विवाह भी धर्मसाधक सिद्ध हुआ है। इसलिए चरणानुयोग शास्त्र ऐसी कोई आज्ञा नहीं दे सकता जिसका समर्थन करणानुयोग शास्त्र से न होता हो। राजवार्तिक के भाष्य में तथा अन्य ग्रंथों में जो कन्या शब्द का उल्लेख किया गया है, वह तो मुख्यता को लेकर किया गया है। इस तरह मुख्यता को लेकर शास्त्रों में सैंकड़ों शब्दों का कथन किया गया है। इसी विवाह प्रकरण में विवाह योग्य कन्या का लक्षण क्या है, वह भी विचार लीजिए। त्रिवर्णाचार में लिखा है—

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम्।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः॥

अर्थात्—दूसरे गोत्र में पैदा हुई, नीरोग, अच्छे लक्षण वाली, आयुष्मती, गुणशालिनी और पिता के द्वारा दी हुई कन्या को वरण करे।

यदि कन्या बीमार हो, या वह जल्दी मर जाय, तो क्या उसका विवाह अधर्म कहलायगा? जिस कन्या का पिता मर गया हो तो उसे कौन देगा और क्या उसका विवाह अधर्म कहलायगा? यदि यह कहा जाय कि पिता का तात्पर्य गुरुजन से है तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि कन्या का तात्पर्य विवाह योग्य स्त्री से है? कुमारी के अतिरिक्त भी कन्या शब्द का प्रयोग होता है। दि० जैनाचार्य श्रीधरसेनकृत विश्वलोचन कोष में कन्या शब्द का अर्थ कुमारी के अतिरिक्त स्त्री सामान्य भी किया गया है। 'कन्या कुमारिका नार्यो राशिभेदौषधीभिदोः।' (विश्वलोचन, यान्तवर्ग, श्लोक ५ वाँ)। इसी तरह पद्मपुराण में भी सुग्रीव की स्त्री सुतारा को उस समय कन्या कहा गया है जब कि वह दो बच्चों की माँ हो गई थी। 'केनोपायेन तां कन्यां लप्स्ये निर्वृतिदायिनीं ॥'

सुतारा को कन्या कहने का मतलब यह है कि साहसगति विद्याधर उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था। धर्मसंग्रह श्रावकाचार में देवाङ्गनाओं को भी कन्या कहा है—

एवं चतुर्थ वीथीषु नृत्यशालादयः स्मृताः ।
परमत्र प्रनृत्यंति वैमाना मरकन्यकाः ॥

देवाङ्गनाओं को कन्या इसी लिए कहा जाता है कि वे एक देव के मरने पर दूसरे देव की पत्नी बन सकती हैं।

अगर कन्या शब्द का अर्थ कुमारी ही रक्खा जावे

तो दीक्षान्वय क्रिया में स्त्री पुरुष का पुनर्विवाह संस्कार कैसे होगा ?

> पुनर्विवाह संस्कारः पूर्वः सर्वोस्य संमतः ।
> सिद्धार्चनां पुरस्कृत्य पत्न्याः संस्कारमिच्छतः ।
> —आदिपुराण ३९ वाँ पर्व । ६० वाँ श्लोक ।

अर्थात्—जब कोई अजैन पुरुष जैनधर्म की दीक्षा ले तो उसका और उसकी स्त्री का फिर विवाह करना चाहिए। जो लोग कन्या का अर्थ कुमारी ही करेंगे उनके मत से उस पुरुष की पत्नी का विवाह कैसे होगा ? क्या भगवज्जिनसेनाचार्य के द्वारा बताया गया पुनर्विवाह भी अधर्म है ?

इससे साफ़ मालूम होता है कि शास्त्रों में कन्या शब्द कुमारी के लिए नहीं, किन्तु विवाह योग्य स्त्री के लिये आया है। शास्त्रों में विवाह का कथन आदर्श या बहुलता को लेकर किया गया है। सागारधर्मामृत में कन्या के लिए निर्दोष विशेषण दिया गया है। निर्दोष का अर्थ किया है—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार दोषों से रहित। परन्तु ऐसी बहुत थोड़ी ही कन्याएं होंगी जिनमें सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार दोष न हो। तो क्या उनका विवाह धर्म विरुद्ध कहलायगा ? इस लिये जिस प्रकार कन्या के स्वरूप में उसके अनेक विशेषण अनिवार्य नहीं हैं, उसी प्रकार विवाह के लक्षण में भी कन्या का उल्लेख अनिवार्य नहीं है। क्योंकि कन्या और विधवा में करणानुयोग की दृष्टि में कोई अन्तर नहीं है, जिसके अनुसार कन्या और विधवा के लिये जुदी जुदी दो आज्ञाएं बनाई जायं। जो लोग कन्या शब्द को अनुचित

महत्व देना चाहते हों उनको समझना चाहिये कि कन्या शब्द का अर्थ कुमारी नहीं, किन्तु विवाह योग्य स्त्री है। इस तरह भी विधवा विवाह आगम की आज्ञा के प्रतिकूल नहीं है। इस लिये उसका मिथ्यात्व के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है जिससे वह सम्यग्दर्शन का नाशक माना जा सके।

प्रश्न (२)—पुनर्विवाह करने वाले सम्यक्त्वी होने पर स्वर्ग जा सकते हैं या नहीं ?

उत्तर—जा सकते हैं। जब पुनर्विवाह ब्रह्मचर्य अणुव्रत का साधक है तब उससे स्वर्ग जाने में क्या बाधा है ? स्वर्ग तो मिथ्यादृष्टि भी जाते हैं, फिर विधवा विवाह करने वाला तो अपनी पत्नी के साथ रहकर सम्यग्दृष्टि और छट्वीं प्रतिमा तक देशव्रती श्रावक भी हो सकता है और पीछे मुनिव्रत ले ले तो मोक्ष को भी जा सकता है। विधवा विवाह मोक्षमार्ग में उतना ही बाधक है जितना कि कुमारी विवाह। स्वर्ग में दोनों ही बाधक नहीं हैं। दोनों से सोलहवें स्वर्ग तक जा सकता है। राजा मधुने चन्द्राभा को रख लिया था, फिर भी वह मरकर सोलहवें स्वर्ग गई। पहिले प्रश्न के उत्तर से इस प्रश्न के उत्तर पर पूरा प्रकाश पड़ जाता है

प्रश्न (३)—विधवा विवाह से तिर्यञ्च और नरक गति का बंध होता है या नहीं ?

उत्तर—विधवाविवाह से तिर्यञ्च और नरक गति का बंध कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि तिर्यञ्च गति और नरक गति अशुभ नाम कर्म के भीतर शामिल हैं। अशुभ नाम कर्म के बंध के कारण योग वक्रता और विसंवादन हैं।"योगवक्रता

विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः" अर्थात् मन, वचन, काय की कुटिलता से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है। विधवा विवाह में मन, वचन, काय की कुटिलता का कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि प्रत्येक बात की सफ़ाई अर्थात् सरलता है। इस लिए अशुभ नाम कर्म का बन्ध नहीं हो सकता। हाँ, जो विधवा-विवाह के विरोधी हैं, वे अधिकतर नरकगति और तिर्यञ्चगति का बन्ध करते हैं, क्योंकि उन्हें विसंवादन करना पड़ता है। विसंवादन से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है। राजवार्तिक में विसंवादन का खुलासा इस प्रकार किया है—

सम्यगभ्युदयनिःश्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवर्तमानमन्यं कायवाङ्मनोभिर्विसंवादयति मैवं कार्षीरेवं कुर्विति कुटिलतया प्रवर्तनं विसंवादनं।

अर्थात् कोई मनुष्य स्वर्गमोक्षोपयोगी क्रियाएँ कर रहा है उसे रोकना विसंवाद है। यह तो सिद्ध ही है कि विधवा विवाह अणुव्रत का साधक होने से स्वर्गमोक्षोपयोगी है। जो विधवाएं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकती हैं, उन्हें विधवा विवाह के द्वारा अविरति से हटा कर देशविरति दीक्षा देना है। इस दीक्षा को जो रोकते हैं, धर्म विरुद्ध बताते हैं, बहिष्कारादि करते हैं, वे पूज्यपाद अकलंक देव आदि के अभिप्राय के अनुसार विसंवाद करते हैं जिससे नरकगति और तिर्यञ्चगति का बन्ध होता है।

यदि नरकगति और तिर्यंचगति से नरकायु और तिर्यंचायु की विवक्षा हो तो इनका भी बन्ध विधवा विवाह से नहीं हो सकता; क्योंकि बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह से नरकायु का बन्ध होता है। विधवा विवाह में कुमारी विवाह

की बनिस्बत आरम्भ और परिग्रह अधिक है ही नहीं, तब वह नरकायु का कारण कैसे हो सकता है? तिर्यञ्चायु के बन्ध का कारण है मायाचार। सो मायाचार तो विधवा विवाह के विरोधी ही बहुत करते हैं—उन्हें गुप्त पाप छिपाना पड़ते हैं—इसलिये वे तिर्यञ्चायु का बन्ध अवश्य ही करते हैं। विधवा विवाह के पोषकों को मायाचारी से क्या मतलब? इस लिए वे तिर्यञ्चाय का बन्ध नहीं करते।

हाँ यह बात दूसरी है कि कोई विधवा विवाह करने के बाद पाप करे जिससे इन अशुभ कर्मों का बन्ध हो जाय। लेकिन वह बन्ध विधवा विवाह से न होगा, किन्तु पाप से होगा। कुमारी विवाह के बाद और मुनी वेष लेने के बाद भी तो लोग बड़े बड़े पाप करते हैं। इससे कुमारी विवाह और मुनिवेष बुरा नहीं कहा जा सकता। इसी तरह विधवा विवाह भी बुरा नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न (४)—यदि विधवा विवाह पाप कार्य है तो साधारण व्यभिचार से उसमें कुछ अन्तर होता है या नहीं? यदि हां, तो कितना और कैसा?

उत्तर—जब विधवा विवाह पाप ही नहीं है तो साधारण व्यभिचार से उसमें अन्तर दिखलाने की क्या ज़रूरत है? ख़ैर! दोनों में अन्तर तो है, परन्तु वह 'कुछ' नहीं, 'बहुत' है। विधवा विवाह श्रावकों के लिये पाप नहीं है और व्यभिचार पाप है। वर्तमान में व्यभिचार को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं—(१) परस्त्री सेवन, (२) वेश्या सेवन और (३) विवाह के विना ही किसी स्त्री को पत्नी बना लेना। पहिला सबसे बड़ा है; दूसरा उससे छोटा

है। सोमदेव आचार्य के मत से वेश्यासेवी भी ब्रह्मचर्याणुव्रती हो सकता है * परन्तु परस्त्री सेवी नहीं हो सकता। इससे वेश्या सेवन हलके दर्जे का पाप सिद्ध होता है। किसी स्त्री को विवाह के बिना ही पत्नी बना लेना वेश्यासेवन से भी कम पाप है, क्योंकि वेश्यासेवी की अपेक्षा रखैल स्त्री वाले की इच्छाएँ अधिक सीमित हुई हैं। विधवा विवाह इन तीन श्रेणियों में से किसी भी श्रेणी में नहीं आता, क्योंकि ये तीनों विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

कहा जा सकता है कि विधवा विवाह परस्त्री सेवन में ही अन्तर्गत है, क्योंकि विधवा परस्त्री है। इसके लिये हमें यह समझ लेना चाहिये कि परस्त्री किसे कहते हैं और विवाह क्यों किया जाता है?

अगर कोई कुमारी, विवाह के पहले ही संभोग करे तो वह पाप कहा जायगा या नहीं? यदि पाप नहीं है तो विवाह की ज़रूरत ही नहीं रहती। यदि पाप है तो विवाह हो जाने पर भी पाप कहलाना चाहिये। यदि विवाह हो जाने पर पाप नहीं कहलाता और विवाह के पहिले पाप कहलाता है तो इससे सिद्ध है कि विवाह, व्यभिचार दोष को दूर करने का एक अव्यर्थ साधन है। जो कुमारी आज परस्त्री है और जो पुरुष आज पर पुरुष है, वे ही विवाह हो जाने पर स्वस्त्री और स्वपुरुष कहलाने लगते हैं। इससे मालूम होता है कि कर्मभूमि में स्वस्त्री और स्वपुरुष जन्म से पैदा नहीं होते, किन्तु बनाये जाते हैं। कुमारी के समान विधवा

---

* वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र ऽतज्जने।
मातास्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥ —यशस्तिलक

भी स्वस्त्री बनाई जा सकती है। विवाह के पहिले विधवा पर-स्त्री है, परन्तु विवाह के बाद स्वस्त्री हो जायगी। तब उसे व्यभिचार कैसे कह सकते हैं? जब विवाह में व्यभिचार दोष के अपहरण की ताक़त है और कन्याओं के विषय में उसका प्रयोग किया जा चुका है तो विधवाओं के विषय में क्यों नहीं किया जा सकता है?

कहा जा सकता है कि स्त्री ने जब एक पति (स्वामी) बना लिया तब वह दूसरा पति कैसे बना सकती है? इसका उत्तर यही है कि जब पुरुष, एक पत्नी (स्वामिनी) के रहने पर भी दूसरी पत्नी बना लेता है तो स्त्री विधवा होने पर भी क्यों नहीं बना सकती? मुनि न बन सकने पर जिस प्रकार पुरुष दूसरा विवाह कर लेता है, उसी प्रकार स्त्री भी आर्यिका न बन सकने पर दूसरा विवाह कर सकती है। स्त्री किसी की सम्पत्ति नहीं है। अगर सम्पत्ति भी मान ली जाय तो सम्पत्ति भी मालिक से वञ्चित नहीं रहती है। एक मालिक मरने पर तुरन्त उसका दूसरा मालिक बन जाता है। दूसरा मालिक बनाना या बनना कोई पाप नहीं है। इससे साफ़ मालूम होता है कि विधवा विवाह और व्यभिचार में धरती आसमान का अन्तर है जैसे कि कुमारी विवाह और व्यभिचार में है।

प्रश्न (५)—वेश्या और कुशीला विधवा के आन्तरिक भावों में मायाचार की दृष्टि से कुछ अन्तर है या नहीं?

उत्तर—यद्यपि मायाचार सम्बन्धी अंतरंग भावों का निर्णय होना कठिन है, फिर भी जब हम वेश्या सेवन और परस्त्री सेवन के पाप में तरतमता दिखला सकते हैं तो इन दोनों के मायाचार में भी तरतमता दिखाई जा सकती

है। कुशीला विधवा का मायाचार बहुत अधिक है। वेश्या व्यभिचारिणी के वेश में व्यभिचार करती है, किन्तु कुशीला तो पतिव्रता के वेश में व्यभिचार करती है। वेश्या को अपने पाप छिपाने के लिये विशेष पाप नहीं करना पड़ते, परन्तु कुशीला को तो—छोटे मोटे पापों की बात छोड़िये—भ्रूणहत्या सरीखे महान पाप तक करना पड़ते हैं। कहा जा सकता है कि वेश्या को तो पाप का थोड़ा भी भय नहीं है, परन्तु कुशीला को है तो इस प्रश्न की मीमांसा करने के पहिले यह ध्यान में रखना चाहिये कि यहाँ प्रश्न मायाचार का है—वेश्या और कुशीला की तरतमता दिखलाना नहीं है किन्तु मायाचार की तरतमता दिखलाना है। सो मायाचार तो कुशीला विधवा का अधिक है, साथ ही साथ भयङ्कर भी है।

इन दोनों में कौन बुरी है और कौन भली, इसके उत्तर में यही कहना चाहिये कि दोनों बुरी हैं। हाँ, हम पहिले कह चुके हैं कि परस्त्री सेवन से वेश्या सेवन में कम पाप है इसलिये कुशीला विधवा, वेश्या से भी बुरी कहलाई। कुशीला को जो पापका भय बतलाया जाता है वह पाप का भय नहीं है, किन्तु स्वार्थनाश का डर है। व्यभिचार प्रकट होजाने पर लोकनिंदा होगी, अपमान होगा, घर से निकाल दी जाऊंगी, सम्पत्ति छिन जायगी, आदि बातों का डर होता है; यह पापका डर नहीं है। अगर पापका डर होता तो वह ऐसा काम ही क्यों करती? और किया था तो छिपाने के लिये फिर और भी बड़े पाप क्यों करती? खैर! इन बातों का इस प्रश्नसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। हां, इतना निश्चित है कि कुशीला विधवा का मायाचार वेश्या से अधिक है और कुशीला विधवा अधिक भयानक है।

प्रश्न (६)—ऐसी कुशीला, मायाचारिणी, भ्रूणहत्या-कारिणी, विधवा को तीव्र पाप (नरकायु आदि) का बन्ध होता है या नहीं ? और उसके सहकारियों को भी कृत कारित अनुमोदन के कारण तीव्र पापका बन्ध होता है या नहीं ?

उत्तर—ऐसे पापियों को तीव्र पाप का बंध न होगा तो किसे होगा ? साथ में इतना और समझना चाहिये कि विधवाविवाह के विरोधी भी ऐसे पापियों में शामिल होते हैं, क्योंकि उनकी कठोरताओं और पक्षपातपूर्ण नियमों के कारण ही स्त्रियों को ऐसे पाप करने पड़ते हैं। यद्यपि विधवाविवाह के विरोधियों में सभी लोग भ्रूणहत्याओं को पसन्द नहीं करते फिर भी उनमें फी सदी नव्वे ऐसे हैं जो भ्रूणहत्या पसन्द करेंगे, परन्तु विधवाविवाह का न्यायोचित मार्ग पसन्द न करेंगे। अगर हम खूब स्वादिष्ट भोजन करें और दूसरों को एक टुकड़ा भी न खाने दें तो उन्हें स्वाद के लिये नहीं तो क्षुधा शान्ति के लिये चोरी करना ही पड़ेगी। और इसका पाप हमें भी लगेगा। इसी तरह भ्रूणहत्या का पाप विधवा विवाह के विरोधियों को भी लगता है।

प्रश्न (७)—वर्तमान समय में कितनी विधवाएँ पूर्ण पवित्रता से वैधव्य व्रत पालन कर सकती हैं ?

उत्तर—यों तो भव्यमात्र में मोक्ष जाने तक की ताक़त है, लेकिन अवस्था पर विचार करने से मालूम होता है कि वृद्ध विधवाओं को छोड़कर बाक़ी विधवाओं में फ़ी सदी पाँच ही ऐसी होंगी जो पवित्रता से वैधव्य का पालन कर सकती हैं। विधुरों में कितने विधुर जीवन पर्यन्त विधुरत्व का पालन करते हैं ? विधवाओं के लिये भी यही बात है।

प्रश्न (८)—व्यभिचार से किन २ प्रकृतियों का बन्ध होता है और विधवा-विवाह से किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

उत्तर—व्यभिचार से चारित्र मोहनीय का तीव्र बन्ध होता है और विधवाविवाह से कुमारीविवाह के समान चारित्र मोह का अल्प बन्ध होता है। व्यभिचार से पुण्यबन्ध नहीं होता, परन्तु विधवाविवाह से पुण्यबन्ध होता है। और वर्तमान परिस्थिति में तो कुमारीविवाह से भी अधिक पुण्यबन्ध विधवाविवाह से होता है, क्योंकि वर्तमान में जो विधवा विवाह करता है वह भ्रूणहत्या और व्यभिचार आदि को रोकने की कोशिश करता है, स्त्रियों के मनुष्योचित अधिकार दिलाता है। इस प्रकार के करुणा तथा परोपकार के भावोंसे उसे तीव्र पुण्य का बन्ध होता है, जो कि व्यभिचारी के और विधवाविवाह के विरोधियों के नहीं हो सकता। विधवाविवाह से दर्शनमोह का बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि विधवाविवाह धर्मानुकूल है। विधवाविवाह में योग देने वाला धर्म के मर्म को जान जाता है, स्याद्वाद के रहस्य से परिचित हो जाता है। येही तो सम्यक्त्व के चिन्ह हैं। विधवा विवाह के विरोधी एकान्तमिथ्यात्वी हैं, वे श्रुत और धर्म का अवर्णवाद करते हैं इसलिये उन्हें तीव्र मिथ्यात्व का बन्ध होता है। अन्य पाप प्रकृतियों का तो कहना ही क्या है ?

प्रश्न (९)—विवाह के विना, काम लालसा के कारण जो संक्लेश परिणाम होते हैं, उनमें विवाह होने से कुछ न्यूनता आती है या नहीं ?

उत्तर—'कुछ' नहीं, किन्तु 'बहुत' न्यूनता आती है। विवाह के बिना तो प्रत्येक व्यक्ति को देख कर पापवासना जाग्रत होती है और वह वासना सदा ही जाग्रत रहती है; किंतु विवाह से तो एक व्यक्ति को छोड़कर बाक़ी सबके विषय में उसकी वासना मिट जाती है और वह वासना भी सदा जाग्रत नहीं रहती।

कहा जा सकता है कि जिनकी काम लालसा अतिप्रबल है उनकी विवाह होने पर भी शान्त नहीं होती। अनेक विवाहित पुरुष और सधवा स्त्रियाँ व्यभिचारदूषित पायी जाती हैं, यह ठीक है। किन्तु विवाह तो व्यभिचार को रोकने का उपाय है। उपाय, सौ में दस जगह असफल भी होता है, किन्तु इससे वह निरर्थक नहीं कहा जा सकता। चिकित्सा करने पर भी लोग मरते हैं, शास्त्री बन करके भी धर्म को नहीं समझते, मुनि बन करके भी बड़े २ पाप करते हैं, इससे चिकित्सा आदि निरर्थक नहीं कहे जा सकते।

यदि विवाह होने पर भी किन्हीं लोगों की काम वासना शान्त नहीं होती तो इससे सिर्फ़ विधवाविवाह का ही निषेध कैसे हो सकता है? फिर तो विवाह मात्र का निषेध करना चाहिये और समाज से कुमार, कुमारियों के विवाह की प्रथा उड़ा देना चाहिये, क्योंकि व्यभिचार तो विवाह के बाद भी होता है। यदि कुमार कुमारियों के विवाह की प्रथा का निषेध नहीं किया जा सकता तो विधवाविवाह का भी निषेध नहीं किया जा सकता।

एक महाशय ने लिखा है—"वास्तव में विवाहका उद्देश्य काम लालसा की निवृत्ति नहीं है। विवाह इस जघन्य एवं

कुत्सित उद्देश्य से सर्वथा नहीं किया जाता है, किन्तु वह मोक्ष मार्गोपसंबी स्वपर हितकारक शुद्ध संतान की उत्पत्ति के लिये ही किया जाता है। इस लिये वह शास्त्रविहित, मोक्षमार्ग साधक, धर्म कार्य माना गया है। इस लिये विवाह होने पर काम लालसा के संक्लेश परिणामों की निवृत्ति उतना ही गौण कार्य है जितना किसान को भूसे का लाभ।"

जो लोग विवाह का उद्देश्य काम लालसा की निवृत्ति नहीं मानते हैं और काम लालसा की निवृत्ति को जघन्य और कुत्सित उद्देश्य समझते हैं उनकी विद्वत्ता पर हमें दया आती है। ऐसे लोग जब कि जैन धर्म की वर्णमाला भी नहीं समझते तब क्यों गहन विषयों में टांग अड़ाने लगते हैं? क्या हम पूछ सकते हैं कि 'काम लालसा की निवृत्ति' यदि जघन्य और कुत्सित है तो क्या काम लालसा में प्रवृत्ति करना अच्छा है? सच है, जो लोग एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी आदि स्त्रियों के साथ मौज उड़ा रहे हैं, वे काम लालसा के त्याग को कुत्सित और जघन्य समझें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? ख़ैर, अब हमें यह देखना चाहिये कि विवाह का उद्देश्य क्या है?

विवाह गृहस्थाश्रम का मूल है गृहस्थाश्रम धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों का साधक है। काम लालसा की जितनी निवृत्ति होती है उतना अंश धर्म है: जितनी प्रवृत्ति होती है उतना काम है। अर्थ इसका साधक है। इससे साफ़ मालूम होता है कि विवाह काम--लालसा की आंशिक निवृत्ति के लिये किया जाता है। शास्त्रकार कहते हैं—

त्याज्यानजस्रं विषयान् पश्यतोऽपि जिनाज्ञया।
मोहात्त्यक्तुम शक्तस्य गृहिधर्मोनुमन्यते ॥

अर्थात्—जिनेन्द्र की आज्ञा से जो विषयों को छोड़ने योग्य समझता है, किन्तु फिर भी चारित्र मोह कर्मकी प्रबलता से उनका त्याग नहीं कर सकता, उसको गृहस्थ धर्म धारण करने की सलाह दी जाती है।

इससे साफ़ मालूम होता है कि विवाह लड़कों बच्चों के लिए नहीं, किन्तु मुनि बनने की असमर्थता के कारण किया जाता है। हमारे जैन पंडितों ने जब से वैदिक धर्म की नक़ल करना सीखा है, तब से वे धर्म के नाम पर लड़कों बच्चों की बातें करने लगे हैं। वैदिक धर्म में तो अनेक ऋण माने गये हैं जिनका चुकाना प्रत्येक मनुष्य को आवश्यक है। उनमें एक पितृ ऋण भी है। उनके ख़याल से संतान उत्पन्न कर देने से पितृ ऋण चुकजाता माना गया है किन्तु जैन धर्म में ऐसा कोई पितृ ऋण नहीं माना गया है जिसके चुकाने के लिये सन्तानोत्पत्ति करना धर्म कहलाता हो। विवाह का मुख्य उद्देश्य काम लालसा की उच्छृंखलता को रोकना है। हां, ऐसी हालत में सन्तान भी पैदा हो जाती है। यह भी अच्छा है, परंतु यह गौण फल है। सन्तानोत्पत्ति और काम लालसा की निवृत्ति, इनमें गौण कौन है और मुख्य कौन है, इसका निबटारा इस तरह हो जायगा—मान लीजिए कि किसी मनुष्य में मुनिव्रत धारण करने की पूर्ण योग्यता है। ऐसी हालत में अगर वह किसी आचार्य के पास जावे तो वह उसे मुनि बनने की सलाह देंगे या श्रावक बनकर पुत्रोत्पत्ति करने की सलाह देंगे? शास्त्रकार तो इस विषय में यह कहते हैं—

वहुशः समस्त विरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृहणाति ।
तस्यैक देश विरतिः कथनीयानेन बीजेन ॥
यो यति धर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्म मल्पमतिः ।
तस्य भगवत्प्रवचने, प्रदर्शितं निग्रहस्थानं ॥
अक्रमकथनेन यतः प्रोत्सहमानोऽति दूरमपिशिष्यः ।
अपदेऽपि संप्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना ॥

महाव्रत का उपदेश देने पर जो महाव्रत ग्रहण न कर सके उसे अणुव्रत का उपदेश देना चाहिये । महाव्रत का उपदेश न देकर जो अणुव्रत का उपदेश देता है वह निग्रहीत है। क्योंकि अगर किसी के हृदय में मुनिव्रत धारण करने का उत्साह हो और बीच में ही अणुव्रत का उपदेश सुनकर वह सन्तुष्ट हो जाय तो उसके महाव्रत पालन करने का मौक़ा निकल जायगा। इससे साफ़ मालूम होता है कि आचार्य, अणुव्रत धारण करने की सलाह तभी देते हैं जब कोई महाव्रत न पाल सकता हो। अणुव्रत लड़कों बच्चों के लिए नहीं, किंतु महाव्रत पालन करने की असमर्थता के कारण किया जाता है। अणुव्रत के साथ आंशिक प्रवृत्ति होने से सन्तान भी उत्पन्न हो जाती है। यह अणुव्रत का गौणफल है, जैसे किसान के लिये भूसा। लड़कों बच्चों को जो मुख्यता देदी जाती है उसका कारण है समाज का लाभ। व्रत से व्रती का कल्याण होता है और सन्तान से समाज का । इस लिये व्रती को व्रत मुख्य फल है और सन्तान गौण फल है। दूसरे लोगों को सन्तान ही मुख्य है। जैसे-अन्न किसान को मुख्य है भूसा गौण । किन्तु किसान के घर रहने वाले बैलों को तो भूसा ही मुख्य है और अन्न गौण, क्योंकि बैलों को तो

भूसा ही मिलेगा, अन्न नहीं। व्रती के व्रत का लाभ तो व्रती ही पावेगा. दूसरों को नहीं मिल सका, किन्तु उसकी संतान से दूसरे भी लाभ उठावेंगे, समाज की स्थिति क़ायम रहेगी इस लिये सामाजिक दृष्टि से सन्तान मुख्य फल है, परन्तु धार्मिक दृष्टि से व्रत ही मुख्य फल है, पुत्रादिक नहीं। धार्मिक दृष्टि से 'पुत्तसमो वैरिओणत्थि' (पुत्र के समान कोई वैरी नहीं है) इत्यादि वाक्यों से संतान की निन्दा ही की गई है। इस लिये धार्मिक दृष्टि से संतान के लिये विवाह मानना अनुचित है। वह काम वासना को सीमित करने के लिए किया जाता है। इसी बात को दूसरे स्थान पर और भी अच्छे शब्दों में कहा है।

विषय विषमाशनोत्थित मोहज्वर जनिततीव्र तृष्णस्य ।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान ॥

"विषय रूपी अपथ्य भोजन से उत्पन्न हुआ जो मोह रूपी ज्वर, उस ज्वर से जिसको बहुत ही तेज़ प्यास लग रही है, और उस प्यास को सहने की जिसमें ताकत नहीं है उसको कुछ पीने योग्य औषध देना अच्छा है ।

मतलब यह है कि उसे प्यास तो इतनी लगी है कि लोटे दो लोटे पानी भी पी सकता है, परन्तु वैद्य समझता है कि ऐसा करने से बीमारी बढ़ जायगी । इसलिए वह पीने योग्य औषध देता है जिससे वह प्यास न बढ़ने पावे । इसी तरह जिसकी विषय की आकांक्षा बहुत तीव्र है, उसको विवाह द्वारा पेय औषध दी जाती है जिससे प्यास शांत रहे और रोग न बढ़ने पावे । मतलब यह की जैन शास्त्रों के अनुसार विवाह का मुख्य उद्देश्य विषय वासना को सीमित

करना है। यह बात विधवा विवाह से भी होती है। अगर किसी विधवा बाई को विषय वासना रूपी तीव्र प्यास लगी है तो उसे विवाह रूपी पेय औषध क्यों न देनी चाहिये? मर्द तो औषध के नाम पर लोटे के लोटे गटका करें और विधवाओं को एक बूंद औषध भी न दी जाय, यह कहाँ की दया है? कहाँ का न्याय है? कहाँ का धर्म है? विवाह में जिस प्रकार पुरुषों के संक्लेश परिणाम मंद होते हैं, उसी प्रकार स्त्रियोंके भी होते हैं। फिर पुरुषों के साथ पक्षपात और स्त्रियों के साथ निर्दयता का व्यवहार क्यों? धर्म तो पुरुषों की ही नहीं, स्त्रियों की भी सम्पत्ति है। इस लिये धर्म ऐसा पक्षपात कभी नहीं कर सकता।

प्रश्न (१०)—प्रत्येक बाल विधवा में तथा प्रौढ विधवा में भी आजन्म ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति का प्रगट होना अनिवार्य है या नहीं?

उत्तर—नहीं। यह बात अपने परिणामों के ऊपर निर्भर है। इसलिये जिन विधवाओं के परिणाम गृहस्थाश्रम से विरक्त न हुए हों उन्हें विवाह कर लेना चाहिये। कहा जा सकता है कि "जैसे मुनियोंमें वीतरागता आवश्यक होने पर भी सरागता आजाती है,उसी प्रकार विधवाओं में भी होसकती है,लेकिन वे शीलभ्रष्ट ज़रूर कहलायँगी। मुनि भी सरागता से भ्रष्ट माना-जाता है।" यह बात ठीक है। शक्ति न होने से हम अधर्म को धर्म नहीं कह सकते। परन्तु यहाँ यह बात विचारणीय है कि जो कार्य मुनिधर्मसे भ्रष्ट करता है क्या वही श्रावकधर्म से भी भ्रष्ट करता है? विवाह करने से प्रत्येक व्यक्ति मुनिधर्म से भ्रष्ट होजाता है, परन्तु क्या विवाह से श्रावक धर्म भी छूट जाता है? क्या

विवाह करने वाले का अणुव्रत सुरक्षित नहीं रह सकता ? हमारे ख़याल से तो कन्या भी अगर आर्यिका होकर फिर विवाह करे तो भ्रष्ट है और विधवा अगर आर्यिका आदि की दीक्षा न लेकर विवाह करले तो भ्रष्ट नहीं है। यह ठीक है कि पति के मरजाने पर स्त्री वैधव्यदीक्षा ले तो अच्छा है, परन्तु लेना न लेना उसकी इच्छा पर निर्भर है। यह नहीं हो सकता कि वह तो वैधव्यदीक्षा लेना न चाहे और हम ज़बरदस्ती उसके सिर दीक्षा मढ़दें। स्त्री के समान पुरुष का भी कर्तव्य है कि वह पत्नी के मर जाने पर दीक्षा लेले। बूढ़ों को तो ख़ासकर मुनि बनजाना चाहिये। परन्तु आज कितने वृद्ध मुनि बनते हैं ? कितने विधुर दीक्षा लेते हैं ? जो लोग मुनि नहीं बनते और दूसरा विवाह करलेते हैं वे क्या भ्रष्ट कहे जाते हैं ? अगर वे भ्रष्ट नहीं हैं, तो विधवाएँ भी भ्रष्ट नहीं कही जा सकतीं। पुरुषों का शीलभङ्ग तभी कहलायगा जबकि वे विवाह न करके संभोग करें। इसी तरह विधवाएँ शीलभ्रष्ट तभी कहलावेंगी जबकि वे विवाह न करके संभोग करें या उसकी लालसा रक्खें।

प्रश्न (११)—धर्मविरुद्ध कार्य, किसी हालत में (उससे भी बढ़कर धर्मविरुद्ध कार्य अनिवार्य होने पर) कर्तव्य हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—जैनधर्म का उपदेश अनेकान्त की अपेक्षासे है। जो कार्य किसी अपेक्षासे धर्मविरुद्ध है वही दूसरी अपेक्षा से धर्मानुकूल भी है। मुनि के लिये विवाह धर्मविरुद्ध है, श्रावक के लिये धर्मानुकूल है। पति के मरने पर जिसने आर्यिका की दीक्षा ली है उसके लिये विवाह धर्मविरुद्ध है और जिस

विधवा के व्रत, सप्तम प्रतिमासे नीचे हैं उसके लिये विवाह धर्मानुकूल है। श्रावक अगर आहार दान दे तो धर्मानुकूल है और मुनि अगर ऐसा करे तो धर्मविरुद्ध है। भाषा गुप्ति का पालन करनेवाला (मौनव्रती) अगर सच बात भी बोले तो धर्म विरुद्ध है और समिति का पालन करने वाला बोले तो धर्मानुकूल है। मतलब यह है कि जैनधर्म में कोई कार्य सर्वथा धर्म-विरुद्ध नहीं कहा जाता। उसके साथ अपेक्षा रहती है। यद्यपि जैनधर्म में यह नहीं कहा गया है कि एक अनर्थ के लिये दूसरा अनर्थ करो; फिर भी इतनी आज्ञा अवश्य है कि बहुत अनर्थ को रोकने के लिये थोड़े अनर्थ की आवश्यक्ता हो तो उसका प्रयोग करो। दूसरे अनर्थ का निषेध है,परन्तु उस अनर्थ के कम करने का निषेध नहीं है—जैसे एक आदमी सब तरह के मांस खाता था, उसने काक मांस छोड़ दिया तो यद्यपि वह अन्य मांस खाता रहा, फिर भी जितना अनर्थ उसने रोका उतना ही अच्छा किया। नासमझ व्यक्ति जैनधर्म के ऐसे कथन को युक्ति-प्रमाणशून्य प्रमत्त उपदेश समझते हैं,परन्तु जैनधर्म के उपदेश में कोरी लट्ठबाज़ी नहीं है—उसके भीतर वैज्ञानिक विचार पद्धति मौजूद है। अगर कोई कहे कि क्या बड़े बड़े पापों की अपेक्षा छोटे छोटे पाप ग्राह्य हैं? तो जैनधर्म कहेगा—अवश्य। सप्तव्यसन का सेवी अगर सिर्फ़ व्यभिचारी रहजाय तो अच्छा (यद्यपि व्यभिचार पाप है); व्यभिचारी अगर परस्त्री का त्याग कर सिर्फ़ वेश्या सेवी रहजाय तो अच्छा है (यद्यपि वेश्या सेवन पाप है); वेश्या सेवन का भी त्याग करके अगर कोई स्व-स्त्री सेवी ही रहजाय तो अच्छा (यद्यपि महाव्रत की अपेक्षा स्वस्त्री सेवन भी पाप है); यह विषय इतना स्पष्ट है कि ज़्यादा

प्रमाण देने की ज़रूरत नहीं। जैनधर्म का मामूली विद्यार्थी भी कह सकता है कि जो कार्य एक व्यक्ति के लिये धर्मविरुद्ध है वही दूसरे के लिये धर्मानुकूल भी हो सकता है।

प्रश्न (१२)—छोटे २ दुधमुँहे बच्चों का विवाह धर्म विरुद्ध है या नहीं ?

उत्तर—दुधमुँहे अर्थात् विवाह के विषय में नासमझ बच्चों का विवाह नहीं हो सकता। समाज के चार आदमी भले ही उसे विवाह मान लें, परन्तु धर्मशास्त्र उसे विवाह नहीं मानता। जो लोग उसे विवाह मानते हैं उनका मानना धर्म विरुद्ध है। अगर ऐसे विवाह हो जावें तो उन्हें विवाह न मानकर उचित अवस्था में उनका फिर विवाह करना चाहिये। अन्यथा उनकी सन्तान कर्ण के समान नाजायज़ सन्तान कहलावेगी। विवाह के लिये वर कन्या में दो बातें आवश्यक हैं—विवाह के विषय में अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान और चारित्र मोहनीय के उदय से होने वाले राग परिणाम अर्थात् वह कामलालसा जो कि मुनि, आर्यिका अथवा उच्चव्रती न बनने दे। इन दो बातों के बिना तीन लोक के समस्त प्राणी भी अगर किसी का विवाह करें तो भी नहीं हो सकता। जो लोग इन दो बातों के बिना विवाह नाटक कराते हैं वे धर्मद्रोही हैं। छोटी उमर में शास्त्रानुसार नियतविधि के अनुसार विवाह का नाटक हो सकता है, परन्तु विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि जब उपादान कारण का सहयोग प्राप्त नहीं है तब सिर्फ़ निमित्तों के ढेर से क्या हो सकता है? विवाह के लिये शास्त्रानुसार नियत विधि की आवश्यकता अनिवार्य नहीं है, परन्तु उपर्युक्त दो बातें अनिवार्य हैं। गान्धर्व विवाह में शास्त्रानु-

सार नियत विधि नहीं होती, फिर भी वह विवाह है और उस विवाह से उत्पन्न संतान मोक्षगामी तक होती है। इसी विवाह से रुक्मणीजी कृष्णजी की पटरानी बनी थीं और उनसे तद्भव मोक्षगामी प्रद्युम्न पैदा हुए थे। इसलिये शास्त्रानुसार विधि हो या न हो, परन्तु जहाँ पर उपर्युक्त दो बातें होंगी वहाँ पर धर्मानुकूलता है और उनके बिना धर्मविरुद्धता है।

प्रश्न (१३)—विधवा होने के पहिले जिन्होंने पत्नीत्व का अनुभव नहीं किया, उन्हें विधवा कहना कहाँ तक उचित है?

उत्तर—१२ वें प्रश्न के उत्तर में इसका भी उत्तर आ सकता है। वहाँ कही हुई दो बातों के बिना जो विवाहनाटक होजाता है उसके द्वारा उन दोनों बच्चों को पति पत्नीत्व का अनुभव नहीं होता। वे नाटकीय पति पत्नि कहलाते हैं। ऐसी हालत में अगर वह नाटकीय पति मरजाय तो वह नाटकीय पत्नी नाटकीयविधवा कहलायेगी। पत्नीत्व के व्यवहार और पत्नीत्व के अनुभव में बहुत अन्तर है। व्यवहार के लिये तो चारों निक्षेप उपयोगी हो सकते हैं, परन्तु अनुभव के लिये सिर्फ़ भावनिक्षेप ही उपयोगी है। बालविवाह के पति-पत्नी व्यवहार में स्थापना निक्षेपसे काम लिया जाता है। जो लोग उसे भाव निक्षेप समझ जाते हैं अथवा व्यवहार और अनुभव के अन्तर को नहीं समझते, उनकी विद्वत्ता (?) दयनीय है।

प्रश्न (१४)—क्या पत्नी बनने के पहिले भी कोई विधवा हो सकती है? और पत्नी बनकर व्रत ग्रहण करने में व्रती के भावों की ज़रूरत है या नहीं?

उत्तर—पत्नी बनने के पहिले कोई विधवा नहीं हो सकती। इस लिये यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि जिन बालिकाओं को लोग विधवा कहते हैं वे विधवा नहीं हैं क्योंकि बाल्यावस्था का विवाह उपर्युक्त दो बातों के न होने से विवाह ही नहीं है। जिसका विवाह ही नहीं उसमें न तो पत्नीपन आ सकता है न विधवापन।

व्रत ग्रहण करने में व्रती के भावों की ज़रूरत है—भाव के बिना क्रिया किसी काम की नहीं। शास्त्रकार तो कहते हैं—'यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः' अर्थात् भाव-रहित क्रियाओं का कुछ फल नहीं होता। अर्थात् भावशून्य क्रियाओं के द्वारा शुभाशुभ बंध और संवर आदि नहीं होते। जो लोग यह कहते हैं कि 'अनेक संस्कार बाल्यावस्था में ही कराये जाते हैं इस लिये भावों के बिना भी व्रत कहलाया' वे लोग व्रत और संस्कार का अन्तर नहीं समझते। व्रत का लक्षण स्वामी समन्तभद्राचार्य ने यह लिखा है :—

अभिसन्धिकृता विरतिः विषयाद्योगाद्व्रतं भवति।

अर्थात्—योग्य विषय से अभिप्राय (भाव) पूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है। बाह्यदृष्टि से त्यागी हो जाने पर भी जब तक अभिप्राय पूर्वक त्याग नहीं होता तब तक व्रत नहीं कहलाता है। संस्कार कोई व्रत नहीं है, परन्तु व्रती बनने की योग्यता प्राप्त करने का एक उपाय है। व्रत आठ वर्ष की उमर के पहिले नहीं हो सकता, परन्तु संस्कार तो गर्भावस्था से ही होने लगते हैं। संस्कार से योग्यता पैदा हो सकती है (योग्यता का होना अवश्यम्भावी नहीं है) लेकिन व्रत तो योग्यता पैदा होने के बाद उसके उपयोग होने पर

ही हो सकते हैं। संस्कार से हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है और वह प्रभाव प्रायः दूसरों के द्वारा डाला जाता है; परंतु व्रत दूसरों के द्वारा नहीं लिया जा सकता। संस्कार तो पात्र में श्रद्धा, समझ और त्याग के बिना भी डाले जा सकते हैं, परंतु व्रत में इन तीनों की अत्यंत आवश्यकता रहती है। इस लिये भावों के बिना व्रत ग्रहण हो ही नहीं सकता। वर्तमान में जो अनिवार्य वैधव्य की प्रथा चल पड़ी है, वह व्रत नहीं है, किन्तु अत्याचारी, समर्थ, निर्दय पुरुषों का शाप है जो कि स्त्रियों को उनकी कमज़ोरी और मूर्खता के अपराध (?) में दिया गया है।

प्रश्न (१५)—जिसने कभी अपनी समझ में ब्रह्मचर्याणुव्रत ग्रहण नहीं किया है उसका विवाह करना धर्म है या अधर्म ?

उत्तर—जो मुनि या आर्यिका बनने के लिये तैयार नहीं है या सप्तम प्रतिमा भी धारण नहीं कर सकता उसे विवाह कर लेना चाहिये—चाहे वह विधुर हो या विधवा, कुमार हो या कुमारी। ऐसी हालत में किसी को भी विवाह की इच्छा होने पर विवाह कर लेना अधर्म नहीं है।

प्रश्न (१६)—जिसका गर्भाशय गर्भधारण करने के लिये पुष्ट नहीं हुआ है उसका गर्भ रह जाने से प्रायः मृत्यु का कारण हो जाता है या नहीं ?

उत्तर—इस प्रश्न का सम्बन्ध वैद्यक शास्त्र से है। वैद्यक शास्त्र तो यही कहता है कि १६ वर्ष की लड़की और बीस वर्ष का लड़का होना चाहिये; तभी योग्य गर्भाधान हो सकता है। इससे कम उमर में अगर गर्भाधान किया जाय तो

सन्तान अल्पायु या रोगी होगी अथवा गर्भ स्थायी न रहेगा। बहुत से लोग यह समझते हैं कि स्त्री को पुष्पवति हो जाने से ही गर्भाधान की पूर्ण योग्यता प्राप्त हो जाती है। लेकिन प्राकृतिक नियम इसके बिलकुल विपरीत है। अंड, पोपइया आदि फलों के वृक्षोंमें जब पुष्प आते हैं तो चतुर माली उन्हें निष्फल ही झड़ा देता है। क्योंकि अगर ऐसा न किया जाय तो फल बहुत छोटे, बेस्वाद और रद्दी होते हैं। आम के वृक्ष में अगर सब फूलों के आम बनने लगें तो आम बिलकुल रद्दी होंगे, उनका आकार राई के दाने से शायद ही बड़ा हो सके। इसलिये प्रकृति फी सदी ९९ पुष्पों को निष्फल झड़ादेती है। तब कहीं अच्छे आम पैदा होते हैं। सभी वृक्षों के विषय में यह नियम है कि अगर आप उनसे अच्छा फल लेना चाहते हैं तो प्रारम्भ के पुष्पों को फल न बनने दीजिये और मात्रा से अधिक फल न लगने दीजिये। नारी के विषय में भी यही बात है। वहाँ भी रजोदर्शन के बाद तुरन्त ही गर्भाधान के साधन न मिलना चाहिये, अन्यथा मृत्यु आदि की पूरी सम्भावना है। कहा जा सकता है—मृत्यु भले ही हो, परंतु उसका पाप नहीं लग सकता। लेकिन यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि यत्नाचार न करने से प्रमाद होता है और 'प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इस सूत्र के अनुसार वहाँ हिंसा भी है। जब हम जानते हैं कि ऐसा करने से हिंसा हो जायगी, फिर भी हम वही काम करें तो इससे हिंसा का अभिप्राय, अथवा हिंसा होने से लापर्वाही सिद्ध होती है जो कि पापबंध का कारण है। घरमें स्त्रियों को यह शिक्षा दी जाती है कि पानी को ढककर रक्खा करो, नहीं तो कीड़े मकोड़े गिर कर मर

जायँगे। यद्यपि स्त्रियों के हृदय में कीड़े मकोड़े मारने का अभिप्राय नहीं है फिर भी अयत्नाचार से जो प्रमाद होता है उसका पाप उन्हें लगता है। जब इस अयत्नाचार से पाप लगता है तब जिस अयत्नाचार से मनुष्यों को भी प्राणों से हाथ धोना पड़े तो उसमें पाप का बंध क्यों न होगा?

प्रश्न (१७)—किसी समाज की पांच लाख औरतों में एक लाख तेतालीस हज़ार विधवाएँ शोभा का कारण हो सकती हैं या नहीं?

उत्तर—जिस समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार है, उनका पुनर्विवाह किसी भी तरह से हीनदृष्टि से नहीं देखा जाता, स्त्रियों को इस विषय में कोई संकोच नहीं रहता, उस समाज में कितनी भी विधवाएं हों वे शोभा का कारण हैं। क्योंकि ऐसी समाजों में जो वैधव्य का पालन किया जायगा वह ज़बर्दस्ती से नहीं, त्यागवृत्ति से किया जायगा और त्यागवृत्ति तो जैनधर्म के अनुसार शोभा का कारण है ही, लेकिन जिस समाज में वैधव्य का पालन ज़बर्दस्ती करवाया जाता है, वहाँ पर कोई भी विधवा शोभा का कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ कोई वैधव्यदीक्षा नहीं लेता—वह तो बन्दी जीवन है। बन्दियों से किसी भी समाज की शोभा नहीं हो सकती। ऐसी समाजों के मान्वरों को भी स्वीकार करना पड़ता है कि "एक विधवा भी शोभा का कारण नहीं है--शोभा का कारण तो सौभाग्यवती स्त्रियाँ हैं"। इससे साफ़ मालूम होता है कि विधवाओं का स्थान सौभाग्यवतियों से नीचा है। अगर ऐसी समाजों में वैधव्य कोई व्रत होता तो क्या विधवाओं का ऐसा नीचा स्थान रहता? उनके विषय में

क्या ऐसे अपमानजनक शब्द लिखे जाते ? व्रती के आगे अव्रती को क्यों शोभा का कारण कहा जाता ? वैधव्य दीक्षा से दीक्षित महिलाएं तो सौभाग्यवती और सौभाग्यवानों से भी पूज्य हैं। गृहस्थाश्रम में वे वीतरागता की एक किरण हैं। परन्तु उनको इतना मूल्य तो तब मिले जब समाज में विधवा विवाह का प्रचार हो। तभी उनके त्याग का मूल्य है। जो वस्तु ज़बर्दस्ती छिन गई, जिसके ऊपर अधिकार ही नहीं रहा, उसका त्याग ही क्या ? कहा जा सक्ता है कि 'दैवी आपत्ति पर कौन विजय प्राप्त कर सक्ता है ? प्लेग, इन्फ्लुएंज़ा आदि से मनुष्य क्षति हो जाती है, वहाँ क्या किसी के हाथ की बात है' ? ऐसी बात करने वालों से हम पूछते हैं कि बीमारी हो जाने पर आप चिकित्सा करते हैं या नहीं ? अगर दैव पर कुछ वश नहीं है तो औषधालय क्यों खुलवाये जाते हैं ? दैव के उदय से कंगाल हो कर भी लोग अर्थोपार्जन की चेष्टा क्यों करते हैं ? दैव के उदय से तो सब कुछ होता है, फिर पुरुषार्थ की कुछ ज़रूरत है या नहीं ? तथा यह बात भी विचारणीय है कि दैव के द्वारा जैसे विधवाएँ बनती हैं; उसी प्रकार विधुर भी बनते हैं। विधुरों के लिये तो दैव का विचार नहीं किया जाता है और विधवाओं के लिये किया जाता है—यह अन्धेर क्यों ? यदि कहा जाय कि विधुरपन की चिकित्सा भी दैव के उदय से होती है तो विधवापन की चिकित्साभी दैव के उदय से हो जायगी और होने लगी है। मनुष्य को उद्योग करना चाहिये, अगर सफल हो जाय तो ठीक है। अगर सफलता न होगी तो क्या दोष है ?

"यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः"

अगर कोई विधवा विवाह से वैधव्य की चिकित्सा करता है तो हमें उसको धन्यवाद देना चाहिये। यहाँ कोई शीलभ्रष्टता की सम्भावना करे तो यह भी अनुचित है। इसका उत्तर हम दे चुके हैं। दैवकृत विधुरत्व के दुःख को हम दूर करते हैं और इससे समाज की शोभा नहीं बिगड़ती तो वैधव्य दुःख को दूर करने से भी शोभा न बिगड़ेगी।

प्रश्न (१८)—जिस तरह जैन समाज की संख्या घट रही है उससे जैन समाज को हानि है या लाभ ?

उत्तर—गवर्नमेण्ट की मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों के देखने से साफ़ मालूम है कि प्रतिवर्ष ७ हज़ार के हिसाब से जैनी घट रहे हैं। गवर्नमेण्ट की रिपोर्ट पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। समाज का आदर्श जितना चाहे ऊंचा हो, परन्तु उसे अपना माध्यम ऐसा अवश्य रखना चाहिये जिससे समाज का नाश न होजाय। उच्च धर्म का पालन करना अच्छी बात है, परन्तु वह समाज का अनिवार्य नियम न होना चाहिये। जिनमें शक्ति हो वे पालन करें, न हो तो न करें। समाज की संख्या कायम रहेगी तो उच्च धर्म का पालन करने वाले भी मिलेंगे। जब समाज ही न रहेगी तो कौन उच्च धर्म का पालन करेगा और कौन मध्यम धर्म का। इस लिये समाज को कोई भी आत्मघातक रिवाज न बनाना चाहिये। वर्तमान में अनिवार्य वैधव्य के रिवाज से संख्या घट रही है और इससे बहुत हानि हो रही है।

प्रश्न (१९)—जैनसमाज में काफ़ी संख्या में अविवाहित हैं या नहीं ?

उत्तर—हैं। परंतु इसका कारण स्त्रियों की कमी नहीं,

किन्तु अनिवार्य वैधव्य की कुप्रथा है। धर्म के वेष में छिपी हुई यह धर्मनाशक प्रथा बंद हो जाय तो अविवाहित रहने का मौक़ा न आवे।

प्रश्न (२०)—एक लाख तेतालीस हज़ार विधवाएँ अगर समाजमें न होतीं तो जनसंख्या बढ़ सकती थी या नहीं?

उत्तर—इतनी विधवाओं के स्थान में अगर सधवाएँ होतीं तो संख्या अवश्य बढ़ती। मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों से मालूम होता है कि जिन समाजों में विधवा-विवाह का रिवाज है उनकी जनसंख्या नहीं घट रही है, बल्कि बढ़ रही है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि "क्या कोई ऐसी शक्ति है जो कि दैव-बल का अवरोधक होकर विधवा न होने दे?" ऐसा कहने वालों की बुद्धि मिथ्यात्व के उदय से भ्रष्ट होगई है—वे दैवैकांतवादी बन गये हैं। कुमारपन और कुमारीपन, तथा विधुरपन भी दैव के उदय से होते हैं, किन्तु उनके दूर करने का उपाय है। इसी प्रकार वैधव्य के दूर करने का भी उपाय विधवा-विवाह है। हाथकंकण को आरसी क्या? सौ पचास विधवा-विवाह करके देख लो। जितने विवाह होंगे उतनी विधवाएँ घट जायँगी। अगर विधवाओं का संसारी जीवों की तरह होना अनिवार्य है तो जैसे संसारी जीवों को सिद्ध बनाने की चेष्टा की जाती है उसी तरह विधवाओं को भी सधवा बनाने की चेष्टा करना चाहिये। छः महीना आठ समय में ६०८ जीव संसारी से सिद्ध बन जाते हैं। अगर इतने समय में इतनी ही विधवाएँ सधवा बनायी जाँय तो सब विधवाएं न घटने पर भी बहुत घट जावेंगी।

अगर कोई कहे कि "विधवा-विवाह से नित्य नये उत्पात

और विशाल अनर्थ होंगे, इसीलिये संख्यावृद्धि के प्रलोभन में हमें न पड़ना चाहिये" लेकिन यह भूल है। प्रत्येक रिवाज से कुछ न कुछ हानि और कुछ न कुछ लाभ होता ही है। विचार सिर्फ़ इतना किया जाता है कि हानि ज़्यादा है या लाभ? अगर लाभ ज्यादा होता है तो वह ग्रहण किया जाता है। अगर हानि ज़्यादा होती है तो छोड़ दिया जाता है। विवाह के रिवाज से ही बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, स्त्रियों की गुलामी आदि कुरीतियाँ और दुःपरिस्थितियाँ पैदा हुई हैं। अगर विवाह का रिवाज न होता तो न ये कुरीतियाँ होतीं, न विजातीय-विवाह, विधवा-विवाह आदि के झगड़े खड़े होते। इसलिये क्या विवाह प्रथा बुरी हो सकती है? मनुष्य को बहुतसी बीमारियाँ भोजन करने से होती हैं। तो क्या भोजन न करना चाहिये? हमारे जीवन में ऐसा कौन सा कार्य या समाज में ऐसी कौनसी प्रथा है जिनमें थोड़ी बहुत बुराई न हो? परंतु हमें वे सब काम इस लिये करना पड़ते हैं कि उनसे लाभ अधिक है। विधवा-विवाह से कितने अनर्थ हो सकेंगे, उससे ज़्यादा अनर्थ तो आज विधवा-विवाह न होने से हो रहे हैं। विधवाओं का नारकीय जीवन, गुप्त व्यभिचार का दौर दौरा, अविवाहित पुरुषों का वनगज की तरह डोलना और कसाइयों को भी लज्जित करने वाले भ्रूण-हत्या के दृश्य, ये क्या कम अनर्थ है? इन सब अनर्थों को दूर करने के लिये विधवा-विवाह एक सर्वोत्तम उपाय है। विधवाविवाह से समाज क्षीण नहीं होती, अन्यथा योरोप, अमेरिका आदि में यह तरक्क़ी न होती। अगर विधवाविवाह के विरोध से समाज का उद्धार होता तो हमें पशुओं की तरह गुलामी की

ज़ंजीर में न बँधना पड़ता। हमने विधवा-विवाह का विरोध करके स्त्रियों के मनुष्योचित अधिकारों को हड़पा, इसलिये आज हमें दुनियाँ के साम्हने औरत बन के रहना पड़ता है। मनुष्यों को अछूत समझा: इसलिये आज हम दुनियाँ के अछूत बन रहे हैं। हमारे राक्षसी पापों का प्रकृति ने गिन गिनकर दंड दिया है। फिर भी हम उन्हीं राक्षसी अत्याचारों को धर्म समझते हैं! कहते हैं—विधवा-विवाह से शरीर की विशुद्धि नष्ट हो जायगी! जिस देह के विषय में जैन समाज का बच्चा बच्चा जानता है—

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस बसादि तें मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी॥

ऐसी देह में जो विशुद्धि देखते हैं उनकी आँखें और हृदय किन पाप परमाणुओं से बने हैं, यह जानना कठिन है। व्यभिचारजात शरीर से जब सुदृष्टि सरीखे व्यक्ति मोक्ष तक पहुंचे हैं तब जो लोग ऐसे व्यक्तियों को जैन भी नहीं समझते उन्हें किन मूर्खों का शिरोमणि माना जाय? जैन धर्म आत्मा का धर्म है न कि रक्त, मांस और हड्डियों का धर्म। चमार भी रक्त, मांस में धर्म नहीं देखते। फिर जो लोग इन चीज़ों में धर्म देखते हैं, उन्हें हम क्या कहें?

प्रश्न (२१)—व इसका उत्तर इस में से हटा दिया गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध सम्प्रदाय विशेष के साधुओं से है।

प्रश्न (२२)—क्या रजस्वला के रक्त में इतनी ताकत है कि वह सम्यग्दर्शन का नाश कर सके? यदि नहीं तो क्या सम्यग्दर्शन के रहते अविवाहित रजस्वला के माता

पिता आदि नरक में जा सकते हैं ? यदि मान लिया जाय कि उस रक्त में वैसी शक्ति है तो क्या विवाह कर देने से वह नष्ट हो जाती है ?

उत्तर—रजस्वला के रक्त में सम्यग्दर्शन नष्ट करने की ताकत नहीं है। अविवाहित अवस्था में रजोदर्शन होने से पाप बन्ध नहीं, किन्तु पुण्य बंध होता है। क्योंकि जितने दिन तक ब्रह्मचर्य पलता रहे उतने दिनतक, अच्छा ही है। हाँ, अगर कोई कन्या वा विधवा, विवाह करना चाहे और दूसरे लोग उसके इस कार्य में बाधा डालें तो वे पाप के भागी होते हैं, क्योंकि इससे व्यभिचार फैलता है। गर्भधारण की योग्यता व्यर्थ जाने से पाप का बंध नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा माना जायगा तो उन राजाओं को महापापी कहना पड़ेगा जो सैकड़ों स्त्रियोंको छोड़कर मुनि बन जाते थे और रजोदर्शन बन्द होने के पहिले आर्यिका बनना भी पाप कहलायगा। विधवा विवाह के विरोधी इस युक्ति से भी महापापी कहलायेंगे कि वे विधवाओं की गर्भधारण शक्ति को व्यर्थ जाने देते हैं। जो लोग यह समझते हैं कि "रजोदर्शन के बाद गर्भाधानादि संस्कार न करने से माता पिता संस्कारलोपक और जिनमार्ग-लोपी हो जाते हैं" वे संस्कार का मतलब ही नहीं समझते। विवाह भी तो एक संस्कार है; फिर जिन तीर्थंकरों ने विवाह नहीं कराये वे क्या संस्कार लोपक और जिनमार्गलोपी थे ? ब्राह्मी और सुन्दरी जीवनभर कुमारी ही रहीं तो क्या उनके पिता भगवान ऋषभदेव और माता मरुदेवी, भाई भरत, बाहुबली आदि नरक गये ? ये लोग भी क्या जिनमार्गलोपी ही थे ? गर्भाधानादि संस्कार तभी करना चाहिये जब कि स्त्री

पुरुष के हृदय में गर्भाधान की तीव्र इच्छा हो, फिर भले ही वह संस्कार २५ वर्ष की उम्र में करना पड़े। इच्छा पैदा होने के पूर्व ऐसे संस्कार करना बलात्कार के समान पैशाचिक कार्य है।

प्रश्न (२३)—चतुर्थ, पंचम, सैतवाल आदि जातियों में विधवा विवाह कब से प्रचलित है और ये जातियाँ कब से जैन जातियाँ हैं?

उत्तर—जैन समाज की वर्तमान सभी जातियाँ हज़ार वर्ष से पुरानी नहीं हैं। जिन लोगों को मिलाकर ये जातियाँ बनाई गई थीं उनमें विधवा विवाह का रिवाज पहिले से ही था। यह इन जातियों की ही नहीं किन्तु दक्षिण प्रान्त मात्र की न्यायोचित रीति है। दक्षिण में अन्य अजैन लोगों में भी जोकि उच्चवर्णी हैं—यह रिवाज पाया जाता है। ऐतिहासिक सत्य तो यह है कि उत्तर भारत में पर्दे का रिवाज आजाने से यहाँ की स्त्रियाँ मकान के भीतर कैद हो गईं और पुरुषों के चङ्गुल में फँसगईं। पुरुषों ने इस परिस्थिति का बुरी तरह उपभोग किया। उन्होंने स्त्रियों के मनुष्योचित अधिकार हड़प लिये। परन्तु दक्षिण की स्त्रियाँ घर और बाहर दोनों जगह काम करती थीं, इस लिये स्वार्थी पुरुषों का कुचक्र उनके ऊपर न चल पाया और उनके पुनर्विवाह आदि के अधिकार सुरक्षित रहे। हाँ, जिन घरों की स्त्रियाँ आराम तलब हो कर घर में पड़ी रहीं उन घरों के स्वार्थी पुरुषों ने मौक़ा पाकर उनके अधिकार हड़प लिये। इस लिये थोड़े से घरों में यह रिवाज नहीं है। उत्तर प्रान्त में भी शूद्रों में विधवा विवाह का रिवाज है। इसका का कारण यही है कि

उनकी स्त्रियां घर के अतिरिक्त बाहर का काम भी करती हैं। अब ज़माना बदल गया है। लेकिन जिस ज़माने में स्त्री पुरुषों का संघर्ष हुआ था उस ज़माने में जहाँ की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरुषों की पूरी गुलाम बनीं वहाँ की स्त्रियों के बहुत से अधिकार छिन गये। उनमें पुनर्विवाह का अधिकार मुख्य था: जहाँ स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ी रहीं वहाँ यह अधिकार बचा रहा।

प्रश्न (२४)—विधवा विवाह से इनके कौन कौन से अधिकार छिन गये हैं तथा कौन कौन सी हानियाँ हुई हैं?

उत्तर—विधवा विवाह से किसी के अधिकार नहीं छिनते। अधिकार छिनते हैं कमजोरी से और मूर्खता से। अफ्रिका, अमेरिका आदि में अनेक जगह भारतीयों के साथ अछूत कैसा व्यवहार किया जाता है। इसका कारण भारतीयों की कमज़ोरी है। दक्षिण के उपाध्यायों में विधवा विवाह का रिवाज है, वे निर्माल्य भक्षण भी करते हैं। फिर भी उनके अधिकार सबसे ज्यादा हैं: इसका कारण है समाज की मूर्खता। उत्तर प्रान्त के दस्से अगर विधवा विवाह न करें तो भी उन्हें पूजा के अधिकार नहीं मिलेंगे, परन्तु दक्षिण के लोगों को सर्वाधिकार हैं। अधिकार छिनने के कारण तो दूसरे ही होते हैं। हाँ, धार्मिक दृष्टि से विधवा विवाह वालों का कोई अधिकार नहीं छिनता। स्वर्गों में भी विधवा विवाह है, फिर भी देव लोग नंदीश्वर में, समवशरण में तथा अन्य कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों में भगवान की पूजा वन्दना आदि करते हैं। विधवा विवाह, कुमारी विवाह के समान धर्मानुकूल है: यह बात हम पहिले सिद्ध कर चुके हैं। जब

कुमारीविवाह से कोई अधिकार नहीं छिनते तो विधवा विवाह से कैसे छिनेंगे। कुछ लोग नासमझी से, विधवा विवाह से उन अधिकारों का छिनना बतलाते हैं जो व्यभिचार से भी नहीं छिन सकते! इस सम्बन्ध के कुछ शास्त्रीय उदाहरण सुनिये—

कौशाम्बी नगरी के राजा सुमुख ने वीरक सेठ की स्त्री को हर लिया; फिर दोनों ने मुनियों को आहार दिया और मरकर विद्याधर, विद्याधरी हुए। इनही से हरिवंश चला। पद्मपुराण और हरिवंशपुराण की इस कथा से मालूम होता है कि व्यभिचार से मुनिदान अधिकार नहीं छिनता। राजा मधु ने चन्द्राभा का हरण किया था। पीछे से दोनों ने जिनदीक्षा ली और सोलहवें स्वर्ग गये। इससे मालूम होता है कि व्यभिचार से मुनि, आर्यिका बनने का भी अधिकार नहीं छिनता। प्रायश्चित ग्रन्थों के देखने से मालूम होता है कि आर्यिका भी अगर व्यभिचारणी हो जाय तो प्रायश्चित के बाद फिर आर्यिका बनाई जासकती है। व्यभिचारजात सुदृष्टि सुनार ने मुनिदीक्षा ली और मोक्ष गया, यह बात प्रसिद्ध ही है। इस से मालूम होता है कि व्यभिचार से या व्यभिचार जात होने से किसी के अधिकार नहीं छिनते। विधवाविवाह तो व्यभिचार नहीं है, उससे किसी के अधिकार कैसे छिन सकते हैं?

प्रश्न (२५)—इन जातियों में कोई मुनि दीक्षा ले सकता है या नहीं? यदि ले सकता है तो क्या उनके ख़ानदान में विधवाविवाह नहीं हुआ और क्या विधवाविवाह करने वाले ख़ानदानों से बेटी व्यवहार नहीं हुआ?

उत्तर—इन जातियों में मुनिदीक्षा लेते हैं। बेटी व्यव-

हार भी सब जगह होता है। यह सब धर्मानुकूल है। इसका खुलासा २३ और २४ वें प्रश्न के उत्तर में हो चुका है।

प्रश्न (२६)—व्यभिचार से पैदा हुई सन्तान मुनिदीक्षा ले सकती है या नहीं? यदि नहीं तो व्यभिचारिणी का पुत्र सुदृष्टि सुनार उसी भव से मोक्ष क्यों गया? क्या यह कथा मिथ्या है?

उत्तर—यदि कथा मिथ्या भी हो तो इससे यह मालूम होता है कि जिन जिन आचार्यों ने यह कथा लिखी है उन्हें व्यभिचारजात सन्तान को मुनि दीक्षा लेने का अधिकार स्वीकार था। यदि कथा सत्य हो तो कहना ही क्या है? मनुष्य किसी भी तरह कहीं भी पैदा हुआ हो, वैराग्य उत्पन्न होने पर उसे मुनिदीक्षा लेने का अधिकार है। इसमें तो सन्देह नहीं कि सुदृष्टि सुनार था, क्योंकि दोनों भवों में आभूषण बनानेका धंधा करता था, जोकि सुनार का काम है। रत्नविज्ञानिक शब्द से इतना ही मालूम होता है कि वह रत्नों के जड़ने के काम में बड़ा होशियार था। व्यभिचार जातता तो स्पष्ट ही है, क्योंकि जिस समय वह मरा और अपनी स्त्री के ही गर्भ में आया उसके पहिले ही उसकी स्त्री व्यभिचारणी हो चुकी थी और जार से ही उसने सुदृष्टि की हत्या करवाई थी। वह अपने वीर्य से ही पैदा हुआ हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वीर्य व्यभिचारिणी के गर्भ में डाला गया था। इतने पर भी जब कोई दोष नहीं है तो विधवा-विवाह में क्या दोष है? विधवा विवाह से जो संतान पैदा होगी वह भी तो एक ही वीर्य से पैदा होगी।

प्रश्न (२७)—त्रैवर्णिकाचार के ग्यारहवें अध्याय में

१७४ वें आदि श्लोकों से स्त्री-पुनर्विवाह का समर्थन होता है या नहीं ?

उत्तर—होता है। त्रैवर्णिकाचार के रचयिता सोमसेन ने हिन्दू-स्मृतियों की नक़ल की है, यहाँ तक कि वहाँ के श्लोक चुरा चुरा कर ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाया है। हिन्दू-स्मृतियों में विधवा-विवाह का विधान पाया जाता है इसलिये उनमें भी इसका विधान किया है। दूसरी बात यह है कि दक्षिण प्रान्त में (जहाँ कि सोमसेन भट्टारक हुए हैं) विधवा-विवाह का रिवाज सदा से रहा है। यह बात हम तेईसवें प्रश्न के उत्तर में कह चुके हैं। इसलिये भी सोमसेन जी ने विधवा-विवाह का समर्थन किया है। सब से स्पष्ट बात तो यह है कि उनने गालवऋषि का मत विधवा-विवाह के पक्ष में उद्धृत किया है लेकिन उसका खण्डन बिलकुल नहीं किया। पाठक ज़रा निम्न लिखित श्लोक पर ध्यान दें :—

कलौतु पुनरुद्वाहं वर्जयेदिति गालवः।
कस्मिंश्चिद्देशे इच्छन्ति न तु सर्वत्र केचन॥

"गालव ऋषि कहते हैं कि कलिकाल में पुनर्विवाह न करे। परन्तु कुछ लोग चाहते हैं कि किसी किसी देश में करना चाहिये।"

इससे साफ़ मालूम होता है कि दक्षिण प्रान्त में उस समय भी पुनर्विवाह का रिवाज चालू था जिसका विरोध भट्टारकजी भी नहीं कर सके। इसलिये उनने विधवा-विवाह के विरोध में एक पंक्ति भी न लिखी। जो आदमी ज़रा ज़रा सी बात में सात पुश्त को नरक में भेजता है वह विधवा विवाह की ज़रा भी निंदा न करे यह बड़े आश्चर्य की बात है

सोमसेन ने गालवऋषि का मत उद्धृत करके उसका खण्डन करना तो दूर, अपनी असम्मति तक ज़ाहिर नहीं की। इससे साफ़ मालूम होता है कि सोमसेन विधवा-विवाह के पक्ष में थे, अथवा विपक्ष में नहीं थे। अन्यथा उन्हें गालवऋषि के मतको उद्धृत करने की क्या ज़रूरत थी? और अगर किया था तो उसका विरोध तो करते।

इससे एक बात और मालूम होती है कि हिन्दू लोगों में कलिकाल में पुनर्विवाह वर्जनीय है (सो भी, किसी किसी के मत से नहीं है) लेकिन पहिले युगों में पुनर्विवाह वर्जनीय नहीं था। श्रीमान पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार ने जैन जगत् के १८ वें अङ्क में पराशर, वसिष्ठ, मनु, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों के वाक्य देकर हिन्दू-धर्मशास्त्रों में स्त्री-पुनर्विवाह को बड़े अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया है। जो लोग "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सुनारीणां पतिरन्यो विधीयते" इस श्लोक में पतौ का अपतौ अर्थ करते हैं वे बड़ी भूल में हैं। अमितगति आचार्य ने इस श्लोक को विधवा-विवाह के समर्थन में उद्धृत किया है। वेद में पति शब्द के पतये आदि रूप बीसों जगह मिलते हैं। मुख़्तार साहिब ने व्याकरण आदि के प्रकरणों का उल्लेख करके भी इस बात को सिद्ध किया है। हितोपदेश का निम्नलिखित श्लोक भी इसी बात को सिद्ध करता है—

'शशिनीव हिमार्तानाम् धर्मार्तानाम् रवाविव।
मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ'॥

शान्तिपुराण में भी 'पतेः' ऐसा प्रयोग मिलता है। हिन्दू-धर्मशास्त्रों से विधवा-विवाह के पोषण में बहुत ही

अधिक प्रमाण हैं। इस लिये यह बात सिद्ध होती है कि हिन्दुओं में पहिले आमतौर पर पुनर्विवाह होता था। ऐसे विवाहों की सन्तान धर्मपरिवर्तन करके जैनी भी बनती होगी। जिस प्रकार आज दक्षिण में विधवा-विवाह चालू है उसी तरह उस ज़माने में उत्तर प्रान्त में भी रहा होगा। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र के देखने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। चाणिक्य ने यह ग्रन्थ महाराजा चंद्रगुप्त के राज्य के लिये बनाया था, और जैनग्रंथों से यह सिद्ध है कि महाराजा चंद्र-गुप्त जैनी थे। एक जैनी के राज्य में पुनर्विवाह के कैसे नियम थे, यह देखने योग्य है—

"ह्रस्व प्रवासिनां शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षे रप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः। प्रतिविहिता द्विगुणं कालं॥ अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परंचत्वारिवर्षाण्यष्टौवा ज्ञातयः॥ ततो यथा दत्त मादाय प्रमुञ्चयुः॥ ब्राह्मणमधीयानं दश वर्षाण्य प्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुः क्षयादाकांक्षेत॥ सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत्। कुटुम्बर्द्धि लोपे वा सुखावस्थै विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम्।'

अर्थात्—थोड़े समय के लिये बाहर जाने वाले शूद्र वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तथा पुत्रवती इससे अधिक समय तक उनके आनेकी प्रतीक्षा करें। यदि पति उनकी आजीविका का प्रबन्ध कर गये हों तो वे दुगुने समय उनकी प्रतीक्षा करें और जिनके भोजनाच्छादन का प्रबन्ध न हो उनका उनके समृद्ध बंधुबांधव चार वर्ष या अधिक से अधिक आठ वर्ष तक पालन पोषण करें। इसके

बाद प्रथम विवाह में दिये धन को वापिस लेकर दूसरी शादी के लिये आज्ञा देवें। पढ़ने के लिये बाहर गये हुए ब्राह्मणों की पुत्ररहित स्त्रियाँ दश वर्ष और पुत्रवती स्त्रियाँ बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करें। यदि कोई व्यक्ति राजा के किसी कार्य से बाहर गये हों तो उनकी स्त्रियाँ आयु पर्यंत उनकी प्रतीक्षा करें। यदि किसी समान वर्ण (ब्राह्मणादि) पुरुष से किसी स्त्री के बच्चा पैदा होजाय तो वह निन्दनीय नहीं। कुटुम्ब की सम्पत्ति नाश होने पर अथवा समृद्ध बन्धुबांधवों से छोड़े जाने पर कोई स्त्री जीवन निर्वाह के लिये अपनी इच्छा के अनुसार अन्य विवाह कर सकती है।

प्रकरण ज़रा लम्बा है: इसलिये हमने थोड़ा भाग ही दिया है। इसमें विधवाविवाह और सधवा विवाह का पूरा समर्थन किया है। यह है सवा दो हज़ार वर्ष पहिले की एक जैन नरेश की राज्यनीति। अगर चन्द्रगुप्त जैनी नहीं थे तो भी उस समय का यह आम रिवाज मालूम होता है।

आचार्य सोमदेव ने भी लिखा है—विकृत पत्यूढापि पुनर्विवाहमर्हतीति स्मृतिकाराः -अर्थात् जिस स्त्री का पति विकारी हो, वह पुनर्विवाह की अधिकारिणी है, ऐसा स्मृतिकार कहते हैं। सोमदेव आचार्य ने ऐसा लिखकर स्मृतिकारों का बिल्कुल खण्डन नहीं किया है, इससे सिद्ध है कि वे भी पुनर्विवाह से सहमत थे। इसी रीति से सोमसेन ने भी लिखा है—उनने गालव ऋषि के वचन उद्धृत करके विधवाविवाह का समर्थन किया है।

प्रश्न (२८)—अगर किसी अबोध कन्या से कोई बलात्कार करे तो वह कन्या विवाह योग्य रहेगी या नहीं।

उत्तर—क्यों न रहेगी? यह बात तो उन्हें भी स्वीकार करना चाहिये जो स्त्रियों के पुनर्विवाह के विरोधी हैं, क्योंकि उन लोगों के मत से विवाह आगम की विधि से होता है। बलात्कार में आगम की विधि कहाँ है? इस लिये वह विवाह तो है नहीं और अविवाहित कन्या को तो सभी के मत से विवाह का अधिकार है। रही बलात्कार की बात सो उसका दंड बलात्कार करने वाले पापी पुरुष को मिलना चाहिये—बेचारी कन्या को क्यों मिले? कुछ लोग यह कहते हैं कि "यदि बलात्कार करने वाला पुरुष कन्या का सजातीय योग्य हो तो उसी के साथ उस कन्या का पाणिग्रहण कर देना चाहिये; अन्यथा कन्या जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहे।" जो लोग बलात्कार करने वाले पापी, नीच, पिशाच पुरुष को भी योग्य समझते हैं उनकी धर्मबुद्धि की बलिहारी! ब्रह्मचर्य पालना कन्या की इच्छा की बात है, परन्तु अगर वह विवाह करना चाहे तो धर्म उसे नहीं रोकता। न समाज को ही रोकना चाहिये। जो लोग पुनर्विवाह के विरोधी हैं उनमें अगर न्याय बुद्धि का अनंतवाँ हिस्सा भी रहेगा तो वे भी न रोकेंगे क्योंकि ऐसी कन्या का विवाह करना पुनर्विवाह नहीं है।

प्रश्न (२६)—त्रैवर्णिकाचार से तलाक़ के रिवाज का समर्थन होता है। क्या यह उचित है?

उत्तर—दक्षिण प्रांतमें तलाक़ का रिवाज है इसलिये सोमसेन ने इस रिवाज की पुष्टि की है। वे किसी को दसवें वर्ष में, किसी को १२ वें वर्ष में, किसी को पंद्रहवें वर्ष में, तलाक़ देने की (छोड़ देने की) व्यवस्था देते हैं। जिसका बोलचाल अच्छा न हो उसको तुरंत तलाक़ देने की व्यवस्था

है। इस प्रथा का धर्म के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। समाज की परिस्थिति देखकर उसी के अनुसार इस विषय में विचार करना चाहिए। परंतु जिन कारणों से सोमसेन जी ने तलाक़ देने का उपदेश दिया है उनसे तलाक़ देना अन्याय है। यों भी तलाक़ प्रथा अच्छी नहीं है।

प्रश्न (३०)—किस कारण से पुराणों में विधवा विवाह का उल्लेख नहीं मिलता? उस समय की परिस्थिति में और आज की परिस्थिति में अंतर है या नहीं?

उत्तर—पुराणों के टटोलने के पहिले हमें यह देखना चाहिये कि पौराणिक काल में विधवाविवाह या स्त्रियों के पुनर्विवाह का रिवाज था या नहीं?

ऐतिहासिक दृष्टि से जब हम इस विषय में विचार करते हैं तब हमें कहना पड़ता है कि उस समय पुनर्विवाह का रिवाज ज़रूर था। २७ वें प्रश्न के उत्तर में कहा जा चुका है कि हिंदू धर्मशास्त्र के अनुसार विधवाविवाह सिद्ध है। गालव आदि के मत का उल्लेख सोमसेन जी ने भी किया है। इससे सिद्ध है कि जैनसमाज में यह रिवाज हो या न हो परंतु हिंदू समाज में अवश्य था। हिंदू पुराणों के देखने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। उनके ग्रंथों के अनुसार सुग्रीव की स्त्री का पुनर्विवाह हुआ था; धृतराष्ट्र पांडु और विदुर नियोग की सन्तान हैं। यदि यह कहा जाय कि ये कहानियाँ झूठी हैं तो भी हानि नहीं, क्योंकि इससे इतना अवश्य मालूम होता है कि जिन लोगों ने ये कहानियाँ बनाई हैं उन लोगों में विधवाविवाह और नियोग का रिवाज ज़रूर था और इसे वे उचित समझते थे। दमयंती ने नल को

ढूँढने के लिये अपने पुनर्विवाह के लिये स्वयम्बर किया था। माना कि उसे दूसरा विवाह करना नहीं था, परंतु इससे यह अवश्य ही सिद्ध होता है कि उस समय पुनर्विवाह का रिवाज था और राजा लोग भी उसमें योग देते थे। उपर्युक्त विवेचन से इतनी बात सिद्ध हुई कि चतुर्थकाल में अजैन लोगों में स्त्रियों के पुनर्विवाह का रिवाज था। अब हम आगे बढ़ते हैं।

चतुर्थ काल में ऋषभदेव भगवान के बाद शांतिनाथ भगवान के पहिले प्रत्येक तीर्थंकर के अंतराल में ऐसा समय आता रहा है जब की जैन धर्म का विच्छेद हो जाता था। ऐसे समय में अजैनों के धार्मिक विश्वास के अनुसार विधवाविवाह, नियोग आदि अवश्य होते थे। धर्मविच्छेद का वह अंतराल असंख्य वर्षों का होता था। इसमें करोड़ों पीढ़ियाँ इसी तरह निकल जाती थीं और इतनी पीढ़ियों तक विधवा विवाह, नियोग आदि की प्रथा चलती रहती थी। फिर इन्हीं में जैनी लोग पैदा होते थे अर्थात् दीक्षा लेकर जैनी बनते थे। इस लिये जैनी भी इस प्रथा से अछूते नहीं थे। दूसरी बात यह है कि दीक्षान्वय क्रिया के द्वारा अजैनों को जैनी बनाया जाता था। इस तरह भी इस प्रथा की छूत लगती रहती थी। जैन शास्त्रों के अनुसार ही जब इतनी बात सिद्ध हो जाती है तब विधवा विवाह का प्रथमानुयोग में उल्लेख न होना सिर्फ़ आश्चर्य की बात रह जाती है; विशेष महत्व की नहीं। परंतु ज़रा और गम्भीर विचार करने पर इसकी आश्चर्यजनकता भी घट जाती है और महत्व तो बिलकुल नहीं रहता।

आजकल हमारे जितने पुराण हैं वे सब श्रेणिक के पूछने पर गौतम गणधर के कहे हुए बतलाये जाते हैं। आजकल जो रामायण, महाभारत प्रसिद्ध हैं, श्रेणिक ने उन सब पर विचार किया था और जब वह चरित्र उन्हें न जँचे तो गौतम से पूछा और उनने सब चरित्र कहा और बुराइयों की बीच बीच में निन्दा की। लेकिन इसके बीच में उनने कहीं विधवा विवाह की निन्दा नहीं की। हमारे पंडित लोग विधवा विवाह को परस्त्रीसेवन से भी बुरा बतलाते हैं लेकिन गौतम गणधर ने इतने बड़े पाप (?) के विरोध में एक शब्द भी नहीं कहा। इससे साफ़ मालूम होता है कि गौतम गणधर की दृष्टि में भी विधवा विवाह की बुराई कुमारी विवाह से अधिक नहीं थी अन्यथा जब परस्त्रीसेवन की निन्दा हुई और मिथ्यात्व की भी निन्दा हुई तब विधवाविवाह की निन्दा क्यों नहीं हुई ?

एक बात और है। शास्त्रों में परस्त्रीसेवन की निन्दा जिस कारण से की गई है वह कारण विधवा विवाह को लागू ही नहीं होता। जैसे—

यथा च जायते दुःखं रुद्धायामात्म योषिति।
नरान्तरेण सर्वेषामियमेव व्यवस्थितिः॥

"जैसे अपनी स्त्री को कोई रोकले तो अपने को दुःख होता है उसी तरह दूसरे की स्त्री रोक लेने पर दूसरे को भी होता है।"

पाठक ही विचारें, जिसका पति मौजूद है उसी स्त्री के विषय में ऊपर की युक्ति ठीक कही जा सकती है। लेकिन विधवा का तो पति ही नहीं है, फिर दुःख किसे होगा ? अगर

कहा जाय कि कोई सम्बन्धी तो होंगे, उन्हें तो दुःख हो सकता है; लेकिन यह तो ठीक नहीं, क्योंकि इस विषय में स्वामी को छोड़ कर किसी दूसरे के दुःख से पाप नहीं होता। हां अगर स्त्री स्वयं राजी न हो तो बात दूसरी है । अन्यथा रुक्मणीहरण आदि बीसों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें माता पिता को दुःख हुआ था फिर भी वह पाप नहीं माना गया। इसका कारण यही है कि रुक्मणी का कोई स्वामी नहीं था जिसके दुःख की पर्वाह की जाती और वह तो स्वयं राजी थी ही। विधवा के विषय में भी बिलकुल यही बात है। उसका कोई स्वामी तो है नहीं जिसके दुःख की पर्वाह की जाय और वह स्वयं राजी है। हां, अगर वह राजी न हो तो उसका विवाह करना अवश्य पाप है । परंतु यह बात कन्या के विषय में भी है। कन्या अगर राजी न हो तो उसका विवाह करना अन्याय है; पाप है।

इस विवेचन से हमें यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि गौतमगणधर ने विधवा विवाह की निन्दा क्यों नहीं की? शास्त्रों में विधवा विवाह का उल्लेख क्यों नहीं है? इस के पहले हमें यह विचारना चाहिये कि विधवाओं का उल्लेख क्यों नहीं है? विधवाएँ तो उस समय भी होती थीं? परंतु जिस प्रकार कन्याओं के जीवन का चित्रण है, पत्नीजीवन का चित्रण है, उसी प्रकार प्रायः वैधव्य का चित्रण नहीं है । इतना ही नहीं बल्कि वैधव्य दीक्षा किसी ने ली इसका भी चित्रण नहीं है। इस कारण क्या हम यह कह सकते हैं कि उस समय विधवाएँ नहीं होती थीं या वैधव्य दीक्षा कोई नहीं लेता था? यदि इन चित्रणों के अभाव में भी विधवा

और वैधव्यदीक्षा का उस समय सद्भाव माना जा सकता है तो विधवाविवाह के चित्रण के अभाव में भी उस समय विधवाविवाह का सद्भाव माना जा सकता है, क्योंकि जो रिवाज धर्मशास्त्र के अनुकूल है उसके प्रचार में चतुर्थकाल के धार्मिक और उदार लोग बाधा डालते होंगे इसकी तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती।

प्रथमानुयोग शास्त्र कोई दिनचर्या लिखने की डायरी नहीं। उनमें उन्हीं घटनाओं का उल्लेख है जिनका सम्बन्ध शुभाशुभ कर्मों से है। वर्णन को सरस बनाने के लिये उनने सरस रचना अवश्य की है लेकिन अनावश्यक चित्रण नहीं किया, बल्कि अनेक आवश्यक चित्रण भी रह गये हैं। दीक्षान्वय क्रिया का जैसा विधान आदिपुराण में पाया जाता है, उसका चित्रण किसी पात्र के चरित्र में नहीं किया, जब कि सैकड़ों अजैनों ने जैनधर्म की दीक्षा ली है। इस लिये क्या यह कहा जा सकता है कि उस समय दीक्षान्वय की वह विधि चालू नहीं थी? यही बात विधवाविवाह के बारे में भी है।

विवाह-विधान के आठ भेद बतलाये हैं, परन्तु प्रथमानुयोग के चरित्रों में दो एक विधानों के अतिरिक्त और कोई विधान नहीं मिलते। लेकिन इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय वैसे विधान चालू नहीं थे।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि विधवाविवाह कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना नहीं थी जिसका चित्रण किया जाता। यहाँ शंका हो सकती है कि 'कुमारी-विवाह भी ऐसी क्या महत्वपूर्ण घटना थी जिसका चित्रण किया गया?' इसका उत्तर थोड़े में यही दिया जा सकता है कि प्रथमानुयोग

ग्रन्थों में कुमारी-विवाह का उल्लेख सिर्फ़ वहीं हुआ है जहाँ पर कि विवाह का सम्बन्ध किसी महत्वपूर्ण घटना से हो गया है। जैसे सुलोचना के विवाह का सम्बन्ध जयकुमार अर्ककीर्ति के युद्ध से है, सीता के विवाह का सम्बन्ध धनुष चढ़ाने और भामंडल के समागम से है इत्यादि। बाकी विवाहों का कुछ पता ही नहीं लगता; सिर्फ़ स्त्रियों की गिनती से उनका अनुमान किया जाता है।

प्रचीन समय में कुमारी विवाहों में किसी किसी विवाह का सम्बन्ध किसी महत्वपूर्ण घटना से हो जाता था इस लिये उनका उल्लेख पाया जाता है। परन्तु विधवा विवाह में ऐसी महत्वपूर्ण घटना की सम्भावना नहीं थी या घटना नहीं हुई इस लिये उनका उल्लेख भी नहीं हुआ।

शास्त्रों में सिर्फ़ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है। महत्वपूर्ण घटनाएं अच्छी भी हो सकती हैं और बुरी भी हो सकती हैं। इसीलिये परस्त्रीहरण आदि बुरी घटनाओं का भी उल्लेख है। बुरे कार्यों की निन्दा और उनका बुरा फल बतलाने के लिये यह चित्रण हुआ है। अगर विधवाविवाह भी बुरी घटना होती तो उसका पाप फल बतलाने के लिये क्या एक भी घटना का उल्लेख न होता। इससे साफ़ मालूम होता है कि विधवाविवाह का अनुल्लेख उसकी बुराई को नहीं, किन्तु साधारणता को बतलाता है। जब शास्त्रों में परस्त्रीहरण और बाप बेटी के विवाह का उल्लेख मिलता है (देखो कार्त्तिकेय स्वामी की कथा—आराधना कथाकोष में) और उनकी निन्दा की जाती है, किन्तु विधवाविवाह का उल्लेख उसकी निन्दा करने और दुष्फल बताने को भी नहीं

मिलता; इतने पर भी जो लोग विधवाविवाह को बड़ा पाप समझते हैं उनकी समझ की बलिहारी। सारांश यह है कि विधवा विवाह न तो कोई पाप है, न कोई महत्वपूर्ण बात है जिससे उसका उल्लेख शास्त्रों में किया जाता।

जब यह बात सिद्ध हो चुकी कि विधवाविवाह जैनशास्त्रों के अनुकूल और पुरानी प्रथा है तब इस बात की ज़रूरत नहीं है कि दोनों कालोंकी परिस्थितिमें अन्तर दिखलाया जाय, फिर भी कुछ अन्तर दिखला देना हम अनुचित नहीं समझतेः—

पहिले ज़माने में विवाह तभी किया जाता था जब मातापिता देख लेते थे कि इनमें एक तरह का रागभाव पैदा हो गया है, जिसको सीमित करने के लिये विवाह आवश्यक है, तब वे विवाह करते थे। परन्तु आजकल के माता पिता असमय में ही बिना ज़रूरत विवाह कर देते हैं; बस फिर उनकी बला से। पहिले ज़माने में भ्रूणहत्याएँ नहीं होती थीं। परन्तु आजकल इन हत्याओं का बाज़ार गर्म है।

पहिले ज़माने में अगर किसी स्त्री से कोई कुकर्म हो जाता था तो भी वह और उसकी संतान जाति से पतित नहीं मानी जाती थी। उनकी योग्य व्यवस्था की जाती थी। ज्येष्ठा आर्यिका का उदाहरण काफ़ी होगा। उस समय जैनसमाज में जन्मसंख्या की अपेक्षा मृत्युसंख्या अधिक नहीं थी।

विधवा स्त्रियोंके साथऐसे अत्याचार नहीं होतेथे; जैसे कि आजकल होते हैं। इस प्रकार अन्तर तो बहुत से हैं,परन्तु प्रकरणके लिये उपयोगी थोड़ेसे अन्तर यहाँ लिख दिये गयेहैं।

प्रश्न (३१)—सामाजिक नियम अथवा व्यवहार धर्म आवश्यकतानुसार बदल सकता है या नहीं?

उत्तर—सामाजिक नियम अथवा व्यवहार धर्म, इन दोनों शब्दों के अर्थ में अन्तर है, परंतु सामाजिक नियम, व्यवहार धर्म की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकते हैं। इस लिये उनमें अभेद रूप से व्यवहार किया जाता है। जो सामाजिक नियम व्यवहार धर्म रूप नहीं हैं अर्थात् निश्चय धर्म के पोषक नहीं हैं वे नादिरशाही के नमूने अथवा भेड़ियाधसानी मूर्खता के चिन्ह हैं। व्यवहार धर्म (तदन्तर्गत होने से सामाजिक नियम भी) सदा बदलता रहता है। व्यवहार धर्म में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा है। जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें सदा परिवर्त्तन होता है, तब तदाश्रित व्यवहार धर्म में परिवर्तन क्यों न होगा ? व्यवहार धर्म में अगर परिवर्तन न किया जाय तो धर्म जीवित ही नहीं रह सकता।

मोक्षमार्ग में ज्यों ज्यों उच्चता प्राप्त होती जाती है त्यों त्यों भेद घटते जाते हैं। सिद्धों में परस्पर जितना भेद है उससे ज़्यादा भेद अरहंतों में है और उससे भी ज़्यादा मुनियों में और उससे भी ज़्यादा श्रावकों में है।

ऊपरी गुण स्थानों में कर्मों का नाश, केवलज्ञानादि की उत्पत्ति, शुक्ल ध्यान आदि की दृष्टि से समानता है; परन्तु शुक्ल ध्यान के विषय आदिक की दृष्टि से भेद भी है। और भी बहुत सी बातों में भेद है। कोई सामायिक संयम रखता है, कोई छेदोपस्थापना। कोई स्त्री वेदी है, कोई पुंवेदी, कोई नपुंसक वेदी। इन जुदे जुदे परिणामों से भी सब यथाख्यात संयम को प्राप्त करते हैं। भगवान अजितनाथ से लेकर भगवान् महावीर तक छेदोपस्थापना संयम का उपदेश ही नहीं

था। भगवान् ऋषभदेव और भगवान महावीर ने इसका भी उपदेश दिया! मुनियों के लिये कमंडलु रखना आवश्यक है, परन्तु तीर्थङ्कर और सप्त ऋद्धि वाले कमंडलु नहीं रखते। मतलब यह कि व्यवहार धर्म का पालन आवश्यकता के अनुसार किया जाता है—उसका कोई निश्चित रूप नहीं है।

श्रावकाचार में तो यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है। छट्वीं प्रतिमा में कोई रात्रि भोजन का त्याग बताते हैं तो कोई दिनमें स्त्री सेवन का त्याग! अष्ट मूलगुण तो समय समय पर बदलते ही रहे हैं और वे इस समय चार तरह के पाये जाते हैं! किसी के मतसे वेश्यासेवी भी ब्रह्मचर्याणुव्रती हो सकता है किसी के मत से नहीं! जो लोग यह समझते हैं कि निश्चयधर्म एक है इसलिये व्यवहारधर्म भी एक होना चाहिये, उन्हें उपर्युक्त विवेचन पर ध्यान देकर अपनी बुद्धि को सत्यमार्ग पर लाना आवश्यक है।

कई लोग कहते हैं—"ऐसा कोई सामाजिक नियम अथवा क्रिया नहीं है जो धर्म से शून्य हो; सभी के साथ धर्म का सम्बन्ध है अन्यथा धर्मशून्य क्रिया अधर्म ठहरेगी"। यह कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु जब येही लोग कहने लगते हैं कि सामाजिक नियम तो बदल सकते हैं, परन्तु व्यवहार धर्म नहीं बदल सकता तब इनकी अक्ल पर हँसी आने लगती है। वे व्यवहार धर्म के बदलने से निश्चय धर्म बदलने की बात कहके अपनी नासमझी तो प्रगट करते हैं, किन्तु धर्मानुकूल सामाजिक नियम बदलने की बात स्वीकार करके भी धर्म में परिवर्तन नहीं मानते। ऐसी समझदारी तो अवश्य ही अजायबघर में रखने लायक है।

यहाँ हम इस बात का खुलासा कर देना चाहते हैं कि व्यवहारधर्म के बदलने से निश्चय धर्म नहीं बदलता। दवाइयाँ हज़ारों तरह की होती हैं और उन सबसे बीमार आदमी निरोग बनाया जाता है। रोगियों की परिस्थिति के अनुसार ही दवाई की व्यवस्था है। एक रोगी के लिये जो दवाई है दूसरे को वही विष हो सकता है। एक के लिये जो विष है, दूसरे को वही दवाई हो सकती है। प्रत्येक रोगी के लिये औषध का विचार जुदा जुदा करना पड़ता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये व्यवहारधर्म जुदा जुदा है। सभी रोगों के लिये एक ही तरह की दवाई बताने वाला वैद्य जितना मूर्ख है उससे भी ज़्यादा मूर्ख वह है जो सभी व्यक्तियों के लिये सभी समय के लिये एक ही सा व्यवहार धर्म बतलाता है। इस पर थोड़ासा विवेचन हमने ग्यारहवें प्रश्न के उत्तर में भी किया है। विधवा-विवाह से सम्यक्त्व और चारित्र में कोई दूषण नहीं आता है इस बात को भी हम विस्तार से पहिले कहचुके हैं। विधवा-विवाह से चारित्र में उतनी ही त्रुटी होती है जितनी कि कुमारी विवाह से। अब इस विषय को दुहराना व्यर्थ है।

उपसंहार

३१ प्रश्नों का उत्तर हमने संक्षेप में दिया है फिर भी लेख बढ़ गया है। इस विषय में और भी तर्क हो सकता है जिसका उत्तर सरल है। विचारयोग्य कुछ बातें रहगईं हैं। उन सबके उल्लेख से लेख बढ़ जावेगा इसलिये उन्हें छोड़ दिया जाता है। इति

प्रेरित पत्र

श्रीमान सम्पादकजी महोदय !

मैं "जैन जगत्" पढ़ा करती हूँ और उसकी बहुतसी बातें मुझे अच्छी मालूम होती हैं। लेकिन श्रीयुत सव्यसाची जी के द्वारा लिखे गये लेख को पढ़कर मैं बड़ी चिन्ता में पड़ गई। उस लेखमें विधवाविवाह का धर्म के अनुसार पोषण किया गया है। वह लेख जितना जबर्दस्त है उतना ही भयानक है। मैं पंडिता तो हूँ नहीं, इस लिए इस लेख का खण्डन करना मेरी ताकत के बाहर है; परन्तु मैं सीधी साधी दो चार बातें कह देना उचित समझती हूँ।

पहिली बात तो यह है कि सव्यसाचीजी विधवाओंके पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हैं? वे बेचारी जिस तरह जीवन व्यतीत करती हैं उसी तरह करने दीजिए। जिस गुलामी के बन्धन से वे छूट चुकी हैं, क्या उसी बंधनमें डालकर सव्यसाचीजी उनका उद्धार करना चाहते हैं? गुलामीका नाम भी क्या उद्धार है?

जो लोग विधवाविवाह के लिये एड़ीसे चोटी तक पसीना बहाते हैं उनके पास क्या विधवाओं ने दरख्वास्त भेजी है? यदि नहीं तो इस तरह अनावश्यक दया क्यों दिखलाई जाती है? फिर वह भी ऐसी हालतमें जबकि स्त्रियाँ ही स्वयं उस दया का विरोध कर रही हों।

भारतीय महिलाएँ इस गिरी हुई अवस्थामें भी अगर सिर ऊँचा कर सकती हैं तो इसीलिये कि उनमें सीता, सावित्री सरीखी देवियाँ हुई हैं। विधवाविवाह के प्रचार से क्या सीता सावित्रीके लिये अङ्गुल भर जगह भी बचेगी? क्या

वह आदर्श नष्ट न हो जावेगा ? आदर्श बने रहने पर उन्नति के शिखर से गिर पड़ने पर भी उन्नति हो सकती है, परन्तु आदर्श के नष्ट होजाने पर उन्नति की बात ही उड़ जायगी।

सम्पादकजी ! मैं धर्मके विषयमें तो कुछ समझती नहीं हूँ। न बालकी खाल निकालने वाली युक्तियाँ ही दे सकती हूँ। सम्भव है सव्यसाची सरीखे लेखकों की कृपा से विधवा विवाह धर्मानुकूल ही सिद्ध हो जाय, परन्तु मेरे हृदय की जो आवाज़ है वह मैं आपके पास भेजती हूँ और अन्त में यह कह देना भी उचित समझती हूँ कि शास्त्रों में जो आठ प्रकार के विवाह कहे हैं उनमें भी विधवाविवाह का नाम नहीं है। आशा है सव्यसाचीजी हमारी बातोंका समुचित उत्तर देंगे।

आपकी भगिनी—कल्याणी ।

कल्याणी के पत्र का उत्तर ।

(लेखक—श्रीयुत 'सव्यसाची')

बहिन कल्याणी देवीने एक पत्र लिखकर मेरा बड़ा उपकार किया है। बैरिस्टर साहिब के प्रश्नों का उत्तर देते समय मुझे कई बातें छोड़नी पड़ी हैं। बहिन ने उनमें से कई बातों का उल्लेख कर दिया है। आशा है इससे विधवाविवाह की सच्चाई पर और भी अधिक प्रकाश पड़ेगा।

पहिली बात के उत्तर में मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि विधवाविवाह से स्त्रियोंको गुलाम नहीं बनाया जाताहै। हमारे ख़याल से जो विधवाएँ ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकतीं उनके लिये पतिके साथ रहना गुलामी का जीवन नहीं है। क्या सधवा जीवन को स्त्रियाँ गुलामी का जीवन समझती हैं ? यदि हां, तो

उन्हें विधवा बनने के लिये आतुर होना चाहिये—पति के मरने पर खुशी मनाना चाहिये; क्योंकि वे गुलामी से छूटी हैं; परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता। हमारी समझ में स्त्रियाँ वैधव्य को अपने जीवनका सबसे बड़ा दुःख समझती हैं और पतिके साथ रहने को बड़ा सुख। समाज की दशा देखकर भी कहना पड़ता है कि जितनी गुलामी विधवा को करना पड़ती है उतनी सधवा को नहीं। सधवा एक पुरुष की गुलामी करती है, साथ ही में उससे कुछ गुलामी कराती भी है; परन्तु विधवा को समस्त कुटुम्ब की गुलामी करना पड़ती है। उसके ऊपर सभी आँख उठाते हैं,परन्तु वह किसीके साम्हने देख भी नहीं सकती। उस के आँसुओंका मूल्य करीब करीब 'नहीं' के बराबर हो जाता है। उसका पवित्र जीवन भी शंका की दृष्टि से देखा जाता है। अप-शकुन की मूर्ति तो वह मानी ही जाती है। क्या गुलामी की जंजीर टूटने का यही शुभ फल है? क्या स्वतन्त्रता के येही चिन्ह हैं। थोड़ी देर के लिये मान लीजिये, कि वैधव्य-जीवन बड़ा सुखमय जीवन है, परन्तु विधवाविवाह वाले यह कब कहते हैं कि जो विधवा-विवाह न करेगी वह नरक जायगी? उनका कहना तो इतना ही है कि जो वैधव्य को पवित्रता से न पाल सकें वे विवाह करलें; क्योंकि कुमारी-विवाह के समान विधवाविवाह भी धर्मानुकूल है। किन्तु जो वैधव्य को निभा सकती हैं वे ब्रह्मचारिणी बनें! आर्यिका बनें! कौन मना करता है? विधवा विवाह के प्रचारक कोई ज़बर्दस्ती नहीं करते। वे धर्मानुकूल सरल मार्ग बताते हैं। जिसकी खुशी हो चले, न हो न चले। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि ऐसी बहिनें गुप्त व्यभिचार और भ्रूण-हत्याओं से दूर रहें।

दूसरी बात के उत्तर में मेरा निवेदन है कि विधवाओं ने मेरे पास दरख़्वास्त नहीं भेजी है। आम तौर पर भारतवर्ष में विवाह के लिये दरख्वास्त भेजने का रिवाज़ भी नहीं है। मैं पूँछता हूँ कि हमारे देश में जितनी कन्याओं के विवाह होते हैं उनमें से कितनी कन्याएँ विवाह के लिये दरख्वास्त भेजती हैं यदि नहीं भेजतीं तो उनका विवाह क्यों किया जाता है ? क्या कन्याओं का विवाह करना अनावश्यक दया है ? यदि नहीं तो विधवाओं का विवाह करना भी अनावश्यक दया नहीं है।

दूसरी बात यह है कि दरख्वास्त सिर्फ़ काग़ज पर लिख कर ही नहीं दी जाती—वह कार्यों के द्वारा भी दी जाती है। विधवा समाज ने भ्रूण-हत्या, गुप्त व्यभिचार आदि कार्यों से समाज के पास ज़बर्दस्त से ज़बर्दस्त दरख्वास्तें भेजी हैं। इस लिये उनका विवाह क्यों न करना चाहिये ? कन्याएँ न तो काग़ज़ों पर दरख़्वास्त भेजती हैं, न भ्रूण हत्या आदि कुकार्यों से; फिर भी उनका विवाह एक कर्तव्य समझा जाता है। तब विधवाओं का विवाह कर्तव्य क्यों न समझा जाय ?

कुछ दिनों से कुछ महापुरुषों (?) ने स्त्रियों के द्वारा भी विधवाविवाहके विरोध का स्वाँग कराना शुरूकर दिया है, परंतु कुमारी विवाह के निषेध के लिये हम कुमारियों को खड़ा कर सकते हैं। फिर क्या कल्याणीदेवी, कुमारियों के विवाह को भी अनुचित दया का परिणाम समझेंगी ? बात यह है कि शताब्दियों की गुलामी ने स्त्रियों के शरीर के साथ आत्मा और हृदय को भी गुलाम बना दिया है। उनमें अब इतनी हिम्मत नहीं कि वे हृदय की बात कह सकें। अमेरिका में जब गुलामी की प्रथा के विरुद्ध अब्राहमलिंकन ने युद्ध छेड़ा तो स्वयं गुलामों

ने अपने मालिकों का पक्ष लिया, और जब वे स्वतन्त्र हो गये तो मालिकों की ही शरण में पहुँचे। गुलामी का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। ज़रा स्वतन्त्र नारियों से ऐसी बात कहिये—योरोप की महिलाओं से विधवाविवाह के विरोध करने का अनुरोध कीजिये तब मालूम हो जायगा कि स्त्री-हृदय क्या चाहता है? हमारे देश की लज्जालु स्त्री छिपे छिपे पाप कर सकती है; परन्तु स्पष्ट शब्दों में अपने न्यायोचित अधिकार भी नहीं माँग सकतीं। एक विधवा से—जिसके चिन्ह वैधव्य पालन के अनुकूल नहीं थे—एक महाशय ने विधवाविवाह का ज़िकर किया तो उनको पचासों गालियाँ मिलीं, घर वालों ने गालियाँ दीं और बेचारों की बड़ी फ़ज़ीहत की। परन्तु कुछ दिनों बाद वह एक आदमी के घर में जाकर बैठ गई! इसी तरह हज़ारों विधवाएँ मुसलमानों के साथ भाग सकती हैं, भ्रूणहत्या कर सकती हैं, गुप्त व्यभिचार कर सकती है, परन्तु मुँह से अपना जन्म सिद्ध अधिकार नहीं माँग सकतीं। प्रायः प्रत्येक पुरुष को इस बात का पता होगा कि ऐसे कार्यों में स्त्रियां मुँह से 'ना', 'ना' करती हैं और कार्य से 'हाँ', 'हाँ' करती हैं, इस लिये स्त्रियों के इस विरोध का कुछ मूल्य नहीं है।

बहिन कल्याणी ने अपने पत्रमें सीता सावित्री आदि की दुहाई दी है। क्या बहिन ने इस बात पर विचार किया है कि आज सैकड़ों वर्षों से उत्तर प्रान्तके जैनियों में विधवाविवाह का रिवाज बन्द है लेकिन तब भी कोई सीता जैसी पैदा नहीं हुई है? बात यह है कि पशुओंके समान गुलाम स्त्रियोंमें सीता जैसी स्त्री पैदा हो हा नहीं सकतीं, क्योंकि डंडे के बलपर जो धर्म का ढोंग कराया जाता है वह धर्म ही नहीं कहलाता है। बहिनका कहना

है कि "विधवाविवाह के प्रचार से क्या सीता सावित्री के लिये अंगुल भर भी जगह बचेगी?" हमारा कहना है कि जहाँ धर्म के लिये अंगुल भर भी जगह नहीं है, वहाँ हाथ भर जगह निकाल लेने वाली ही सीता कहलाती है। ज़बर्दस्ती या मौका न मिलने से ब्रह्मचर्य का ढोंग करने वाली यदि सीता कहलावें तो बेचारी सीताओं का कौड़ी भर भी मूल्य न रहे। सीता जी का महत्व इसी लिये है कि वे जंगल में रहना पसंद करती थीं और तीन खंड के अधिपति रावण की विभूतियों को ठुकराती थीं। जब सीता जी लंका में पहुँचीं और उन्हें मालूम हुआ कि हरण करने वाला तो विद्याधरोंका अधिपति है तभी उन्हें करीब २ विश्वास हो गया कि अब छुटकारा मुश्किल है। रावण जब युद्ध में जाने लगा और सीता जी से प्रसन्न होने को कहा तो उस समय सीता जी को विश्वास हो गया था कि राम लक्ष्मण, रावण से जीत न सकेंगे। इसीलिये उनने कहा कि मेरा संदेश बिना सुनाये तुम राम लक्ष्मण को मत मारना। मतलब यह कि रावण की शक्ति का पूरा विश्वाश होने पर भी उनने रावण को वरण न किया; इसीलिये सीता का महत्व है। आजकल जो विधवाएँ समाज के द्वारा जबर्दस्ती बन्धन में डाली गई हैं, उन्हें सीता समझना सीता के चरित्र का अपमान करना है।

विधवाविवाह के आन्दोलन से सिर्फ विधवाओं को अपने विवाह का अधिकार मिलता है—उन्हें विवाह के लिये कोई विवश नहीं करता। अगर वे चाहें तो खुशी से वैधव्य का पालन करें। परन्तु बहिन कल्याणी का कहना है कि विधवा-विवाह से सीताके लिये अंगुल भर भी जगह न बचेगी। इसका मतलब यह है कि आजकल की विधवाएँ पुनर्विवाह के अधि-

कार सरीखा हलके से हलका प्रलोभन भी नहीं जीत सकतीं ! क्या हमारी बहिन ऐसी ही स्त्रियों से रावण के प्रलोभन जीतने की आशा रखती हैं ? बहिन, सच्ची विधवाएँ तो उस समय पैदा होंगी जिस समय समाज में विधवाविवाह का खूब प्रचार होगा। विधवा और ब्रह्मचारिणी में बड़ा अन्तर है ! पति मरने से विधवा होती है न कि ब्रह्मचारिणी। उसके लिये त्याग की ज़रूरत है और त्याग तभी हो सकता है, जब प्राप्ति हो या प्राप्ति की आशा हो।

अन्त में बहिन ने कहा है कि आठ प्रकार के विवाहों में विधवाविवाह का उल्लेख नहीं है। परन्तु इन आठ तरह के विवाहों में कुमारी-विवाह, अन्यगोत्र विवाह, सजातीय विवाह आदि का उल्लेख भी कहाँ है ? क्या ये सब विवाह भी नाजायज़ हैं ? बात यह है कि ये आठ भेद विवाह की रीतियों के भेद हैं अर्थात् विवाह आठ तरह से हो सकता है। अर्थात् सजातीय विवाह, विजातीय विवाह, कुमारीविवाह, विधवा विवाह, अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह, आदि सभी तरह के विवाह आठ रीतियों से हो सकते हैं। इसीलिये कुमारीविवाह विधवा विवाह आदि भेदों को रीतियों में शामिल नहीं किया है। जैसे कुमारीविवाह के आठ भेद हैं उसी तरह विधवाविवाह के भी आठ भेद हैं।

आशा है बहिन को हमारे उत्तरों से सन्तोष होगा। अगर फिर भी कुछ शंका रहे तो मैं उत्तर देने को तैयार हूँ।

ज़रूरी निवेदन ।

१—आजकल हिन्दी "जैनगज़ट" में जो श्रीयुत "सव्यसाची" के लेख (जो कि "जैन जगत" में निकल चुका है) के उत्तर में एक लेख क्रमशः निकल रहा है, उसका मुंह तोड़ जवाब श्रीयुत "सव्यसाची" जी भी तय्यार करते जा रहे हैं। वह शीघ्र ही हिन्दी "जैन गज़ट" में पूर्ण छप चुकने पर "विधवा विवाह और जैन धर्म" के दूसरे भाग के रूप में प्रकाशित होगा।

२—"उजले पोश बदमाश" की भूमिका में जो "सेठ जी की काली करतूत" के लिये सूचित किया गया था, वह पुस्तक भी लिखी जा रही है, शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

निवेदक—मंत्री ।

अन्य उपयोगी पुस्तकें

१. शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण—लेखक
श्री पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार मूल्य ॥)
२. विवाह क्षेत्र प्रकाश— ,, ,, ।=)
३. जैन जाति सुदशा प्रवर्तक—लेखक
श्री बाबू सूरज भानु वकील ,, -)
४. मंगलादेवी— ,, ,, -)
५. क्वारों की दुर्दशा— ,, ,, -)
६. गृहस्थ धर्म— ,, ,, ॥)
७. राजदुलारी— ,, ,, १)
८. विधवाविवाह और उनके संरक्षकों
से अपील—लेखक ब्र० शीतलप्रसादजी ,, ॥)
९. उजलेपोश बदमाश—लेखक पंडित
अयोध्याप्रसाद गोयलीय ,, -)
१०. जैनधर्म और विधवाविवाह—लेखक
श्री० सव्यसाची ,, -)॥
११. विधवाविवाह समाधान— ,, ,, ॥)

मिलने का पता :—जौहरीमल सर्राफ,
बड़ा दरीबा, देहली।

जैनधर्म और विधवाविवाह

(दूसरा भाग)

लेखक :—

श्रीयुत "सव्यसाची"

ट्रैक्ट नं० १३

जैनधर्म और विधवा-विवाह

(दूसरा भाग)

लेखक—

श्रीयुत् "सव्यसाची"

प्रकाशक—

मंत्री जैन बालविधवा-सहायक सभा

दरीबा कलाँ, देहली

मुद्रक—

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस,

बिजनौर (यू०पी०)

प्रथमवार १०००

सन् १९३१ ई०

मूल्य ।=)

प्रकाशक—

ला० जौहरीमल जैन सर्राफ़

मन्त्री जैन बाल विधवासहायक सभा,

दरीबा कलाँ, देहली
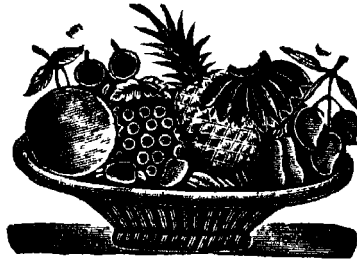
मुद्रक—

शान्तिचन्द्र जैन,

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस,

बिजनौर (यू० पी०)

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१६	ङीप्	ङीप्
२०	१६	टीप्	टाप्
२१	२६	पदत्रार्थं	यदत्रार्थं
२६	१३	वह पुरुष मदोन्मत्त	वे पुरुषत्व-मदोन्मत्त
२८	८	में	के लिये
३४	१७	वृषाल	वृषल
३८	४	निमय	नियम
४१	१६	स्त्रिहाँ	स्त्रिहां
४१	२०	यात्यानश्च	यात्यनिश्च
४१	२२	स पष	स पव
४६	२१	खुद ही	खुद
४८	१७	चाहियें	चाहिये
४६	११	छेद्दक	छेदक
७१	१८	ओक्तो	ओकत्रो
१३३	४	युक्ति से जीतने पर	युक्ति से न जीतने पर
१७६	१५	सन्धेर	अन्धेर
१८०	२५	क	को
१८२	८	नावत्री	नवाबी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८२	२३	मूलाकार	मूलाचार
१८२	२७	मूलापार	मूलाचार
१८३	६	मूलापार	मूलाचार
१८५	७	कुभि	कुंभि
१८८	५	आदि	अनादि
१९३	१	व्यभिचार नहीं है	व्यभिचार भी नहीं है
२०४	१३	अपतिरन्या	अपतिरन्यां
२०६	१	प्रप्रोग	प्रयोग
२११	१	व्याख्यास्यायः	व्याख्यास्यामः
२१३	२०	सुखावस्थैविमुक्ता	सुखावस्थैर्विमुक्ता
२१४	१२	चिसका	जिसका
२२७	१२	सद्धा	रुद्धा
२२९	८	निरांग	नीरांग
२२९	९	निरांग	नीराग

* आवश्यक निवेदन *

जैन समाज और हिन्दू समाज की घटी का मुख्य कारण विधवाविवाह से घृणा करना व उसको व्यभिचार या पाप समझना है। लाखों ही संतान बिन विवाहे कुमारे रह जाते हैं, क्योंकि उनको कन्याएँ नहीं मिलतीं; इसलिये वे जब मरते हैं तब अपने घरों में सदा के लिये ताले लगा जाते हैं। उधर विधुर पुरुष अपने एक जीवन में कई २ बार शादियां करते हैं, वृद्ध होने पर भी नहीं चूकते हैं; जिसका फल यह होता है कि बहुत सी युवान विधवाएँ बिना संतान रह जाती हैं। कोई जो धनवान होती हैं वे गोद ले लेती हैं शेष अनेक निःसंतान मरकर अपने घरमें ताला दे जाती हैं। इस तरह कुवांरे पुरुषोंके कारण व बहुसंख्यक विधवाओं के कारण जैन समाज तथा हिन्दू समाज बड़े वेग से घट रहा है। जहां २५ वर्ष पहले १०० घर थे वहां अब ४०-५० ही घर पाए जाते हैं। जैपुर में २५ व ३० वर्ष पहले जैनियों के ३००० घर थे, अब मात्र १८०० ही रह गए हैं। उधर युवान विधवाओं को अनेकों गुप्त पापों में फँसकर घोर व्यभिचार व हिंसा के पाप में सनना पड़ता है। वे ब्रह्मचर्य के भार को न सह सकने के कारण पतित हो जाती हैं।

यह सब वृथा ही कष्ट व हानि उठाई जा रही है, केवल

इस ही विचार से कि विधवाविवाह की इजाज़त जैन सिद्धांत व हिन्दू शास्त्र नहीं देता। हिन्दू शास्त्रों में तो अथर्ववेद व स्मृतियों में पुनर्विवाह का स्पष्ट कथन है। जैन सिद्धान्त द्वारा यह सिद्ध है या असिद्ध इस प्रश्न को माननीय बैरिष्टर चम्पतराय जी ने उठाया था। उसका समाधान 'सव्यसाची' महोदय ने बड़ी ही अकाट्य व प्रौढ़ युक्तियों के द्वारा देकर यह सिद्ध कर दिया था कि विधवाविवाह कन्या-विवाह के समान है व इससे गृहधर्म में कोई बाधा नहीं आती है। यह सब समाधान 'जैनधर्म और विधवाविवाह' नामक ट्रैक्ट में प्रकाशित हो चुका है। इस समाधान पर पण्डित श्रीलालजी पाटनी अलीगढ़ तथा पं० विद्यानन्द शर्मा ने आक्षेप उठाए थे—उनका भी समाधान उक्त सव्यसाचीजी ने 'जैन जगत' में प्रकाशित कर दिया है। वही सब समाधान इस पुस्तक में दिया जाता है, जिसे पढ़कर पाठकगण निःशंक हो जावेंगे कि विधवाविवाह न तो व्यभिचार है और न पाप है—मात्र कन्याविवाह व विधुर-विवाह के समान एक नीति पूर्ण लौकिक कार्य है—इतना ही नहीं—यह उस अबला को व्यभिचार व हिंसा के घोर पापों से बचाने वाला है। सर्व ही जैन व हिंदू भाइयों को उचित है कि इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ें। उनका चित्त बिलकुल मानलेगा कि विधवाविवाह निषिद्ध नहीं है किन्तु विधेय है।

पाठकों को उचित है कि भारत में जो गुप्त व्यभिचार व हिंसा विधवाओं के कारण हो रही है उसको दूर करावें—

उसका उपाय यही है कि हर एक कुटुम्ब अपने २ घर में जो कोई विधवा हो जाय उससे एकान्त में बात करें। यदि उस की बातचीत से व उसके रहन सहन के ढंग से प्रतीत हो कि यह ब्रह्मचर्य व्रत को पाल लेगी तब तो उसे वैराग्य के साधनों में रख देना चाहिये और जो कोई कहे कि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकती है तब जो उसके संरक्षक हों—चाहे पिता घर वाले चाहे श्वसुर घर वाले—उनका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि उसको कन्या के समान मानकर उसका विवाह योग्य पुरुष के साथ कर देवें। स्त्री लज्जा के कारण अपने मनका हाल स्पष्ट नहीं कहती है। उसके संरक्षकों का कर्तव्य है कि उसकी शक्ति के अनुसार उसके जीवन का निर्णय करदें।

समाज की रक्षा चाहने वाला—

मन्त्री

* धन्यवाद *

इस ट्रैक्ट के छपवाने के लिये निम्नलिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की है, जिनको सभा हार्दिक धन्यवाद देती है, साथ ही समाज के अन्य स्त्री पुरुषों से निवेदन करती है कि वे भी निम्न श्रीमानों का अनुकरण करके और अपनी दुखित बहिनों पर तरस खाकर इसी प्रकार सहायता प्रदान करने की उदारता दिखलावें :—

२५) ला० धनकुमार जी जैन कानपुर।
२५) गुप्तदान (एक जैन) कानपुर।
२०) गुप्तदान (एक वकील) लखनऊ।
१०) ला० रामजीदास सदर बाज़ार देहली।
१०) बा० उलफ़तराय इंजीनियर देहली।
१०) बा० महावीर प्रसाद देहली।
१०) ला० किशनलाल देहली।
१०) ला० गुलाबसिंह वज़ीरीमल देहली।
१०) ला० भोलानाथ मुख़तार बुलन्दशहर।
१०) बा० माईदयाल बी० ए० आनर्स अम्बाला।
१०) ला० केशरीमल श्रीराम देहली।
१०) ला० ललताप्रसाद जैन अमरोहा।
१०) बा० पंचमलाल जैन तहसीलदार जबलपुर।
१०) ला० विशम्भर दास गार्गीय झांसी।
१०) गुप्तदान (एक बाबू साहब) देहली।
१०) गुप्तदान (एक बाबू साहब) कैराना।
१०) गुप्तदान (एक ठेकेदार साहब) देहली।
१०) गुप्तदान (एक रईस साहब) बिजनौर।
५) गुप्तदान (एक सर्राफ़) देहली।
५) गुप्तदान (एक जैन) गोहाना।

ॐ

विधवाविवाह और जैनधर्म !

आक्षेपों का मुंह तोड़ उत्तर

सबसे पहिली और मुद्दे की बात मैं पाठकों से यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे खयाल से जैनधर्म पारलौकिक उन्नति के लिये जितना सर्वोत्तम है उतना ही लौकिक उन्नति के लिये सुविधाजनक है। समाज की उन्नति के लिये और समाज की रक्षा के लिये ऐसा कोई भी रीतिरिवाज नहीं है जोकि जैनधर्म के प्रतिकूल हो। जैनधर्म किसी घूसखोर व अन्यायी मजिस्ट्रेट की तरह पक्षपात नहीं करता जिससे पुरुषों के साथ वह रियायत करे और स्त्रियों को पीस डाले। स्त्रियों के लिये और शूद्रों के लिये उसने वही सुविधा दी है जो कि पुरुषों के लिये और द्विजों के लिये‡। जैनधर्म की अनेक खूबियों में ये

---

‡ इस पैराग्राफ़ के प्रत्येक वाक्य को मैं अच्छी तरह विचार कर लिख रहा हूँ। इसमें मैंने उत्तेजना या अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया है। इसके किसी वाक्य या शब्द के लिये अगर कोई नया आन्दोलन उठाना पड़े तो मैं उसके लिये भी तैयार हूँ। अगर कोई महाशय आक्षेप करने का कष्ट करें तो बड़ी कृपा होगी, क्योंकि इस बहाने से एक आन्दोलन को खड़ा करने का मौका मिल जायगा। —लेखक

दोनों ख़ूबियाँ बहुत बड़ी ख़ूबियाँ हैं। सामाजिक-रक्षा और उन्नतिके साथ आत्मिक-रक्षा और उन्नतिके लिये सुविधा देना और किसीके अधिकारको न छीनना, ये दोनों बातें अगर जैन-धर्म में न होंगी तो किस धर्म में होंगी? अगर किसी धर्म में ये दोनों बातें नहीं हैं तो यह इन दोनों बातों का दुर्भाग्य नहीं है, किन्तु उस धर्मका ही दुर्भाग्य है। यह स्मरण रखना चाहिये कि **धर्मग्रन्थों में न लिखी होने से अच्छी बातों की क़ीमत नहीं घटती, किन्तु अच्छी बातें न लिखी होने से धर्मग्रन्थों की क़ीमत घटती है।**

प्रत्येक स्त्री पुरुष को किशोर अवस्था से लेकर युवा अवस्था के अन्त तक विवाह करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरुष इस अधिकार का उपयोग मात्रा से अधिक करता रहे और स्त्रियोंको ज़रूरत होने पर भी न करने दे; इतना ही नहीं किन्तु वह अपनी यह नादिरशाही धर्म के नाम पर—उसमें भी जैनधर्म के नाम पर—चलावे, इस अन्धेर का कुछ ठिकाना है! मुझे तो उनकी निर्लज्जता पर आश्चर्य होता है कि जो पुरुष अपने दो दो चार चार विवाह कर लेने पर भी विधवाओं के पुनर्विवाहको धर्मविरुद्ध कहने की धृष्टता करते हैं। जिस काम-देव के आगे वे नङ्गे नाचते हैं, वृद्धावस्थामें भी विवाह करते हैं, एक कसाई की तरह कन्याएँ ख़रीदते हैं, उसी 'काम' के आक्र-मणसे जब एक युवती विधवा दुखी होती है और अपना विवाह करना चाहती है तो ये क्रूरता और निर्लज्जता के अवतार धर्म-विरुद्धता का डर दिखलाते हैं! यह कैसी बेशरमी है!

विधवाविवाह के विरोधी कहते हैं कि पुरुषों को पुन-र्विवाह का अधिकार है और स्त्रियों को नहीं। ऐसे अत्याचार-

पूर्ण अहङ्कार के ये लोग शिकार हो रहे हैं, जब कि विधवा-विवाह के समर्थक इस विषय में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देना चाहते हैं। विधवाविवाह के समर्थक, पुरुष होने पर भी अपने विशेषाधिकार, बिना स्त्रियों की प्रेरणा के, छोड़ना चाहते हैं। स्त्रियों के दुःख से उनका हृदय द्रवित है; इसीलिये स्वार्थी पुरुषों के विरोध करने पर भी वे इस काम में लगे हैं। अपमान तिरस्कार आदि की बिलकुल पर्वाह नहीं करते। विधवाविवाह-समर्थकों की इस निस्वार्थता, उदारता, त्याग, दया, सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता और धार्मिकता को विधवाविवाह के विरोधी कोटिजन्म तप तपने पर भी नहीं पा सकते। ये स्वार्थ के पुतले जब विधवाविवाह समर्थकों को स्वार्थी कह कर "उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे" की कहावत चरितार्थ करते हैं तब इनकी धृष्टता की पराकाष्ठा हो जाती है। शैतान जब उलट कर ईश्वर से ही शैतान कहने लगता है तब उस की शैतानियत की सीमा आजाती है। विधवाविवाह के विरोधी शैतानियत की ऐसी ही सीमा पर पहुँचे हैं।

समाज के भीतर छिपी हुई इस शैतानियत को दूर करने के लिये मैंने विधवाविवाह के समर्थन में बैरिष्टर चंपत-रायजी के प्रश्नों के उत्तर दिये थे। उसके खंडन का प्रयास जैनगज़ट द्वारा दो महाशयों ने किया है—एक तो पं० श्रीलाल जी अलीगढ़, दूसरे पं०विद्यानन्दजी रामपुर। उन दोनों लेखों को अनावश्यक रूपसे बढ़ाया गया है। लेख में व्यक्तित्व के ऊपर बड़ी असभ्यता के साथ आक्रमण किया गया है। असभ्यता से पेश आने में कोई बहादुरी नहीं है। इसलिए असभ्य शब्दों का उत्तर मैं इस लेख में न दूँगा।

उन दोनों लेखकों से जहां कुछ भी खंडन नहीं बन पड़ा है वहाँ उन्होंने "छिछि.", "धिक् धिक्", "यह तो घृणित है",

आदि शब्दों की भरमार की है। ऐसे शब्दों का भी उत्तर न दिया जायगा। विद्यानन्दजी ने मेरे लेख के उद्धरण अधूरे अधूरे लिये हैं और कहीं कहीं अत्यावश्यक उद्धरण छोड़ दिया है। इस विषय में तो मैं पं० श्रीलाल जी को धन्यवाद दूँगा जिन्होंने मेरे पूरे उद्धरण लेने में उदारता दिखलाई। उद्धरण अधूरा होने पर भी ऐसा अवश्य होना चाहिये जिससे पाठक उलटा न समझलें।

दोनों लेख लम्बे लम्बे हैं। उनमें बहुत सी ऐसी बातें भी हैं जिनका विधवाविवाह के प्रश्न से सम्बन्ध नहीं है, परन्तु दोनों महाशयों के सन्तोषार्थ मैं उन बातों पर भी विचार करूँगा। इससे पाठकों को भी इतना लाभ ज़रूर होगा कि वे जैनधर्म की अन्यान्य बातों से भी परिचित हो जावेंगे। मेरा विश्वास है कि वह परिचय अनावश्यक न होगा।

चम्पतरायजी के ३१ प्रश्नों के उत्तर में जो कुछ मैंने लिखा था उसके खण्डन में दोनों महाशयोंने जो कुछ लिखा है, उसका सार मैंने निकाल लिया है। नीचे उनके एक एक आक्षेप का अलग अलग समाधान किया जाता है। पहिले श्रीलालजी के आक्षेपों का, फिर विद्यानन्दजी के आक्षेपों का समाधान किया गया है! मैं विरोधियों से निवेदन करता हूँ या चैलेञ्ज देता हूँ कि उनसे जितना भी आक्षेप करते बने, खुशीसे करें। मैं उत्तर देने को तैयार हूँ।

पहला प्रश्न

आक्षेप (अ)—सम्यक्त्व की घातक सात प्रकृतियों में चार अनन्तानुबन्धी कषायें भी शामिल हैं। विधवाविवाह के लिये जितनी तीव्र कषाय की ज़रूरत है वह अनन्तानुबन्धी के उदय के बिना नहीं हो सकती। जैसे परस्त्रीसेवन अनन्तानुबंधी

के उदय के बिना नहीं हो सकता। इसलिये जब विधवाविवाह में अनन्तानुबन्धी का उदय आ गया तो सम्यक्त्व नष्ट होगया।

समाधान (अ)—जब स्त्री के मर जाने पर, पुरुष दूसरा विवाह करता है तो तीव्र रागी नहीं कहलाता, तब पुरुष के मर जाने पर स्त्री अगर दूसरा विवाह करे तो उसके तीव्र राग कामान्धता क्यों मानी जायगी? यदि कोई पुरुष एक स्त्री के रहते हुए भी ९६ हज़ार विवाह करे या स्त्रियाँ रक्खे तो उस का यह काम बिना तीव्र रागके नहीं होसकता। लेकिन ९६ हज़ार पत्नियों के तीव्रराग से भो सम्यक्त्वका नाश नहीं होता, बल्कि वह ब्रह्मचर्याणुव्रती भी रह सकता है। जब इतना तीव्र राग भी सम्यक्त्व का नाश नहीं कर सकता तब पति मर जाने पर एक पुरुष से शादी करने वाली विधवा का सम्यक्त्व या अणुव्रत कैसे नष्ट होगा? और अणुव्रत धारण करने वाली विधवा ऐसी पतित क्यों मानी जायगी कि जिससे उसे ग्रहण करने वाले का भी सम्यक्त्व नष्ट हो जावे? विधवाविवाह से व्यभिचार उतना ही दूर है, जितना कि कुमारी विवाह से। जैसे विवाह होने के पहिले कुमार और कुमारियों का संभोग भी व्यभिचार है, किन्तु विवाह होने के बाद उन दोनों का संभोग व्यभिचार नहीं कहलाता, उसी तरह विवाह होने के पहिले अगर विधवा सम्भोग करे तो व्यभिचार है, परन्तु विवाह के बाद होने वाला सम्भोग व्यभिचार नहीं है। गृहस्थों के लिये व्यभिचार की परिभाषा यही है कि—"जिसके साथ विवाह न हुआ हो उसके साथ सम्भोग करना"। यदि विवाह हो जाने पर भी व्यभिचार माना जायगा तो विवाह की प्रथा बिलकुल निकम्मी हो जायगी और आजन्म ब्रह्मचारियों को छोड़ कर सभी व्यभिचारी साबित होंगे।

तीव्रता मन्दता की दृष्टि से सकषाय प्रवृत्ति छः भागों में बाँटी गई है, जिन्हें कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल शब्दों से कहते हैं। इनमें सबसे ज़्यादा तीव्र कृष्ण लेश्या है। लेकिन कृष्ण लेश्या के हो जाने पर भी सम्यक्त्व का नाश नहीं होता। इसीलिये गोम्मटसार में लिखा है—

"अयदोत्ति छ लेस्साओ"

अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि जीव तक छहों लेश्याएँ होती हैं। अगर विधवाविवाह में कृष्ण लेश्यारूप परिणाम भी होते तो भी सम्यक्त्व का नाश नहीं हो सकता था। फिर तो विधवाविवाह में शुभ लेश्या रहती है, तब सम्यक्त्व का नाश कैसे होगा?

आक्षेपक ने परस्त्रीसेवन अनन्तानुबन्धी के उदय से बतलाया है। यह बात भी अनुचित है। मैं परस्त्रीसेवन का समर्थन नहीं करता, किन्तु आक्षेपक की शास्त्रीय नासमझी को दूर कर देना उचित है। परस्त्री सेवन अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे होता है। क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशव्रत-अणुव्रत की घातक है और अणुव्रत के घात होने पर ही परस्त्री सेवन होता है। आक्षेपक को यह जानना चाहिये कि अणुव्रती, पांच पापों का त्यागी होता है न कि अविरत सम्यग्दृष्टि। खैर! मुझे व्यभिचार की पुष्टि नहीं करना है। व्यभिचार और विधवाविवाह में बड़ा अन्तर है। व्यभिचार अप्रत्याख्यानावरण और विधवा विवाह * प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होता है। ऐसी हालत में विधवा

* मेरे पहिले लेखमें इस जगह अप्रत्याख्यानावरण छप गया है। पाठक सुधारकर प्रत्याख्यानावरण करलें। —लेखक

विवाहको अनन्तानुबन्धीके उदयसे मानना और उससे सम्यक्त्व नाश की बात कहना बिलकुल मिथ्या है।

आक्षेप (आ)—परस्त्री सेवन सप्त व्यसनों में है। सम्यक्त्वी सप्त व्यसन सेवी नहीं होता। विधवाविवाह परस्त्री-सेवन है। इसलिये त्रिकालमें सम्यक्त्वीके नहीं हो सकता।

समाधान—परस्त्री-सेवन व्यसनों में शामिल ज़रूर है, परन्तु परस्त्री सेवी होने से ही कोई परस्त्री व्यसनी नहीं हो जाता। परस्त्री-सेवन व्यसन का त्याग पहिली प्रतिमामें माना जाता है, परन्तु परस्त्री सेवन पहिली प्रतिमामें भी हो सकता है, क्योंकि परस्त्रीसेवन का त्याग दूसरी प्रतिमा में माना गया है। यहां आक्षेपक को व्यसन और पाप का अन्तर समझना चाहिये। अविरत सम्यग्दृष्टि को पहिली प्रतिमा का धारण करना अनिवार्य नहीं है। इस लिये सप्तव्यसन का त्याग भी अनिवार्य न कहलाया। हाँ, अभ्यास के रूप में वह बहुत सी बातों का त्याग कर सकता है, परन्तु इस से वह त्यागी या व्रती नहीं कहला सकता। और, सम्यक्त्वी परस्त्री-सेवी रहे या परस्त्री-त्यागी; परन्तु सम्यक्त्व का विधवा विवाहसे कोई विरोध नहीं होसकता, क्योंकि विधवा-विवाह परस्त्री सेवन नहीं है। यह बात मैं "अ" नम्बर के समाधान में सिद्ध कर चुका हूँ।

आक्षेप (इ)—यह नियम करना कि सातवें नरक में *सम्यक्त्व नष्ट नहीं होता, लेखक की अज्ञता है। क्या वहाँ* क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है? *नरकों में नारकी अपने किये* हुए पापों का फल भोगते हैं। यदि वहां भी वे विधवाविवाह से अधिक पाप करने वाले ठहर जायँ तो उस किए हुए पाप का फल कहाँ भोगें?

समाधान—सातवें नरक में सम्यक्त्व नष्ट न होने की बात में नियम करने की बात आक्षेपकने अपने मनसे घुसेड़ दी है। सातवें नरक के नारकी के न तो सम्यक्त्व होने का नियम है न सदा स्थिर रहनेका। बात इतनी ही है कि सातवें नरक का नारकी औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पैदाकर सकता है और वह सम्यक्त्व (क्षायोपशमिक) कुछ कम तेतीस सागर तक रह सकता है। तात्पर्य यह कि वहाँ की परमकृष्ण लेश्या और रौद्रपरिणामों से इतने समय तक उसके सम्यक्त्व का नाश नहीं होता। उसके सम्यक्त्वका कभी नाश ही नहीं होता—यह मैंने नहीं कहा। सातवें नरक के नारकी एक दूसरे को घानी में पेल देते हैं, भाड़ में भूँज देते हैं, आरे से चीर डालते हैं, गरम कड़ाही में पका डालते हैं! क्या ऐसे क्रूर कामों से भी विधवाविवाह का काम बुरा है? क्या उनके इन कामों से पाप बन्ध नहीं होता? सातवें नरक के नारकी यदि पापी न होते तो वे तिर्यञ्चगतिमें ही क्यों जाते? और उनका वह पाप इतना ज़बर्दस्त क्यों होता कि उन्हें एक बार फिर किसी न किसी नरक में आने के लिये बाध्य करता? तत्वार्थसारके इस श्लोक पर विचार कीजिये—

न लभन्ते मनुष्यत्वं सप्तम्या निर्गताः क्षितेः।
तिर्यक्त्वे च समुत्पद्य नरकं यान्ति ते पुनः ॥१४७॥

अर्थात्—सातवें नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य नहीं हो सकता। तिर्यञ्च गति में पैदा होकर उसे फिर नरक में ही जाना पड़ता है।

क्या विधवाविवाह करने वालों के लिये भी शास्त्र में ऐसा कहीं विधान है? आक्षेपक की यह बात पढ़ कर हँसी आती है कि सातवें नरक के नारकी यदि ज़्यादा पाप करेंगे तो फल कहाँ भोगेंगे? तत्वार्थसार के उपर्युक्त श्लोक में बत-

लाया हुआ विधान क्या फल भोगने के लिए कम है ? हां तो सातवें नरक के नारकी जीवन भर मार काट करते हैं और उनका पाप यहाँ तक बढ़ जाता है कि नियम से उन्हें तिर्यञ्च गति में ही जाना पड़ता है और फिर नियम से उन्हें नरक में ही लौटना पड़ता है। ऐसे पापियों में भी सम्यक्त्व कुछ कम तेतीस सागर अर्थात् पर्याप्त होने के बाद से मरण के कुछ समय पहिले तक सदा रह सकता है। वह "सम्यक्त्व विधवा-विवाह करने वाले के नहीं रह सकता"! बलिहारी है इस समझदारी की !

आक्षेप (ई)—नारकियोंके सप्त व्यसन की सामग्री नहीं है जिससे कि उनके सम्यक्त्व न हो और होकर भी छूट जावे। अतः यह सातवें नरक का दृष्टांत विधवाविवाह के विषय में कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

समाधान—आक्षेपक के कहनेसे यह तात्पर्य निकलता है कि अगर नरकों में सप्त व्यसन की सामग्री होती तो सम्यक्त्व न होता और छूट जाता (नष्ट होजाता)। वहां सप्त व्यसन की सामग्री नहीं है: इसलिए सम्यक्त्व होता है और होकर के नहीं छूटता है (नष्ट नहीं होता है)। नरक में सम्यक्त्व के नष्ट न होने की बात जब हमने कही थी, तब आप बिगड़े थे। यहाँ वही बात आपने स्वीकार करली है। कैसी अद्भुत सतर्कता है ! सातवें नरक के दृष्टांत से यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जब परम कृष्ण लेश्या वाला क्रूर कर्मा, घोर पापी नारकी सम्यक्त्वी रह सकता है तो विधवा-विवाह वाला- जो कि अणुव्रती भी हो सकता है—सम्यक्त्वी क्यों नहीं रह सकता ?

आक्षेप (उ)—पाँचों पापों में एक है संकल्पी हिंसा,

सा संकल्पी हिंसा करने वाला आखेट वालों की तरह सप्त-व्यसनी है। उसके कभी सम्यक्त्व नहीं होसकता। भला जहाँ प्रशम-संवेग हो गये हों वहाँ संकल्पी हिंसा होना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है।

समाधान—यहाँ पर आक्षेपक व्यसन और पापके भेद को भूल गया है। प्रत्येक व्यसन पाप है, परन्तु प्रत्येक पाप व्यसन नहीं है। इसलिये पापके सद्भाव से व्यसनके सद्भाव की कल्पना करना आचार शास्त्र से अनभिज्ञता प्रगट करना है। आक्षेपक अगर अपनी पार्टी के विद्वानों से भी इस व्याप्य व्यापक सम्बन्धको समझने की चेष्टा करेगा तो समझ सकेगा। आक्षेपक के मतानुसार सप्तव्यसन का त्याग दर्शन प्रतिमा के पहिले है, जब कि संकल्पी हिंसा का त्याग दूसरी प्रतिमा में है। इससे सिद्ध हुआ कि दर्शन प्रतिमा के पहले और सातिचार होने से दर्शन प्रतिमामें भी सप्तव्यसन के न होने पर भी संकल्पी हिंसा है। क्या आक्षेपक इतनी मोटी बात भी नहीं समझता? 'प्रशम संवेग होजाने से संकल्पी हिंसा नहीं होती' यह भी आक्षेपक की समझ की भूल है। प्रशम संवेगादि तो चतुर्थ गुणस्थान में हो जाते हैं, जबकि संकल्पी त्रस हिंसा का त्याग पाँचवें गुणस्थानमें होता है। इससे सिद्ध हुआ कि चतुर्थ गुणस्थान में—जहाँ कि जीव सम्यक्त्वी होता है—प्रशम संवेगादि होने पर भी सङ्कल्पी त्रस हिंसा होती है। ख़ैर, आक्षेपक यहाँ पर बहुत भूला है। उसे गोम्मटसार आदि ग्रन्थों से अविरतसम्यग्दृष्टि और देशविरत के अन्तर को समझ लेना चाहिये।

आक्षेप (ऊ)—जब पुरुष के स्त्री वेद का उदय होता है, तब विवाहादि की सूझती है। भला अप्रत्याख्यानावरण कषाय वेदनीय से क्या सम्बन्ध है?

समाधान—स्त्रीवेद के उदय से विवाहादि की सूझती है—आक्षेपक की यह बात पाठक ध्यान में रक्खें क्योंकि आगे इसी वाक्य के विरोध में स्वयं आक्षेपक ने बकवाद किया है। और, स्त्रीवेद के उदय से विवाह की नहीं, सम्भोग की इच्छा होती है। सम्भोग की इच्छा होने पर अगर अप्रत्याख्यानावरण का उदयाभावी क्षय होता है तो वह अणुव्रत धारण कर किसी कुमारी से या विधवा से विवाह कर लेता है। अगर अप्रत्याख्यानावरण का उदयाभावी क्षय न होकर उदय ही होता है तो वह व्यभिचारी होने की भी पर्वाह नहीं करता। वेद का उदय तो विवाह और व्यभिचार दोनों के लिये समान कारण है, परन्तु अप्रत्याख्यानावरण का उदयक्षय, अथवा प्रत्याख्यानावरण का उदय, व्यभिचार से दूर रख कर उसे विवाह के बन्धन में रखता है। इसलिये विवाहके लिये अप्रत्याख्यानावरणके उदयाभावी क्षय का नाम विशेष रूप में लिया जाता है। बेचारा आक्षेपक इतना भी नहीं समझता कि किस कर्म प्रकृतिका कार्य क्या है? फिर भी सामना करना चाहता है! आश्चर्य!

आक्षेप (ऋ)—राजवार्तिकके विवाह लक्षण में जैसे कन्या का नाम नहीं है वैसे ही स्त्री पुरुषका नाम नहीं है। फिर स्त्री पुरुष का विवाह क्यों लिखा? स्त्री स्त्री का क्यों न लिखा?

समाधान—राजवार्तिक के विवाह लक्षणमें चारित्र मोह के उदय का उल्लेख है! चारित्र मोह में स्त्रीवेद पुरुषवेद भी है। स्त्रीवेद के उदय से स्त्री, स्त्री को नहीं चाहती—पुरुष को चाहती है। और पुरुषवेद के उदय से पुरुष, पुरुष को नहीं चाहता—स्त्री को चाहता है। इसलिये विवाह के लिये स्त्री और पुरुष का होना अनिवार्य है। योग्यता की दुहाई देकर यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रीवेद के उदय से कुमार के ही साथ रमण

करने की इच्छा होती है और वह कुमारी को ही होती है। इसी तरह पुरुषवेद के उदय से यह नहीं कहा जा सकता कि पुरुष को कुमारी के साथ ही रमण करने की इच्छा होती है— विधवा के साथ नहीं होती। मतलब यह कि स्त्रीपुरुष वेदोदय के कार्य में स्त्री पुरुष का होना आवश्यक है, कुमार कुमारी का होना आवश्यक नहीं है। इसीलिये राजवार्तिक के लक्षण के अर्थ में स्त्रीपुरुष का नाम लिया—कुमार कुमारी का नाम नहीं लिया।

आक्षेप (ल)—स्त्री वेद के उदय से तो स्त्री मात्र से भोग करने की निरर्गल प्रवृत्ति होती है। वह विवाह नहीं है— व्यभिचार है। जहाँ मर्यादा रूप कन्या पुरुष में स्वीकारता है वही विवाह है। कामसेवन के लिये दोनों बद्ध होते हैं। 'मैं कन्या तुम ही पुरुष से मैथुन करूँगी और मैं पुरुष तुम ही कन्या से मैथुन करूँगा' यह स्वीकारता किस की है? जबतक कि कुमार अवस्थामें दोनों ब्रह्मचारी हैं। यहाँ समयकी अवधि नहीं है, अतः यह कन्या पुरुष की स्वीकारता यावज्जीव है।

समाधान—सिर्फ़ स्त्रीवेद के उदय को कोई विवाह नहीं कहता। उससे तो काम लालसा होती है। उस काम लालसा को मर्यादित करने के लिये विवाह है। इसलिये स्त्रीवेद के उदय के बिना विवाह नहीं कहला सकता और स्त्रीवेदके उदय होने पर भी काम लालसा को मर्यादित न किया जाय तो भी विवाह नहीं कहला सकता। काम लालसा को मर्यादित करने का मतलब यह है कि संसारकी समस्त स्त्रियोंसे काम लालसा हटाकर किसी एक स्त्रीमें नियत करना। वह स्त्री चाहे कुमारी हो या विधवा. अगर काम लालसा वहीं बद्ध हो गई है तो मर्यादा की रक्षा हो गई। सैकड़ों कन्याओं के साथ विवाह करते रहने पर भी काम लालसा मर्यादित कहलाती रहे और

समस्त स्त्रियों का त्याग करके एक विधवा में काम लालसा को बद्ध करने से भी काम लालसा मर्यादित न मानी जावे, इस नासमझी का कुछ ठिकाना भी है ? आक्षेपक के कथनानुसार जैसे कन्या 'तुम ही पुरुष' से मैथुन करने की प्रतिज्ञा करती है, उसी तरह पुरुष भी तो "तुमही कन्या" से मैथुन करने की प्रतिज्ञा करता है। पुरुष तो विधुर हो जाने पर या सपत्नीक होने पर भी अनेक स्त्रियों के साथ विवाह करता रहे—फिर भी उसको 'तुम ही कन्या' की प्रतिज्ञा बनी रहे और स्त्री, पति के मर जाने के बाद भी किसी एक पुरुष से विवाह करे तो इतने में ही 'तुम ही पुरुष' वाली प्रतिज्ञा नष्ट हो जावे ! वाहरे 'तुमही' !

यह 'तुम ही' का 'ही' तो बड़ा विचित्र है जो एक तरफ़ तो सैकड़ों बार मारे जाने पर भी बना रहता है और दूसरी तरफ़ ज़रा सा धक्का लगते ही समाप्त हो जाता है ! क्या आक्षेपक इस बात पर विचार करेगा कि जब उसके शब्दों के अनुसार ही स्त्री और पुरुष दोनों की प्रतिज्ञा यावज्जीव थी तो पुनर्विवाह से स्त्री, प्रतिज्ञाच्युत क्यों कही जाती है और पुरुष क्यों नहीं कहा जाता है ? यहाँ आक्षेपक को अपने 'यावज्जीव' और 'ही' का बिलकुल ख्याल ही नहीं रहा। इसीलिये अपनी धुन में मस्त होकर वह इक तरफ़ा डिगरी देता हुआ कहता है—

आक्षेप (ए)—जब यावज्जीव की प्रतिज्ञा कन्या करती है तो फिर पति के मरजाने पर वह विधवा हुई तो यदि पुरुषान्तर ग्रहण करती है तो अकलङ्कदेव प्रणीत लक्षण से उसका विवाह नहीं कहा जा सकता। वह व्यभिचार है।

समाधान—ठीक इसी तरह आक्षेपक के शब्दानुसार कहा जा सकता है कि जब यावज्जीव की प्रतिज्ञा पुरुष करता है तो फिर पत्नी के मर जाने पर वह विधुर हुआ। सो यदि

वह दूसरी कन्या ग्रहण करता है तो अकलङ्क देव प्रणीत लक्षण से उसका विवाह नहीं कहा जा सकता। वह व्यभिचार है।

यदि इतने पर भी पुरुष का पुनर्विवाह विवाह है, व्यभिचार नहीं है, तो स्त्रीका पुनर्विवाह भी विवाह है, व्यभिचार नहीं है। आक्षेपक के शब्द ही पूर्वापरविरुद्ध होने से उसके वक्तव्य का खंडन करते हैं। वे काने की दृष्टि के समान इक तरफ़ा तो हैं ही।

आक्षेप (ऐ)—राजवार्तिक के भाष्यमें विवाह के लिए कन्या शब्द का प्रयोग किया गया है। यह बात लेखक स्वयं मानते हैं।

समाधान—कन्या शब्द का अर्थ 'विवाह योग्य स्त्री है—विवाह के प्रकरणमें दूसरा अर्थ हो हो नहीं सकता। यह बात हम पहिले लेखमें सिद्धकर चुके हैं, यहाँ भी आगे सिद्ध करेंगे। परन्तु "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय का अवलम्बन करके हमने कहा था कि कन्या शब्द, कन्या के अन्य विशेषणों की भाँति आदर्श या बहुलता को लेकर ग्रहण किया गया है। इसीलिए वार्त्तिक में जो विवाह का लक्षण किया है उस में कन्या शब्द नहीं है। टीका में कन्या-विवाह का दृष्टान्त दिया गया है, इस से कन्या का ही वरण विवाह कहलायेगा, यह बात नहीं है। अकलङ्क देव ने अन्यत्र भी इसी शैली से काम लिया है। वे वार्तिक में लक्षण करते हैं और उसकी टीका में बहुलता को लेकर किसी दृष्टान्तको इस तरह मिला देते हैं जैसे वह लक्षण ही हो। अकलङ्क देव की इस शैली का एक उदाहरण और देखिये—

संवृत्तस्य प्रकाशनम् रहोभ्याख्यानं (वार्तिक) स्त्री पुंसाभ्यां एकान्तेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं यत् रहो-

भ्याख्यानं तद्वेदितव्यं (भाष्य)। वार्तिक में 'रहोभ्याख्यान' का अर्थ किया गया है 'किसी की गुप्त बात प्रगट करना' परन्तु भाष्य में बहुलता की अपेक्षा लिखा गया है कि 'स्त्री पुरुष ने जो एकांतमें कार्य्य किया हो उसका प्रकाशित करना' रहोभ्याख्यान है। भाष्य के अनुसार 'स्त्री पुरुष' का उल्लेख आचार्य्य प्रभाचन्द्रने रत्नकरण्डकी टीकामें, आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृत में भी किया है। आचार्य्य पूज्यपाद भी इसी तरह लिख चुके हैं। इस विवेचनसे आक्षेपक सरीखे लोग तो यही अर्थ निकालेंगे कि 'स्त्री-पुरुष' की गुप्त बात प्रगट करना रहोभ्याख्यान है। अन्य लोगों की गुप्त बात प्रगट करना रहोभ्याख्यान नहीं है। परन्तु विद्यानन्दि स्वामी ने श्लोक वार्तिक में जो कुछ लिखा है उससे बात दूसरी ही हो जाती है।

"संवृतस्य प्रकाशनं रहोभ्याख्यानं, स्त्री पुरुषानुष्ठित गुप्त क्रिया विशेष प्रकाशनवत्" अर्थात् गुप्त क्रिया का प्रकाशन. रहोभ्याख्यान है। जैसे कि स्त्री-पुरुष की गुप्त बात का प्रकाशन। यहाँ स्त्री पुरुष का नाम उदाहरण रूपमें लिया गया है। इससे दूसरों की गुप्त बात का प्रकाशन करना भी रहोभ्याख्यान कहलाया। यही बात रायचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित तत्वार्थ भाष्य में भी मिलती है—"स्त्री पुंसयोः परस्परेणान्यस्यवा"

मेरे कहने का सार यह है कि जैसे रहोभ्याख्यान की परिभाषा में बहुलता के कारण दृष्टांत रूप में 'स्त्री पुरुष' का उल्लेख कर दिया है उसी तरह विवाह की परिभाषा में मूलमें कन्या-शब्द न होने पर भी, बहुलता के कारण उदाहरण रूप में कन्या-शब्दका उल्लेख हुआ है। जिसका अनुकरण रहोभ्याख्यान की परिभाषा के 'स्त्री पुरुष' शब्द की तरह दूसरों ने भी किया है। परन्तु विद्यानन्दि स्वामी के शब्दोंसे यह बात साफ़

ज़ाहिर होती है कि रहोभ्याख्यान का 'रहः' स्त्री पुरुष में ही क़ैद नहीं है और न विवाह का 'वरण' कन्या में ही क़ैद है। इसीलिये श्लोक वार्तिक में विवाहकी परिभाषा में 'कन्या'शब्द का उल्लेख ही नहीं है।

इस ज़रासी बात को समझाने के लिये हमें इतनी पंक्तियाँ लिखनी पड़ी हैं। पर करें क्या ? ये आक्षेपक लोग इतना भी नहीं समझते कि किस ग्रन्थ की लेखन शैली किस ढङ्ग की है। ये लोग 'धर्म्म-विरुद्ध, धर्म्म-विरुद्ध' चिल्लाने में जितना समय बरबाद करते हैं उतना अगर शास्त्रों के मनन करने में लगावें तो योग्यता प्राप्त होने के साथ सत्य की प्राप्ति भी हो। परन्तु इन्हें सत्य की परवाह हो तब तो !

आक्षेप—(श्री) जो देने के अधिकारी हैं वे सब उपलक्षणसे पितृ सदृश हैं। उनके समान कन्याके स्थानमें विधवा जोड़ना सर्वथा असंगत है। क्योंकि विधवा के दान करने का अधिकार किसी को नहीं है। अगर पुरुष किसी के नाम वसीयत कर जाय तो यह कल्पना स्थान पा सकती है।

पिता ने कन्या जामाता को दी, अगर जामाता फिर किसी दूसरे पुरुषको देना चाहे तो नहीं दे सकता है: फिर दूसरा कौन दे सकता है ?

समाधान-जिस प्रकार देने के अधिकारी उपलक्षण से पितृ सदृश हैं उसी प्रकार विवाह योग्य सभी स्त्रियाँ कुमारी सदृश हैं: इस में न कोई विषमता है न असङ्गतता। आक्षेपक का हृदय इतना पतित है कि वह स्त्रियों को गाय, भैंस आदि की तरह सम्पत्ति या देने लेने की चीज़ समझता है। इसीलिए वह लिखता है "कन्या पिता की है, पिता न हो तो जो कुटुम्बी हों वेही उसके स्वामी हैं" लेकिन जैन शास्त्रों के अनुसार पिता वग़ैरह उसके संरक्षक हैं—स्वामी नहीं। स्त्री कोई सम्पत्ति नहीं

है यहाँ तक कि वह पति की भी सम्पत्ति नहीं है । सम्पत्ति, इच्छानुसार स्वामी को नहीं छोड सकती, जबकि स्त्री अपने 'पति' को छोड सकती है । यही कारण है कि अग्निपरीक्षा के बाद सीताजी ने राम को छोड़कर दीक्षा लेली । रामचन्द्र प्रार्थना करते ही रहगये। क्या सम्पत्ति इस तरह मालिक की उपेक्षा कर सकती है ? स्त्रियों को सम्पत्ति कहकर अपनी मां बहिनों का घोर अपमान करने वाले भी जैनी कहलाते हैं, यह आश्चर्य की बात है ।

यदि स्त्रियाँ सम्पत्ति है तो स्वामी के मरने पर उन का दूसरा स्वामी होना ही चाहिये, क्योंकि सम्पत्ति लावारिस नहीं रहती है । स्त्रियों को सम्पत्ति मान लेने पर तो विधवा-विवाह की आवश्यकता और भी ज़्यादः हो जाती है । हम पूछते हैं कि पति के मर जाने पर विधवा, लावारिस सम्पत्ति बनती है या उसका कोई स्वामी भी होता है । यदि आक्षेपक उसे लावारिस सम्पत्ति मानता है तब तो गवर्नमेन्ट उन विधवाओंको हथिया लेगी, क्योंकि 'अस्वामिकस्य द्रव्यस्य दायादो मेदिनी पतिः' अर्थात् लावारिस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी राजा होता है । क्या आक्षेपक की यह मन्शा है कि जैनसमाज की विधवाएँ अंग्रेज़ोंको देदी जायँ ? यदि वे किसीकी संपत्ति हैं तो आक्षेपक बतलावे कि वे किसकी सम्पत्ति हैं ? जैसे बाप की अन्य सम्पत्ति का स्वामी उसका बेटा होता है, क्या उसी प्रकार वह अपनी मां का भी स्वामी बने ? कुछ भी हो, स्त्रियों को सम्पत्ति मानने पर उनका कोई न कोई स्वामी अवश्य सिद्ध होता है और उसी को अधिकार है कि वह उस विधवा को किसी योग्य पुरुष के लिये देदे ।

इस तरह स्त्रियोंको सम्पत्ति मानने का सिद्धांत जंगलीपन से भरा होने के साथ विधवाविवाह-विरोधियों के लिये

आत्मघातक है। एक तरफ़ तो आक्षेपक कहता है कि पिताकी दी कन्या जामाता की सम्पत्ति है, दूसरी तरफ़ कहता है कि जामाता भी किसी को देना चाहे तो नहीं दे सकता। जब कि सम्पत्ति है तब क्यों नहीं दे सकता ? क्या इससे यह नहीं सिद्ध होता कि स्त्री किसी की सम्पत्ति नहीं है ? स्त्रियों को सम्पत्ति मानने वाले कन्या विक्रय के साथ भार्या-विक्रय, मातृ-विक्रय की कुप्रथाओं का भी सूत्रपात करते हैं। ख़ैर, स्त्रियाँ किसी की सम्पत्ति हों चाहे न हों, दोनों ही अवस्थाओं में विधवाओं को विवाह का अधिकार रहता है। इस तरह विवाह योग्य सभी स्त्रियाँ उपलक्षणसे कुमारी सदृश हैं; जैसे कन्या के सभी संरक्षक उपलक्षण से पितृसदृश।

आक्षेप (औ)—कन्या नाम स्त्री सामान्य का भी है, हम भी इसे स्वीकार करते हैं। विश्वलोचन कोष ही क्या, हेम और मेदिनी कोष भी ऐसा लिखते हैं, परन्तु जहाँ जैसा सम्बन्ध होगा, शब्द का अर्थ भी वहाँ वैसा मानना होगा।

समाधान—जब आक्षेपक कन्या का अर्थ स्त्री-सामान्य स्वीकार करता है और विवाह के प्रकरण में मैं कन्या शब्द का अर्थ 'विवाह योग्य स्त्री' करता हूँ तो इसमें सम्बन्ध-विरुद्धता या प्रकरणविरुद्धता कैसे हो गई ? विवाह के प्रकरण में विवाह योग्य स्त्री को प्रकरण-विरुद्ध कहना बुद्धि का अद्भुत परिचय देना है। भोजन करते समय सैन्धव शब्दका अर्थ घोड़ा करना प्रकरण-विरुद्ध है, क्योंकि घोड़ा खाने की चीज़ नहीं है, परन्तु विवाहयोग्य स्त्री तो विवाह की चीज़ है। वह विवाह के प्रकरण में प्रकरण-विरुद्ध कैसे हो सकती है ? आक्षेपक कहेगा कि विवाह तो कुमारी का ही होता है, इसलिये कन्या का कुमारी अर्थ ही प्रकरण-सङ्गत है। परन्तु यह तो आक्षेपक की मन गढंत बात है; जैनधर्म के अनुसार तो कुमारी और विधवा

दोनों का विवाह हो सकता है। इसलिये सुधारकों के लिये "विवाह योग्य स्त्री अर्थ" ही प्रकरण-सङ्गत है। आक्षेपक के समान सुधारक लोग तो जैनधर्म को तिलाञ्जलि दे नहीं सकते।

आक्षेप (अं)—साहसगति के मुँह से सुतारा को कन्या कहलाकर कवि ने साहित्य की छटा दिखलाई है। उसकी दृष्टि में वह कन्या समान ही थी। साहसगति के भावों में सुतारा की कामवासना सूचित करने के लिये कवि ने नारी भार्या आदि न लिखकर कन्या शब्द लिखा। यदि ऐसा भाव न होता तो कन्या न लिखकर रण्डा लिख देता।

समाधान—कविने रण्डा इसलिये न लिखा कि सुतारा तब राँड नहीं हुई थी। साहसगति सुग्रीवसे लड़कर या उसे मार कर सुतारा नहीं छीनना चाहता था—वह धोखा देकर छीनना चाहता था। इसीलिये उसने रूप-परिवर्तिनी विद्या सिद्ध की। आवश्यकता होने पर लड़ना पड़ा यह बात दूसरी है। ख़ैर! जब तक सुग्रीव मरा नहीं तब तक सुतारा को राँड कैसे कहा जा सकता था।

> दध्यौचेतसि कामाग्निदग्धो निःसार मानसः।
> केनोपायेनतां कन्यांलप्स्ये निर्वृतिदायिनी ॥१०।१४॥

यह श्लोक हमने यह सिद्ध करने के लिये उद्धृत किया था कि कन्याशब्द का 'स्त्री सामान्य' अर्थ भी है और इसके उदाहरण साहित्यमें मिलते हैं। आक्षेपक ने हमारे दोनों अर्थों को स्वीकार कर लिया है; तब समझमें नहीं आता कि वह उस अर्थ के समर्थन को क्यों अस्वीकार करता है। यह श्लोक विधवाविवाह के समर्थन के लिये नहीं दिया है। सिर्फ़ कन्या-शब्द के अर्थ का खुलासा करने के लिये दिया है, जो अर्थ आक्षेपक को मान्य है।

नारी, भार्या न लिखकर कन्या लिखने से कामवासना

कैसे सूचित हुई ? अगर कन्या शब्द का अर्थ कुमारी रक्खा जावे तब तो भार्याहरण की अपेक्षा कन्याहरण में कामवासना कम ही मालूम होती है।

असली बात तो यह है कि साहसगति विद्याधर दो पुत्रों की माता हो जाने पर भी सुतारा को प्रौढ़ा नहीं मानता था। उसकी दृष्टिमें उस समय भी वह परम सुन्दरी थी; उस में विवाह योग्य स्त्री के सब गुण मौजूद थे। इसीलिये उसने सुतारा को कन्या कहा। सुतारा में इस समय भी विवाहयोग्य स्त्री के समान सौंदर्यादि थे, इसलिये कविने उसे कन्या कहला कर यह बात और भी साफ़ करदी है कि विवाहयोग्य स्त्रीको कन्या कहते हैं। अगर कवि को यह अर्थ अभिमत न होता तो इस जगह वह 'बाला' शब्द का प्रयोग करता जिससे साहस-गति की कामातुरता का चित्र और अधिक खिल जाता।

ख़ैर, ज़रा व्याकरण की दृष्टिसे भी हमें कन्या शब्द पर विचार करना है। व्याकरण में पुल्लिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के कई तरीके हैं। कहीं ङीप्, कहीं टाप्, कहीं इन (हिंदी में) आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं तो कहीं शब्दोंका रूप बिलकुल बदल जाता है। जैसे पुत्र पुत्री आदि शब्दों में प्रत्यय लगाये जाते हैं जबकि माता पिता, भाई बहिन में शब्द ही बदल दिया जाता है। भाई और बहिन दोनों शब्दों का एक अर्थ है; अन्तर इतना है कि भाई शब्द से पुरुष जातीय का बोध होता है जबकि बहिन शब्द से स्त्री जातीय का। इसी तरह वर और कन्या शब्द हैं। दोनों का अर्थ एक ही है; अन्तर इतना ही है कि एक से पुरुष का बोध होता है दूसरे से स्त्री का। अपने विवाह के समय प्रत्येक पुरुष वर कहा जाता है, चाहे उस का पहिला विवाह हो, चाहे दूसरा। ऐसा नहीं है कि पहिले विवाह के समय 'वर' कहा जाय और दूसरे विवाह के समय वर न

कहा जाय। तथा हर एक कुमार को वर नहीं कह सकते। इसी प्रकार अपने विवाह के समय प्रत्येक स्त्री 'कन्या' कही जाती है, चाहे वह उसका पहिला विवाह हो चाहे दूसरा। ऐसा नहीं हो सकता कि पहिले विवाह के समय वह कन्या कही जाय और दूसरे विवाह के समय न कही जाय। मतलब यह कि विवाह कराने वाली प्रत्येक स्त्री कन्या है और विवाह न कराने वाली कुमारी भी कन्या नहीं है। अन्य प्रकरण में कन्या शब्द के भले ही दूसरे अर्थ हों, परन्तु विवाह के प्रकरण में अर्थात् वरण करने के प्रकरण में कन्या शब्द का 'विवाह कराने वाली स्त्री' अर्थ ही हो सकता है। इसी अर्थ को ध्यान में रख कर कवि ने साहसगति के मुंह से सुतारा को कन्या कहलाया है। इसी प्रयोग से कवि ने बतला दिया है कि कवि को वाच्य वाचक सम्बन्ध का कैसा सूक्ष्म परिचय है।

कविवर ने अपने इस सूक्ष्म ज्ञान का परिचय अन्यत्र भी दिया है कि जिस से सिद्ध होता है कि कविवर, कन्या शब्द का अर्थ 'विवाह कराने वाली स्त्री' या 'ग्रहण की जाने वाली स्त्री' करते हैं। यहाँ पर कविवर ने कन्या शब्द का प्रयोग किसी साधारण पात्र के मुंह से न कराके एक अवधिज्ञानी मुनि के मुँह से कराया है।

राजा कुण्डलमण्डित ने पिंगल ब्राह्मण की स्त्री का हरण कर लिया था। जन्मान्तर की कथा सुनाते समय अवधिज्ञानी मुनिराज इस घटना का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं—

अहरत्पिंगलात् कन्यां तथा कुंडल मंडितः।
यदत्रायं पुरा वृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः॥ ३०-१३३॥

अर्थात्—कुण्डलमण्डित ने पिङ्गल ब्राह्मण की स्त्री

का हरण किया। यह बात पहिले ही (पद्मपुराण में) कही गई है।

(कुण्डलमण्डित ने पिंगल की स्त्री का ही हरण किया था, किसी कुमारी का नहीं। यह बात पाठक पद्म-पुराण में देख सकते हैं। यहां भी वह श्लोक दिया जाता है:—

भरतस्थे विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डितः।
अधार्मिकोऽहरत्कांतां पिंगलस्यमनः प्रियां॥

॥ ३०। ६६ ॥

इस श्लोक में जिस का उल्लेख कान्ता शब्द से किया गया है, उसी का १३३ वें श्लोक में कन्या शब्द से किया गया है।

इन घटनाओं की अन्य बातों से हमें कोई मतलब नहीं। हमें तो आक्षेपक के हठ के कारण इन का उल्लेख करना पड़ा है। इस से हमें सिर्फ़ यही सिद्ध करना है कि कन्या शब्द का अर्थ 'ग्रहण—वरण—करने योग्य स्त्री' है। इस लिए "कन्यावरणं विवाहः" ऐसा कह कर जो विधवाविवाह का निषेध करना चाहते हैं, वे भूलते हैं।

आक्षेप—(अः) कन्या शब्द का अर्थ नारी भी है: इसलिये देवाङ्गनाओं के लिये 'देव-कन्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह नहीं हो सकता कि जो स्त्री दूसरा पति करे, वही कन्या कहलावे। विधवा होकर दूसरा पति ग्रहण करने वाली भी कन्या कहलाती हो सो सारे संसार में कहीं नहीं देखा जाता। जिन योरोप आदि देशों में या जिन जातियों में विधवा-विवाह चालू है, उन में भी विवाह के पूर्व लड़कियों को कन्या माना जाता है और विवाह के बाद बधू आदि।

समाधान—कुमारी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ (सधवा,

विधवा) को भी कन्या कह सकते हैं, यह बात आप पहिले स्वीकार कर चुके हैं और यहाँ भी स्वीकार कर रहे हैं। यही बात हम सिद्ध करना चाहते हैं। 'जो दूसरा पति ग्रहण करे वही कन्या है' यह तो हमारा कहना नहीं है। हम तो यह कहना चाहते हैं कि वह भी कन्या है; इस अर्थ को आप भी स्वीकार करते हैं। हाँ साहसगति विद्याधर और कुण्डलमण्डित के दृष्टान्त से यह बात अवश्य मालूम होती है कि जब कोई पुरुष किसी स्त्री को ग्रहण करना चाहता है, तभी प्रायः वह कन्या कही जाती है। अन्य अवस्थाओं में अकुमारी को कन्या कहने के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते। इन उदाहरणों से तथा वर और कन्या शब्द की समानार्थकता से यह बात साफ़ मालूम होती है कि कन्या का अर्थ विवाह कराने वाली या विवाह-योग्य स्त्री है।

योरोप का उदाहरण देकर तो आप ने अपना ही विरोध किया है। आप ने कन्या शब्द का अर्थ अकुमारी स्त्री भी किया है, जब कि योरोप का उदाहरण देकर आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि अविवाहिता को ही कन्या कहते हैं। परन्तु आप ने शब्दों का प्रयोग ऐसा किया है, जिस से हमारी बात सिद्ध होती है। आप का कहना है कि—योरोप में विवाह के पहिले लड़कियों को कन्या माना जाता है। इस पर हमारा कहना है कि—अगर कोई बालविधवा दूसरा विवाह करे तो उस विवाह के पहिले भी वह कन्या कहलायगी। यह तो आप बिलकुल हमारे सरीखी बात कह गये। आपने यह तो कहा नहीं है कि प्रथम विवाहके पहिले कन्या कहलाती है और दूसरे विवाह के पहिले कन्या नहीं कहलाती! ख़ैर। अब इस तर्क वितर्क के बाद सीधी बात पर आइये। योरोप में भारतीय भाषा के कन्या आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता।

अङ्गरेज़ी में कन्या के बदले Miss (मिस) शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु कन्या शब्द का अर्थ जब कुमारी किया जायगा तभी उसका पर्याय शब्द Miss (मिस) होगा; जब नारी अर्थ किया जायगा तब Miss (मिस) शब्द उसका पर्याय-वाची नहीं बन सकता। असली बात तो यह है कि 'वर' और 'कन्या' इसका ठीक हिंदी अनुवाद होगा 'दूल्हा' और 'दुल्हन'। जिस प्रकार 'दूल्हा' को 'वर' कहते हैं उसी प्रकार दुल्हिन को 'कन्या' कहते हैं। वर शब्द का अङ्गरेज़ी अनुवाद है Bride-groom (ब्राइडग्रम); इसलिये कन्या शब्द का अनुवाद होगा Bride (ब्राइड)। विवाह के प्रकरण में कन्या शब्द का दुल्हिन अर्थात् Bride अर्थ लगाना ही उचित है। जिस प्रकार भोजन के समय सैन्धव शब्द का घोड़ा अर्थ करना पागलपन है, उसी प्रकार विवाह के प्रकरण में कन्या शब्द का कुमारी अर्थ करना पागलपन है। उस समय तो कन्या शब्दका दुल्हिन अर्थ ही होना चाहिये। वह दुल्हिन कुमारी भी हो सकती है और विधवा भी हो सकती है। इसलिये कन्या शब्दके कारण विधवाविवाह का निषेध नहीं किया जा सकता।

आक्षेप—(क) सभी देवियों को दूसरे देवों के साथ नहीं रहना पड़ता। देवी जिसे चाहे उसी देव को अपना पति नहीं बना सकती, परन्तु अपने नियोगी को ही पति बना सकती है। देवियों के दृष्टान्त से विधवाविवाह की पुष्टि न करना चाहिये। दृष्टान्त जिस विषय का है पुष्टि भी वैसी करेगा। देवाङ्गना दूसरी गति है। वे रजस्वला नहीं होतीं, गर्भधारण नहीं करतीं, उन के पलक नहीं गिरते, जब कि मनुष्यनी की *ये बातें होती हैं।*

समाधान—सभी देवियों को दूसरा पति नहीं करना पड़ता, परन्तु जिन देवियों का पति मर जाता है वे पति के

स्थान पर पैदा होने वाले अन्य देव को पति बना लेती हैं, यह बात तो बिलकुल सत्य है। जैसा कि आदिपुराण के निम्न-लिखित श्लोकों से मालूम होता है :—

भीमः साधुः पुरे पुंडरीकिण्यां घातिघातनात्।

—पर्व० ४६। श्लो० ३४८।

रम्ये शिवंकरोद्याने पंचमज्ञान पूजितः।

तस्थिवांस्तं समागत्य चतस्रो देवयोषितः ॥ ४६। ३४६ ॥

वंदित्वाधर्ममाकर्ण्य पापादस्मत्पतिर्मृतः।

त्रिलोकेशवदास्माकं पतिः कोन्यो भविष्यति ॥ ४६।३५०॥

पुण्डरीकपुर के शिवंकर नामक बगीचे में भीम नामक साधु को घातिया कर्मों के नाश करने से केवल ज्ञान हुआ। उन के पास चार देवाङ्गनाएं आईं। वन्दना की, धर्म सुना। फिर पूछा—हे त्रिलोकेश! पापकर्म के उदय से हमारा पति मर गया है, इसलिये कहिये कि हमारा दूसरा पति कौन होगा?

यह बात दूसरी है कि बहुतसी देवाङ्गनाओं को विधवा नहीं होना पड़ता, इससे दूसरा पति नहीं करना पड़ता। परन्तु जिन्हें करने की ज़रूरत होती है वे दूसरे पति का त्याग नहीं कर देतीं। हाँ, देवाङ्गनाएँ दूसरे देव को नहीं पकड़तीं, अपने नियोगी को ही पकड़ती हैं; सो यह बात कर्मभूमि में भी है। मध्यलोक में भी नियोगी के साथ ही दाम्पत्यसम्बन्ध होता है। हाँ, देवगति में नियोगी पुरुष और नियोगिनी स्त्री का चुनाव (नियोग = नियुक्ति) दैव ही कर देता है जबकि कर्म-भूमि में नियोगी और नियोगिनी के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है। सो इस प्रकार का पुरुषार्थ विधवाओंके लिये ही नहीं करना पड़ता, कुमारियों के लिये भी करना पड़ता है। दैवकृत और प्रयत्नकृत नियोग की बात से हमें कुछ मतलब नहीं। देखना यह है कि देवगति में देवियाँ एक देव के मरने पर

दूसरा देव प्राप्त कर लेती हैं। इतना ही नहीं, दूसरे देव को प्राप्त करने की लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वे थोड़ी देर भी शान्त न बैठ कर केवली भगवान के पास पूछने जाती हैं। केवली भगवान भी दूसरे पति के विषय में उत्तर देते हैं। अगर दूसरे पति को ग्रहण करना पाप होता तो वे देवियाँ धर्म श्रवण करने के बाद केवली भगवान् से ऐसा प्रश्न न करतीं। और न केवली भगवान् के पास से इस का उत्तर मिलता। जब केवली भगवान् ने उन्हें धर्म सुनाया तो उसमें यह बात क्यों न सुनाई कि दूसरा पति करना पाप है? क्या इससे यह बात साफ़ नहीं हो जाती कि जैनधर्म में विधवा-विवाह को वही स्थान प्राप्त है जो कुमारीविवाह को प्राप्त है। इतने पर भी जो लोग विधवाविवाह को धर्मविरुद्ध समझते हैं वह पुरुष मदोन्मत्त, मिथ्यादृष्टि नहीं तो क्या हैं? देवांगना दूसरी गति में हैं और उनके शरीर में रस रक्तादि नहीं हैं, तो क्या हुआ? जैनधर्म तो सब जगह है। मिथ्यात्व और दुराचार शरीर के विकार नहीं, आत्मा के विकार हैं। इस लिये शरीर की गुणगाथा से अधर्म, धर्म नहीं बन सकता। यहाँ धर्म अधर्म की मीमांसा करना है, हाड़ माँस की नहीं। हाड़ माँस तो सदा अपवित्र है, वह न तो पुनर्विवाह से अपवित्र होता है और न पुनर्विवाह के बिना पवित्र। अगर यह कहा जाय कि 'देवगति में ऐसा ही रिवाज है, इसलिये वहाँ पाप नहीं माना जाता; विधवा देवियों को ग्रहण करने वाले भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं और दूसरे देव को ग्रहण करने वाली देवियाँ, स्त्री होने से क्षायिक सम्यक्त्व तो नहीं पा सकतीं, परन्तु बाक़ी दोनों प्रकार के सम्यक्त्व प्राप्तकर सकती हैं।' यदि रिवाज होने से देवगति में यह पाप नहीं है तो यहाँ भी पुनर्विवाह के रिवाज हो जाने पर पाप नहीं कहला सकता।

आक्षेप—(ख) दीक्षान्वय क्रिया में जो पुरुष दीक्षा ले रहा है, उसका विवाह उसी की स्त्री के साथ होना है। इससे विधवाविवाह कैसे सिद्ध होगया ?

समाधान—जो लोग कन्या शब्द का अर्थ कुमारी करते हैं और कुमारी के सिवाय किसी दूसरी स्त्री का विवाह ही नहीं मानते, उनको मुँहतोड उत्तर देने के लिये हमने दीक्षान्वय क्रिया का वह श्लोक उद्धृत किया है। दीक्षित मनुष्य भले ही अपनी स्त्री के साथ विवाह करता हो, परन्तु उस की स्त्री कन्या है कि नहीं ? यदि कन्या नहीं है तो 'कन्यावरणं विवाहः' इस परिभाषा के अनुसार वह विवाह ही कैसे कहा जा सकता है ? लेकिन जिनसेनाचार्य ने उसे विवाह कहा है। अगर वह स्त्री, विवाह होने के कारण कन्या मानी जासकती है तो विधवा भी कन्या मानी जा सकती है। सधवा तो कन्या कहला सके और विधवा कन्या न कहला सके—यह नहीं हो सकता।

आक्षेप (ग)—कन्याएँ जिस प्रकार शङ्खिनी पद्मिनी आदि होती हैं, उसी प्रकार पुरुष भी। जब स्त्री पुरुष समान गुणवाले नहीं होते तब वैमनस्य, सन्तानादि का अभाव होता है। इसलिये सागारधर्मामृत में कन्या के लिये निर्दोष विशेषण दिया है। तुम इन महत्वपूर्ण शब्दों का भाव ही नहीं समझे।

समाधान—समान गुणवाले स्त्री पुरुष होने से लाभ है। परन्तु हमारा कहना यह है कि अगर शङ्खिनी आदि भेदों की समानता नहीं पाई जाय तो विवाह धर्मविरुद्ध कहलायगा या नहीं ? यदि धर्मविरुद्ध कहलायगा तब आजकल के फ़ी सदी ९० विवाह धर्मविरुद्ध ठहरेंगे, क्योंकि इन भेदों का विचार ही नहीं किया जाता। अन्य प्रकार के वृद्धविवाहादि अनमेलविवाह भी धर्मविरुद्ध ठहरेंगे। फिर केवल विधवाविवाह के पीछे

इतना तूफ़ान मचाना किस काम का ? यदि अनमेल आदि विवाह धर्मविरुद्ध नहीं है तो विधवाविवाह भी धर्मविरुद्ध नहीं है । इसलिये जिस प्रकार 'निर्दोष' विशेषण सदोषा के विवाह को धर्मविरुद्ध नहीं ठहरा सकता, उसी प्रकार 'कन्या' विशेषण विधवा के विवाह को धर्मविरुद्ध नहीं ठहरा सकता। इसके लिये हमने पहिले लेख में खुलासा कर दिया है कि 'कन्या और विधवा में करुणानुयोग की दृष्टि में कुछ अन्तर नहीं है जिससे कन्या और विधवा में जुदी जुदी दो आज्ञाएँ बनाई जायँ'। इस अनुयोग सम्बन्धी प्रश्न का आप कुछ उत्तर नहीं दे सके।

आक्षेप (घ)—जैन सिद्धान्त में कन्या का विवाह होता है, यह स्पष्ट लिखा है । विधवा को आर्यिका होने का या वैधव्य दीक्षा धारण करने का स्पष्ट विधान है । इसलिये विधवाविवाह का विधान व्यभिचार की पुष्टि है।

समाधान—कन्या शब्द का अर्थ 'विवाह कराने वाली स्त्री' या 'दुलिहन' है (स्त्री सामान्य आपने भी माना है ।)। दुलिहन कुमारी भी हो सकती है और विधवा भी हो सकती है, इसलिये जैन सिद्धान्त की आज्ञासे विधवाविवाह का कुछ विरोध नहीं। शास्त्रों में तो अनेक तरह की दीक्षाओं के विधान हैं, परन्तु जो लोग दीक्षा ग्रहण नहीं करते, वे धर्मभ्रष्ट नहीं कहलाते । जिनमें विरक्ति के भाव पैदा हुए हों, कषायें शांत होगई हों, वे कभी भी दीक्षा ले सकती हैं। परन्तु जब विरक्ति नहीं है, कषायें शान्त नहीं हैं, तब ज़बर्दस्ती उनसे दीक्षा नहीं लिवाई जा सकती। 'ज्यों ज्यों उपशमत कषाया, त्यों त्यों तिन त्याग बताया' का सिद्धान्त आपको ध्यान में रखना चाहिये। इस विषय की प्रायः सभी बातें पहिले कही जा चुकी हैं।

आक्षेप (ङ)—प्रबोधसार में लिखा है कि 'कन्या का

दुबारा विवाह नहीं होता'। यशस्तिलक में लिखा है कि 'एक-बार जो कन्या स्त्री बनाई जाती है वह विवाह द्वारा फिर दुबारा स्त्री नहीं बनाई जाती'। आदिपुराण में अर्ककीर्ति कहते हैं 'कि मैं उस विधवा सुलोचना का क्या करूँगा'। नीतिवाक्यामृत में श्रेष्ठ शूद्रों में भी कन्या का एकबार विवाह माना जाता है।

समाधान—जैनगज़ट में श्लोक नहीं छपते, इस की ओट लेकर पण्डित लोग ख़ूब मनमानी गप्पें हाँक लिया करते हैं। अगर श्लोक देने लगें तो सारी पोल खुल जाय। ख़ैर, प्रबोध-सार में तो किसी भी जगह के ४४ नम्बर के श्लोक में हमें विधवाविवाह का निषेध नहीं मिला। यशस्तिलक के श्लोक के अर्थ करने में आक्षेपक ने जान बूझकर धोखा दिया है। ज़रा वहाँ का प्रकरण और वह श्लोक देखिये।

किस तरह की मूर्ति में देवकी स्थापना करना चाहिये, इसके उत्तर में सोमदेव लिखते हैं कि विष्णु आदिकी मूर्ति में अरहन्त की स्थापना न करना चाहिये। जैसे—जब तक कोई स्त्री किसी की पत्नी है तब तक उस में (परपरिग्रहे) स्वस्त्री का सङ्कल्प नहीं किया जा सकता। कन्याजन में स्वस्त्री का सङ्कल्प करना चाहिये।

शुद्धेवस्तूनि सङ्कल्पः कन्याजन इवोचितः।
नाकारान्तर संक्रान्ते यथा परपरिग्रहे॥

मतलब यह कि मूर्ति का आकार दूसरा हो और स्थापना किसी अन्य की की जाय तो वह ठीक नहीं। हनुमान की मूर्ति में गणेश की स्थापना और गणेश की मूर्ति में जिनेन्द्र की स्थापना अनुचित है। परन्तु मूर्ति का आकार बदलकर अगर स्थापना के अनुरूप बना दिया जाय तब वह स्थापना के प्रति-कूल नहीं रहती। अन्य धर्मावलंबियों में तो पत्थरों के ढेर और पहाड़ों तक को देवता की मूर्ति मान लेते हैं। इसलिये क्या

पत्थरों के ढेर में से या पहाड़ में से किसी पत्थर की जिनेन्द्र-मूर्ति बना लेना अनुचित हो जायगा? स्थापना में सिर्फ़ इतना ही देखना चाहिये कि वर्तमान में यह पत्थर आकारान्तरसंक्रान्त तो नहीं है। पहिले किस आकारमें था, इसके विचार की कोई ज़रूरत नहीं है। इसी प्रकार वर्तमान में जो किसी दूसरे पुरुष की स्त्री है उसे स्वस्त्री नहीं बनाना चाहिये; जैसे कि तिब्बत में अनेक पुरुष एक ही स्त्री को अपनी अपनी पत्नी बनाते हैं या जैसे कि हिंदू शास्त्रों में द्रोपदी के विषय में प्रसिद्ध है। परन्तु जो स्त्री विधवा होगई है वह तो कुमारी के समान किसी की पत्नी नहीं है। वह आकारान्तरसंक्रान्त अर्थात् किसी की पत्नी थी ज़रूर, परन्तु अब नहीं है। इसलिये उसमें स्वपत्नीत्वका सङ्कल्प अनुचित नहीं है। आक्षेपक ने प्रकरण को छिपाकर, कन्या शब्दका अर्थ भुलाकर, ज़बरदस्ती भूतकाल के रूपको वर्तमान का रूप देकर या तो खुद धोखा खाया है या दूसरों को धोखा दिया है।

आचार्य सोमदेवके वाक्यों से विधवाविवाह का विरोध करना दुःसाहस है। जो आचार्य अणुव्रती को वेश्यासेवन तक की खुलासी देते हैं वे विधवाविवाह का क्या विरोध करेंगे? बल्कि दूसरी जगह खुद उन्होंने स्त्री के पुनर्विवाह का समर्थन किया है। नीतिवाक्यामृत में वे लिखते हैं कि—'विकृत पत्यूढ़ापि पुनर्विवाहमर्हतीति स्मृतिकाराः' अर्थात् शास्त्रकार कहते हैं कि जिस स्त्री का पति विकारी अर्थात् सदोष हो, वह स्त्री भी पुनर्विवाह की अधिकारिणी है। इस वाक्य के उत्तर में कुछ लोग कहा करते हैं कि यह तो दूसरों की स्मृतियों का हवाला है—सोमदेव जी इससे सहमत नहीं हैं। परन्तु सोमदेव जी अगर सहमत न होते तो उन्हें इस हवाले की ज़रूरत क्या थी? यदि सोमदेवजी ने विधवाविवाह का खंडन किया होता और खंडन के लिये यह वाक्य लिखा होता तब तो कह सकते थे कि वे

विधवाविवाह से सहमत न थे; परन्तु जब विधवाविवाह का वे खण्डन नहीं करते और विधवाविवाह आदि के समर्थक वाक्य को उद्धृत करते हैं तो मूर्ख से मूर्ख भी कह सकता है कि सोमदेव जी विधवाविवाह के पक्षपाती थे। दूसरी बात यह है कि स्मृति शब्द से अजैनों के धर्मशास्त्र ही ग्रहण नहीं किये जा सकते। जैनशास्त्र भी श्रुति स्मृति आदि शब्दों से कहे गये हैं, जैसाकि आदिपुराण के ४४ वें पर्व में कहा गया है—

सनातनोऽस्ति मार्गोऽयम् श्रुतिस्मृतिषु भाषितः।
विवाहविधि भेदेषु वरिष्ठोहि स्वयंवरः ॥४४॥३२॥

यहाँ पर जैन शास्त्रों का उल्लेख श्रुति स्मृति शब्द से हुआ है। और भी अनेक स्थानों पर ऐसा ही शब्द व्यवहार देखा जाता है। मतलब यह कि नीतिवाक्यामृत में जो स्त्री के पुनर्विवाह का समर्थक वाक्य पाया जाता है उससे सोमदेव जी तो पुनर्विवाह समर्थक ठहरते ही हैं, साथ ही अन्य जैनाचार्यों के द्वारा भी इसका समर्थन होता है। ऐसे सोमदेवाचार्य के यशस्तिलक के श्लोक से विधवाविवाह का विरोध सिद्ध करने की कुचेष्टा करना दुःसाहस नहीं तो क्या है?

पाठक अब ज़रा अर्ककीर्ति के वाक्य पर विचार करें। जब सुलोचनाने जयकुमार को वर लिया तब अर्ककीर्तिके मित्र दुर्मर्षण ने अर्ककीर्ति को समझाया—

रत्नं रत्नेषु कन्यैव तत्राप्येषैव कन्यका।
तस्वां स्वगृहमानीय दौष्ट्यं पश्यास्य दुर्मतेः ॥४४।५॥

रत्नों में कन्यारत्न ही श्रेष्ठ है; उसमें भी यह कन्या (पाठक यह भी ख़याल रक्खें कि जयकुमार को वर लेने पर भी सुलोचना कन्या कही जा रही है) और भी अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये तुम उसे अपने घर लाकर उस दुर्बुद्धि की दुष्टता देखो (बदला लो)।

दुर्मर्षण की बातों में आकर अर्ककीर्ति जयकुमार को मार कर उसकी वरमाला छीनने को उतारू हो गया। इसी-लिये वह कहता है कि—

छिधा भवतु वा मा वा बलं तेन किमाशुगाः।
मालां प्रत्यानयिष्यंति जयवक्षो विभिद्यमे ॥ ४४। ६४॥

अर्थात् सेना दो भागोंमें बट जाय चाहे नहीं, मेरा उस से क्या? मेरे तो बाण जयकुमार का वक्षस्थल चीरकर वर-माला लौटा लावेंगे।

पाठक विचार करें कि वरमाला को छीन लेना सुलो-चना को ग्रहण कर लेना था, जिसके लिये अर्ककीर्ति तैयार हुआ था। निःसन्देह यह काम वह जयकुमारसे ईर्ष्याके कारण कर रहा था। परन्तु अर्ककीर्ति का अनवद्यमति नामका मन्त्री जानता था कि सुलोचना सरीखी राजकुमारी अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी को नहीं वर सकती। इसीलिये तथा अन्य आप-त्तियों की आशङ्का से उसने अर्ककीर्ति को समझाया कि 'तुम चक्रवर्ती के पुत्र होकर के भी क्या अनर्थ कर रहे हो? तुम्हीं से न्याय की रक्षा है और तुम्हीं ऐसे अन्याय कर रहे हो! तुम इस युग के परस्त्रीगामियों में पहिले नम्बर के परस्त्रीगामी मत बनो'।

परदाराभिलाषस्य प्राथम्यं मा वृथा कृथाः।
अवश्यमाहृताप्येषा न कन्याते भविष्यति ॥४४। ४७॥

अनवद्यमति कीबातें सुनकर अर्ककीर्ति लज्जित तो हुआ, परन्तु जयकुमार से बदला लेने का और सुलोचना छीनने का उसने पक्का निश्चय कर लिया था, इसलिये युद्ध का प्रोग्राम न बदला। हाँ, अपनी नैतिक सफ़ाई देने के लिये उसने अपने मन्त्री को निम्नलिखित वाक्य बोल कर झाँसा अवश्य दिया:—

नाहं सुलोचनाऽर्थ्यस्मि मत्सरी मच्छरैरयम् ।
परासुरधुनैवस्यात्किं मे विधवयानया ॥

मुझे सुलोचनासे कुछ मतलब नहीं, यह घमण्डी जयकुमार मेरे बाणों से मर जाय। मुझे उस विधवा से क्या लेना है ?

बस, अन्यायाचारी अर्ककीर्तिकी यह बात ही श्रीलालजी के लिए आगम बन बैठी है। आक्षेपक प्रकरण को छिपा कर इस प्रकार समाज को धोखा देना चाहता है। दुर्मर्षण ने जब सुलोचना को, कन्या-रत्न कहकर प्रशंसा की, तब अर्ककीर्ति से नहीं कहा गया कि मैं उस विधवा का क्या करूँगा ? उस समय तो मुँह में पानी आ गया था। अनवद्यमति की फटकार से कहने लगा कि मैं विधवा सुलोचना को ग्रहण न करूँगा—मैं तो सिर्फ़ बदला लेना चाहता हूँ। अर्ककीर्ति की यह कोरी चाल थी तथा उससे यह नहीं मालूम होता कि वह विधवा होने के कारण उसको ग्रहण नहीं करना चाहता था। उसने तो परस्त्रीहरण के अन्याय से निर्लिप्त रहने की सफ़ाई दी थी। प्रकरण को देखकर कोई भी समझदार कह सकता है कि इससे विधवाविवाह का खण्डन नहीं होता।

नीतिवाक्यामृत के वाक्य से विधवाविवाह का विरोध करना बड़ी भारी धोखेबाज़ी है। नीतिवाक्यामृत उन्हीं सोमदेव का बनाया हुआ है जो विधवाविवाह का अनुमोदन करते हैं। तब सोमदेव के वाक्य से विधवाविवाह का विरोध कैसे हो सकता है ? जिस वाक्य से विधवाविवाह का विरोध किया जाता है उसे आक्षेपक ने समझा ही नहीं है, या समझ कर छिपाया है। वह वाक्य यह है—

सकृत्परिणयन व्यवहाराः सच्छूद्राः ।

अर्थात् अच्छे शूद्र वे हैं जो एक ही बार विवाह करते

हैं, अर्थात् एक ही स्त्री रखते हैं। यह नियम उस समय के लिये था जब अनुलोम विवाह की प्रथा ज़ोर पर थी। उच्चवर्णी, शूद्र की कन्याएँ लेते थे, लेकिन शूद्रों को देते न थे। ऐसी हालत में शूद्र पुरुष भी अगर बहुपत्नी रखने लगते तब तो शूद्रों के लिये कन्याएँ मिलना भी मुश्किल हो जाता। इसलिये उन्हें अनेक पत्नी रखने की मनाई की गई। जो शूद्र अनेक स्त्रियाँ रखते थे वे असच्छूद्र कहे जाते थे। एक प्रकार से यह नियम भङ्ग करने का दण्ड था। आक्षेपक ने स्त्रियोंके पुनर्विवाह न करने की बात न मालूम कहाँ से खींच ली ? उस वाक्य की संस्कृत टीका से आक्षेपक की यह चालाकी स्पष्ट हो जाती है—

टीका—"ये सच्छूद्राः शोभनशूद्रा भवन्ति ते सकृत्परिणयनाः एकवारं कृतविवाहाः, द्वितीयं न कुर्वन्तीत्यर्थः। तथा च हारीतः द्विभार्योयोऽत्रशूद्रः स्याद्वृषालः स हि विश्रुतः। महत्वं तस्य नो भावि शूद्र जाति समुद्भवं।"

अर्थात्—जो अच्छे शूद्र होते हैं वे एक ही बार विवाह करते हैं, दूसरा नहीं करते हैं। यही बात कही भी है कि दो पत्नी रखने वाला शूद्र वृषाल कहलाता है—उसे शूद्र जाति का महत्व प्राप्त नहीं होता।

'शूद्रों को बहुत पत्नी न रखना चाहिये', ऐसे अर्थवाले वाक्य का 'किसी को विधवाविवाह न करना चाहिये' ऐसा अर्थ करना सरासर धोखेबाज़ी है। यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपक को इसका पता नहीं है, क्योंकि त्रिवर्णाचार की परीक्षा में श्रीयुत जुगलकिशोर जी मुख्तार ने इसका ख़ूब ख़ुलासा किया है।

इस प्रकार पहिले आक्षेपक के समस्त आक्षेप बिलकुल निर्बल हैं। अब दूसरे आक्षेपक के आक्षेपों पर विचार किया जाता है।

आक्षेप (च)—यदि विवाह शादी से सम्यक्त्व का कोई सम्बन्ध नहीं तो क्या पारसी, अंग्रेज़ लेडी, यवनकन्या आदि के साथ विवाह करने पर भी सम्यक्त्व का नाश नहीं होता? यदि नहीं होता तो शास्त्रोंमें विहित समदत्तिका क्या अर्थ होगा?

समाधान पारसी अङ्गरेज़ आदि तो आर्य हैं; सम्यक्त्व का नाश तो म्लेच्छ महिलाओंके साथ शादी करने परभी नहीं होता। चक्रवर्ती की ३२ हजार म्लेच्छ पत्नियों के दृष्टान्त से यह बात बिलकुल स्पष्ट है। चक्रवर्तियों में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, इन तीन तीर्थङ्करों का भी समावेश है। अन्य अनेक जैनी राजाओं ने भी म्लेच्छ और अनार्य स्त्रियों के साथ विवाह किया है। हां विवाह में इतनी बात का विचार यथासाध्य अवश्य करना चाहिये कि स्त्री जैन-धर्म पालने वाली हो अथवा जैनधर्म पालन करने लगे। इस से धर्मपालन में सुभीता होता है। इसीलिये समदत्ति में साधर्मी के साथ रोटी बेटी व्यवहार का उपदेश दिया गया है। अगर कोई पारसी, अङ्गरेज़ या यवन महिला जैनधर्म धारण करले तो उसके साथ विवाह करने में कोई दोष नहीं है। पुराने ज़मानेमें तो ऐसी अजैन कन्याओंके साथ भी शादी होती थी, फिर जैनकी तो बात ही क्या है? आचार शास्त्रों में लौकिक और पारलौकिक आचारों का विधान रहता है। उन का पालन करना सम्यग्दृष्टि की योग्यता और इच्छा पर निर्भर है। उन आचार नियमों के पालन करने से सम्यक्त्व आता नहीं है और पालन न करनेसे जाता नहीं है। इस लिए आचार नियमों के अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी महिलासे शादी करने से सम्यक्त्व का नाश नहीं होता।

आक्षेप (छ)—सराग सम्यक्त्व की अपेक्षा वीतराग सम्यक्त्व विशेष ग्राह्य है। फिर भी वीतराग सम्यक्त्वी में प्रशम

संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य गुण ज़रूर प्रकट होने चाहियें। निश्चय और व्यवहार दोनों का ख़याल रखना चाहिये। व्यवहार, निश्चयका निमित्त कारण नहीं—उपादान कारण है।

समाधान—सम्यग्दृष्टिमें प्रशम सम्वेगादि होना चाहियें तो रहें। सम्यग्दृष्टि विधवाविवाह करते हुए भी प्रशम सम्वेग अनुकम्पा आस्तिक्यादि गुण रख सकता है। प्रशम से राग, द्वेष कम हो जाते हैं, सम्वेग से संसार से भय हो जाता है। इतने परभी वह हज़ारों म्लेच्छ कन्याओंसे विवाह कर सकता है, बड़े २ युद्ध कर सकता है और नरकमें हो तो परम कृष्ण लेश्या वाला रौद्रपरिणामी बनकर हज़ारों नारकियोंसे लड़सकता है! तबभी उस के सम्यक्त्वका नाश नहीं होता। उसके प्रशम संवेगादि बन सकते हैं, तो विधवाविवाह वाले के क्यों नहीं बन सकते? व्यवहार निश्चय का कारण है। परन्तु विधवाविवाह भी तो व्यवहार है। जिस प्रकार कुमारी विवाह धर्म से दृढ़ रहने का कारण है उसी प्रकार विधवाविवाह भी है। व्यवहार तो द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भेद से अनेक भेद रूप है। व्यवहार के एक भेद से उसी के दूसरे भेद की जाँच करना व्यवहारैकान्तवादी बन जाना है। निश्चय को कसौटी बना कर व्यवहार की परीक्षा करना चाहिये। जो व्यवहार निश्चय अनुकूल हो वह व्यवहार है, जो प्रतिकूल हो वह व्यवहाराभास है। विधवा-विवाह निश्चय सम्यक्त्व के अनुकूल अथवा अविरुद्ध है। इसलिये वह सच्चा व्यवहार है। व्यवहार सम्यक्त्व के अन्य चिन्हों के साथ भी उस का कोई विरोध नहीं है।

व्यवहार को निश्चय का उपादान कारण कहना कार्य कारण भाव के ज्ञान का दिवाला निकाल देना है। व्यवहार पराश्रित है और निश्चय स्वाश्रित। क्या पराश्रित, स्वाश्रित का उपादान हो सकता है? यदि व्यवहार निश्चय का उपादान

कारण है तो वह सिद्धों में भी होना चाहिये; क्योंकि उन के भी निश्चय-सम्यक्त्व है। परन्तु सिद्धों में रागादि परिणति न होने से सराग सम्यक्त्व हो नहीं सकता। तब वह उपादान कारण कैसे कहलाया? यदि व्यवहार निश्चय को पूर्वोत्तर पर्याय मान कर उपादान उपादेय भाव माना हो तो दोनों का साहचर्य (साथ रहना) बतलाना व्यर्थ है। तथा इस दृष्टि से तो सम्यक्त्व के पहिले रहने वाली मिथ्यात्व पर्याय भी उपादान कारण कहलायगी। तब सम्यक्त्व की उपादानता में महत्व ही क्या रह जायगा? खैर, हमारा कहना तो यही है कि विधवाविवाह निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व के प्रशमादि गुणों के विरुद्ध नहीं है। इसलिये व्यवहार सम्यक्त्व की दुहाई देकर भी उस का विरोध नहीं किया जा सकता।

आक्षेप (ज)—विवाहों की अष्ट प्रकार की संख्या से बाह्य होने के कारण और इसीलिये भगवत् प्रतिपादित न होने के कारण क्या आस्तिक्य सम्यग्दृष्टि विधवाविवाह को मान्य ठहरा सकता है?

समाधान—विवाह के आठ भेदों में तो बालविवाह, वृद्ध विवाह, युवतीविवाह, सजातीयविवाह, विजातीयविवाह, अनुलोमविवाह, प्रतिलोमविवाह, सगोत्रविवाह, विगोत्र विवाह, कुमारीविवाह, विधवाविवाह, आदि किसी नाम का उल्लेख नहीं है; तब क्या ये सब आस्तिक्य के विरुद्ध हैं? तब तो कुमारी विवाह भी आस्तिक्य के विरुद्ध कहलाया, क्योंकि आठ भेदों में कुमारी विवाह का भी नाम नहीं है। अगर कहा जाय कि कुमारीविवाह, सजातीय विवाह आदि विवाहों के उपर्युक्त आठ आठ भेद हैं तो बस, विधवाविवाह के भी उपर्युक्त आठ भेद सिद्ध हुए। जैसे कुमारीविवाह

आठ तरह का हो सकता है उसी प्रकार विधवाविवाह भी आठ तरह का हो सकता है।

आक्षेप (झ)—सम्यग्दृष्टि जीव में राग द्वेष की उत्कटता का क्षयोपशम हो गया है। उस के व्रत नियम न सही, परन्तु स्वरूपाचरण चारित्र तो है, जो संसार से भयभीत, मद्यमांस आदि से विरक्त, विधवाविवाह आदि राग-प्रवृत्ति से बचाता है। यदि उस के स्वरूपाचरण चारित्र न माना जाय तो वह दुनियाँ भर के सभी रौद्र कर्म करके भी सम्यक्त्वी बना रहेगा।

समाधान—स्वरूपाचरण तो नारकियों के भी होता है, पाँचों पाप करने वालों के भी होता है, कृष्णलेश्या वालों के भी होता है। तब विधवाविवाह से ही उस का क्या विरोध है! सम्यग्दर्शन, भेद विज्ञान, स्वरूपाचरण चारित्र, ये सहचर हैं? इसलिये जो बात एक के लिए कही गई है वही तीनों के लिये समझना चाहिये। अनन्तानुबन्धी के उदय क्षय से स्वरूपाचरण होता है। इस विषय में लेख के प्रारम्भ में आक्षेप नम्बर 'अ' का समाधान देखना चाहिये।

आक्षेप (ञ)—सातवें नरक में सम्यक्त्व नष्ट न होने की बात आप ने कहाँ से लिखी?

समाधान—इसका समाधान पहिले कर चुके हैं। देखो आक्षेप नम्बर 'इ' का समाधान।

आक्षेप (ट)—सम्यग्दृष्टि जीव पञ्च पापोपसेवी नहीं होता, किन्तु उपभोगी होता है अर्थात् उसकी रुचिपूर्वक पञ्च पापों में प्रवृत्ति नहीं होती।...पाप तो सदा सर्वथा घोर पाप-बन्धन का ही कारण है। फिर तो सम्यक्त्वी को भी घोर पाप बन्ध सिद्ध हो जायगा और सम्यक्त्वीको बन्धका होना कहने पर अमृतचन्द्र सूरि के "जिस दृष्टि से सम्यग्दृष्टि है उस दृष्टि से बन्ध नहीं होता" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा?

समाधान—हमने सम्यक्त्वी को पञ्चपापोपसेवी नहीं लिखा है, पाँच पाप करने वाला लिखा है। भले ही वह उपभोग हो। उस की रुचिपूर्वक प्रवृत्ति तो पाप में ही क्या, पुण्य में भी नहीं होती। वह तो दोनों को हेय और शुद्ध परिणति को उपादेय मानता है। उसकी रुचि न तो कुमारी-विवाह में है न विधवा-विवाह में, किन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के उदय से वह अरुचिपूर्वक जैसे कुमारीविवाह करता है उसी प्रकार विधवाविवाह भी करता है। उसकी अरुचि विधवाविवाह को रोके और कुमारी विवाह को न रोके, यह कैसे हो सकता है? आक्षेपक का कहना है कि "पाप तो सदा सर्वथा घोर पाप-बन्धका कारण है", तब तो सम्यग्दृष्टि को भी घोर पापबन्ध का कारण होगा; क्योंकि वह भी पापोपभोगी है। लेकिन आक्षेपक सम्यग्दृष्टिको घोर पाप बन्ध नहीं मानता। तब उस का 'सदा सर्वथा' शब्द आपही खण्डित हो जाता है। अमृत-चन्द्र का हवाला देकर तो आक्षेपक ने बिलकुल ऊटपटाँग बका है, जिस से विधवाविवाह विरोध का कोई ताल्लुक नहीं। सम्यक्त्व तो बन्ध का कारण है ही नहीं, किन्तु उसके साथ रहने वाली कषाय बन्ध का कारण ज़रूर है। यही कारण है कि अविरत सम्यग्दृष्टि ७७ प्रकृतियों का बन्ध करता है जिन में बहुभाग पाप प्रकृतियों का है। सम्यक्त्व और स्वरूपाचरण होने से उस के १६+२५=४१ प्रकृतियों का बन्ध रुकता है। सम्यग्दृष्टि जीव अगर विधवाविवाह करे तो उसके इन ४१ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होगा। हां, बाक़ी प्रकृतियोंका बन्धहो सकेगा। सो वह तो कुमारी विवाह करने पर भी हो सकेगा और विवाह न करने पर भी हो सकेगा। हमारा कहना तो यही है कि जब सम्यग्दृष्टि जीव—अरुचि पूर्वक ही सही—

पाँचों पाप कर सकता है, कुमारीविवाह कर सकता है, तब विधवाविवाह भी कर सकता है।

आक्षेप (ठ)—विधवाविवाह इसीलिए अधर्म नहीं है कि वह विवाह है बल्कि इस लिए अधर्म है कि आगम विरुद्ध है। "कोई प्रवृत्यात्मक कार्य धर्म नहीं है" यह लिखना सर्वथा असङ्गत और अज्ञाननतापूर्ण है। विवाहको निवृत्त्यात्मक मानना भी व्यर्थ है। अगर निवृत्यात्मक होता तो पाँचवें गुणस्थान के भेदोंमें निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी आवश्यकताही क्या थी ?

समाधान—विधवाविवाह आगमविरुद्ध नहीं है, यह हम सिद्ध कर चुके हैं और आगे भी करेंगे। यहाँ हमारा कहना यही है कि अगर विवाह अधर्म नहीं है तो विधवाविवाह भी अधर्म नहीं है। अगर विधवाविवाह अधर्म है तो विवाह भी अधर्म है। सच पूछा जाय तो जैनधर्म के अनुसार कोई भी प्रवृत्यात्मक कार्य धर्म नहीं है। क्योंकि धर्म का मतलब है रत्नत्रय या सम्यक्चारित्र। सम्यक्चारित्रका लक्षण शास्त्रकारों ने "बाह्याभ्यन्तर क्रियाओं की निवृत्ति" किया है: जैसे कि— "संसार कारण निवृत्तिंप्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः बाह्याभ्यन्तर क्रिया विशेषो परमः सम्यक्चारित्रम्" (राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि)

भवहेतु प्रहाणाय वहिरभ्यन्तरक्रिया—
विनिवृत्तिः परं सम्यक् चारित्रम् ज्ञानिनो मतम्।
—श्लोक वार्तिक।

बहिरब्भंतर किरया रोहो भवकारण पणासट्ठम्।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमम् सम्मचारित्तम्॥
—द्रव्यसंग्रह।

चरणानुयोग शास्त्रों में भी इसी तरह का लक्षण है—

हिंसा नृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवा परिग्रहाभ्यांच ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥
—रत्नकरण्डश्रावकाचार ।

ज़्यादा प्रमाण देने की ज़रूरत नहीं । प्रायः सर्वत्र चारित्र का लक्षण निवृत्यात्मक ही किया है । हाँ! व्यवहारनय से प्रवृत्यात्मक लक्षण का भी उल्लेख मिलता है; जैसे—

असुहादो विणिवित्ती सुह पवित्तीय जाण चारित्तं ।
वदसमिदि गुत्तिरूय ववहारणयादुजिण भणियं ॥
—द्रव्यसंग्रह ।

यहाँ पर अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को व्यवहारनय से चारित्र कहा गया है। परन्तु व्यवहारनय से कहा गया चारित्र, वास्तविक चारित्र नहीं है । क्योंकि व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ (अवास्तविक) है । अमृतचन्द्राचार्य ने इस का बहुत ही अच्छा खुलासा किया है—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्य भूतार्थम ।
भूतार्थ बोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥
अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा वर्णयन्त्य भूतार्थम् ।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य ।
व्यवहार एवहि तथा निश्चयतां यात्यानश्चयज्ञस्य ॥
व्यवहार निश्चयौ यः प्रबुध्यतत्वेन भवति मध्यस्थः ।
प्राप्नोति देशनायाः सएवफलमविकलम्शिष्यः ॥

अर्थात्—वास्तविकता को विषय करने वाला निश्चयनय है और अवास्तविकताको विषय करने वाला व्यवहारनय है । प्रायः समस्त संसार वास्तविकता के ज्ञान से रहित है। अल्पबुद्धि वाले जीवों को समझाने के लिये व्यवहारनय का कथन किया जाता है । जो व्यवहारनय को ही पकड़ के रह जाता है

उसको उपदेश देना व्यर्थ है। जैसे जिसने सिंह नहीं देखा वह क्रूरता शूरता वाले व्यक्ति को ही सिंह समझ जाता है, उसी प्रकार जो निश्चय (वास्तविक) को नहीं जानता वह व्यवहार (अवास्तविक) को ही निश्चय समझ जाता है। जो व्यवहार और निश्चय इन दोनों को समझकर मध्यस्थ होता है, वही उपदेश का पूर्ण फल प्राप्त करता है।

मतलब यह कि व्यवहार चारित्र, वास्तव में चारित्र नहीं है—वह तो चारित्र के प्राप्त करने का एक ज़रिया है, जो कि अल्पबुद्धि वालों को समझाने के लिये कहा गया है। हाँ, यहाँ पर आचार्य यह भी कहते हैं कि मनुष्य को एकान्तवादी न बनना चाहिये। यही कारण है कि हमने अनेकान्त रूप से विवाह का विवेचन किया है। अर्थात् वास्तविकता की दृष्टि से (निश्चयनय से) विवाह धर्म नहीं है, क्योंकि वह प्रवृत्तिरूप है और उपचार से धर्म है। परन्तु यह उपचरित धार्मिकता सिर्फ़ कुमारी विवाह में ही नहीं है विधवाविवाह में भी है। क्योंकि दोनों में परस्त्री अर्थात् अविवाहित स्त्री से निवृत्ति पाई जाती है। पाठक देखेंगे कि हमारा विवेचन कितना शास्त्र-सम्मत और अनेकान्त से पूर्ण है, जबकि आक्षेपक बिल्कुल व्यवहारैकान्तवादी बनगया है। इसीलिये "प्रवृत्यात्मक कार्य धर्म नहीं है" निश्चयनय के इस कथन को यह सर्वथा (?) असंगत समझता है?

हमने विवाह को उपचरित धर्म सिद्ध करने के लिये कथंचिन्निवृत्यात्मक सिद्ध किया था। जिस प्रकार किसी मनुष्य को शेर कहने से वह शेर नहीं होजाता, किन्तु शेर के कुछ गुणों की कुछ समानता उसमें मानी जाती है, उसी प्रकार व्यवहार चारित्र, चारित्र न होने पर भी उसमें चारित्रको कुछ समानता पायी जाती है। चारित्रमें तो शुभ और अशुभ दोनों

से निवृत्ति पायी जाती है और व्यवहार चारित्र में अशुभ से ही निवृत्ति पायी जाती है। व्यवहार चारित्र की चारित्र के साथ यही आंशिक समानता है। यही कारण है कि व्यवहार चारित्र भी चारित्र कहा गया। जब विवाह, व्यवहार धर्म है तो उसमें किसी न किसी रूपमें निवृत्यात्मकता होना चाहिये। इसीलिये हमने कहा है कि विवाह से परस्त्रीसेवन रूप अशुभ परिणति से निवृत्ति होती है। यह निवृत्ति कुमारीविवाह से भी होती है और विधवाविवाह से भी होती है।

"विवाह अगर निवृत्यात्मक है तो ब्रह्मचर्य प्रतिमा क्यों बनाई!"—आक्षेपकका यह कथन तो बड़ा विचित्र है। अरे भाई विवाह में जितनी निवृत्ति है उस से ज्यादः निवृत्ति ब्रह्मचर्य में है। पहली क्लासमें भी शिक्षा दी जाती और दूसरी में भी दी जाती है तो क्या यह कहा जासकता है कि पहिली क्लास में शिक्षा दी जाती है तो दूसरी क्यों बनाई? अगर कोई पूछे कि मुनि तो छठवें गुणस्थान में बन जाता है, फिर सातवाँ क्यों बनाया? पाँच पापों का त्याग तो अणुव्रतों में हो जाता है फिर महाव्रत क्यों बनाये? सामायिक और प्रोषधोपवास तो दूसरी प्रतिमा में धारण किये जाते हैं फिर इन नामों की तीसरी चौथी प्रतिमा क्यों बनाई? व्यभिचार और परिग्रह का त्याग तो ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह परिमाण व्रत में हो जाता है फिर सातवीं और दशमीं प्रतिमा क्यों बनाई? तो इन सब प्रश्नों का क्या उत्तर दिया जायगा?

उत्तर यही दिया जायगा कि पहिली अवस्थाओं में थोड़ा त्याग है और आगे की अवस्थाओं में ज्यादः त्याग है। यही उत्तर विवाह के विषय में है। विवाह में थोड़ा त्याग है—ब्रह्मचर्य में ज्यादः त्याग है।

देव पूजा आदि प्रवृत्यात्मक हैं परन्तु जब वे धर्म कहे

जाते हैं तब निवृत्यात्मक भी होते हैं। उन में कुदेवपूजा तथा अन्य अशुभ परिणतियों से निवृत्ति पायी जाती है। इसी से वे भी व्यवहार-धर्म कहे गये हैं।

इस विवेचन से पाठक समझ गये होंगे कि विधवा-विवाह में कुमारीविवाह के बराबर निवृत्ति का अंश पाया जाता है। इसलिये दोनों एक ही तरह के व्यवहार धर्म हैं।

आक्षेप (ड)—यह लिखना महाझूठ है कि विवाह के सामान्य लक्षण में कन्या शब्द का उल्लेख नहीं है। 'कन्या का ही विवाह होता है' क्या इस दलील को झूठ बोलकर यों ही उड़ा देना चाहिये ?

समाधान—हमने कन्या शब्द को उड़ाया नहीं है, बल्कि इस शब्द के ऊपर तो हमने बहुत ज़ोरदार विचार किया है। राजवार्तिक तथा अन्य ग्रंथोंमें जो कन्या शब्दका प्रयोग किया गया है, उसके विषय में हम श्रीलालजी के आक्षेपों के उत्तर देते समय लिख चुके हैं। इसके लिये आक्षेप नम्बर 'ए' का समाधान पढ़ लेना चाहिये।

आक्षेप (ढ)—आप त्रिवर्णाचार को अप्रमाण मानकर के भी उसी के प्रमाण देते हैं, लेकिन जिस त्रिवर्णाचार में टट्टी पेशाब जाने की क्रिया पर भी कड़ी निगरानी रक्खी गई है, उसी में विधवाविवाह की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

समाधान—त्रिवर्णाचार को हम अप्रमाण मानते हैं, परन्तु विधवाविवाह के विरोधी तो प्रमाण मानते हैं, इसलिये उन्हें समझाने के लिये उसका उल्लेख किया है। किसी ईसाई को समझाने के लिये बाइबिल का उपयोग करना, मुसलमान को समझाने के लिये कुरान का उपयोग करना, हिन्दू को समझाने के लिये वेद का उपयोग करना जिस प्रकार उचित है, उसी प्रकार स्थितिपालकों को समझाने के लिये त्रिवर्णाचार का

उपयोग करना उचित है। 'टट्टी पेशाब की निगरानी रखने वाला विधवाविवाह का समर्थन नहीं कर सकता'—यह तो बिलकुल हास्यास्पद युक्ति है। आज भी दक्षिण प्रान्त में टट्टी पेशाब तथा अन्य क्रिया-कांड पर उत्तर प्रान्त की अपेक्षा कई गुणी निगरानी रक्खी जाती है। फिर भी वहाँ विधवाविवाह और तलाक़ का आम रिवाज है। ख़ैर, त्रिवर्णाचारमें विधवा-विवाह का विधान है, यह बात २७ वें प्रश्न के उत्तर में सिद्ध की गई है। उसी प्रश्नके आक्षेप समाधानों में इस पर विचार किया जायगा।

आक्षेप (ण)—कन्या शब्द का अर्थ "विवाह योग्य स्त्री" क्यों किया जाय? पिता शब्द का अर्थ तो 'गुरुजन' होता है जैसा कि अमरकोष में लिखा है 'स्यान्निषेकादिकृद्गुरुः'; परन्तु कुमारी के अतिरिक्त कन्या शब्द का प्रयोग न तो हमारे कहीं देखने में आया है न सुना ही है। धनञ्जय नाममाला में 'कन्या पतिर्वरः' लिखा है; 'स्त्री पतिर्वरः' क्यों नहीं?

समाधान—कन्या शब्द का 'विवाह योग्य स्त्री' अर्थ क्यों किया जाय, इस का समाधान आक्षेप 'ओ' के समाधान में देखिये। कन्या शब्द का कुमारी के अतिरिक्त अर्थ आप ने नहीं देखा सुना तो इस में हमारा क्या अपराध है? यह आप के ज्ञान की कमी है। आप के सहयोगी प० श्रीलाल जी ने तो यह अर्थ देखा है। उन के कथनानुसार ही आप विश्वलोचन, हेम और मेदिनी कोष देख डालिये। परन्तु इसके पहिले कोष देखने की कला सीख लीजिये, क्योंकि इसी प्रकरण में अमरकोष देखने में आप ने बड़ी गलती की है। अमरकोष में लिखा है कि 'पित्रादिर्गुरुः' अर्थात् पिता, माता, भ्राता, मामा आदि गुरु हैं; परन्तु आप अर्थ करते हैं कि पिता माता, भ्राता आदि पिता हैं। आप को समझना चाहिये कि

पिता आदि को गुरु कह सकते हैं, परन्तु सब तरह के गुरुओं को पिता नहीं कह सकते। कन्या का विशेषण 'पितृदत्ता' है न कि 'गुरुदत्ता' जिससे कि अमरकोष के अनुसार आप विस्तृत अर्थ कर सकें। इसलिये यहाँ पितृशब्द उपलक्षण है। इसी प्रकार कन्या शब्द भी उपलक्षण है। नाममाला में 'स्त्री पतिर्वरः' न कहने का कारण यह है कि प्रत्येक स्त्री का पति वर नहीं कहलाता, किन्तु जो कन्या अर्थात् जो विवाह योग्य स्त्री (दुल्हन) होती है उसी के पति को वर (दुल्हा) कहते हैं। 'स्त्री पतिर्वरः' कह देने से सभी सस्त्रीक पुरुष जीवन भर के लिये वर अर्थात् दुल्हा कहलाने लगते।

आक्षेप (त)—अमरकोष में 'पुनर्भू' शब्द का अर्थ किया है 'दुबारा विवाह करने वाली स्त्री' और कवि सम्राट् धनञ्जय ने पुनर्भू शब्द को व्यभिचारिणी स्त्रियों के नामों में डाला है। धनञ्जय, अकलङ्क और पूज्यपाद की कोटि के हैं, क्योंकि नाममाला में लिखा है "प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणं। द्विसन्धान कवेः काव्यम् रत्नत्रयमपश्चिमम्" नाममाला के प्रमाण से सिद्ध है कि स्त्री का पुनर्विवाह व्यभिचार है।

समाधान—धनञ्जयजी कवि थे, परन्तु उनका कोष संस्कृत साहित्य के सब कोषों से छोटा और नीचे के दर्जे का है। ऊपर जो इन की प्रशंसा में श्लोक उद्धृत किया गया है वह खुद ही इन्हीं का बनाया है। इस तरह अपने मुँह से प्रशंसा करने से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता। धनञ्जय को पूज्यपाद या अकलङ्क की कोटि का कहना उन दोनों आचार्यों का अपमान करना है। धनञ्जय यदि सर्वश्रेष्ठ कवि भी होते तो भी क्या अकलङ्कादि के समान मान्य हो सकते थे? गाँधी जी सब से बड़े नेता हैं, गामा सब से बड़ा पहलवान है और गौहर सर्व श्रेष्ठ गायिका है तो क्या गाँधीजी गामा और गौहर की इज़्ज़त

बराबर हो गई ? मान्यता के लिये सिर्फ सर्वश्रेष्ठता नहीं देखी जाती, परन्तु यह भी देखा जाता है कि वह श्रेष्ठता किस विषय में है। धनञ्जय एक अच्छे पण्डित या कवि थे तो क्या वे पूज्यपाद और अकलङ्क के समान आचार्य और तत्त्वज्ञ भी थे, जिस से सिद्धान्त के विषय में उन का निर्णय माना जाय ?

खैर ! अब हम मूल विषय पर आते हैं। अमरकोषकारने पुनर्भू शब्द का अर्थ किया है "दुबारा विवाह कराने वाली स्त्री"। पुनर्भू का दूसरा नाम दिधिषू भी है। जिस ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य की स्त्री, पुनर्भू होती है उसे अग्रेदिधिषु कहते हैं (इस से यह भी सिद्ध होता है कि पहिले ज़माने में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में भी स्त्री पुनर्विवाह होता था)। अमरकोषकार ने पुनर्भू का 'दुबारा विवाह करने वाली स्त्री' अर्थ तो किया, परन्तु उसे व्यभिचारिणी नहीं माना। व्यभिचारिणी के उन्होंने पुंश्चली, धर्षिणी, बन्धकी, असती, कुलटा, इत्वरी आदि नाम तो बताये परन्तु पुनर्भू नाम नहीं बताया। जो कोषकार पुनर्भू शब्द का उपर्युक्त अर्थ करता है वह तो व्यभिचारिणी उसे लिखता नहीं, किन्तु जिसने (धनञ्जय ने) पुनर्भू शब्द का अर्थ ही नहीं बताया वह उसे व्यभिचारिणी कहता है ! इससे मालूम होता है कि अमरकोषकार के अर्थ से धनञ्जय का अर्थ बिलकुल जुदा है। अमरकोषकार के मतसे पुनर्भू शब्द का अर्थ है 'दुबारा विवाह करने वाली स्त्री' और धनञ्जय के मत से पुनर्भू शब्द का अर्थ है व्यभिचारिणी। ये तो एक शब्द के दो जुदे जुदे अर्थ हुए। इससे दुबारा विवाह करने वाली स्त्री व्यभिचारिणी कैसे सिद्ध हुई ? गो शब्द का अर्थ गाय भी है, स्वर्ग भी है, पृथ्वी भी है, इत्यादि और भी अनेक अर्थ हैं। अब कोई कहे कि अमुक आदमी मर कर स्वर्ग गया, तो क्या इस का यह अर्थ होगा कि वह गाय में गया ?

क्योंकि स्वर्ग को गो कहते हैं और गो का अर्थ गाय है। जिस प्रकार गो शब्द के 'गाय' और 'स्वर्ग' ये दोनों अर्थ होने पर भी 'गाय' को स्वर्ग नहीं कह सकते उसी प्रकार पुनर्भू शब्द के 'दुबारा विवाह कराने वाली' और 'व्यभिचारिणी' ये दोनों अर्थ होने पर भी दुबारा विवाह करने वाली को व्यभिचारिणी नहीं कह सकते। दो ग्रन्थकारों की दृष्टि में पुनर्भू शब्द के ये जुदे जुदे अर्थ हैं। इन जुदे जुदे अर्थों को पर्यायवाची समझ जाना अक्ल की खूबी है। हाँ, अगर अमरकोष में लिखा हुआ पुनर्भू शब्द का अर्थ नाममाला में होता और फिर वहाँ उसे व्यभिचारिणी का पर्यायवाची बतलाया होता तो धनञ्जय के मत से पुनर्विवाह व्यभिचार सिद्ध होता। अथवा अमरकोश-कार ने ही अगर पुनर्भू शब्द को व्यभिचारिणी शब्द का पर्याय-वाची लिखा होता तो भी पुनर्विवाह को व्यभिचार कहने की गुँजाइश होती। परन्तु न तो अमरकोशकार पुनर्भू को व्य-भिचारिणी लिखते हैं, न नाममालाकार अमरकोश सरीखा पुनर्भू का अर्थ ही करते हैं। इसलिये पुनर्भू शब्द के विषय में दोनों लेखकों के जुदे जुदे अर्थ ही समझना चाहियें।

दूसरी बात यह है कि 'पुनर्भू' तीन तरह की होती है— १. अक्षतयोनि, २. क्षतयोनि, ३. व्यभिचारिणी (देखो मिताक्षरा शब्द कल्पद्रुम, या हिन्दी शब्दसागर)। हो सकता है कि धनञ्जय कवि ने तीसरे भेद को ध्यान में रख कर पुनर्भू को व्यभिचारिणी का पर्यायवाची लिखा हो। इस प्रकार छोटी छोटी गलतियाँ नाममाला में बहुत पाई जाती हैं। जैसे—धानु-ष्कका अर्थ है धनुष चलाने वाला, परन्तु नाममालामें धानुष्क को भील का पर्यायवाची शब्द लिखा है। लेकिन न तो सभी भील, धानुष्क हो सकते हैं और न सभी धनुष चलाने वाले भील हो सकते है। अगर नाममालाकार के अर्थ के अनुसार

प्रयोग किया जाय तो धनुष चलाने वाले तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि सभी राजा महाराजा भील कहलायेंगे। इसी प्रकार नौकर के पर्यायवाची शब्दों में शस्त्र-जीवी लिखा है। लेकिन सभी नौकर शस्त्रजीवी नहीं होते। शस्त्रजीवी तो सिर्फ सिपाहियों और सैनिकोंको कह सकते हैं परन्तु सैनिक और नौकर का एक ही अर्थ करना नाममाला की ही विचित्रता है। दूसरे कोषों में न तो पुनर्भू का पर्याय शब्द व्यभिचारिणी लिखा है, न धानुष्क का पर्याय शब्द भील लिखा है और न सैनिक का पर्याय शब्द सेवक लिखा है। इस प्रकार की छोटी मोटी भूल के नाममालामें दर्जनों उदाहरण मिल सकते हैं। जो नाममाला की इन त्रुटियों पर ध्यान न देना चाहते हों वे उपर्युक्त छेदक (पैराग्राफ) के कथनानुसार पुनर्भू शब्द के अर्थ करने में अमरकोशकार और नाममालाकार का मतभेद समझें। इसलिये पुनर्विवाहिता को व्यभिचारिणी नहीं कहा जा सकता।

इस के बाद आक्षेपक ने साहसगति विद्याधर तथा 'धर्म संग्रह श्रावकाचार' के कन्या शब्द पर अज्ञानतापूर्ण विवेचन किया है, जिस का विस्तृत उत्तर आक्षेप 'अं' 'अः' और "क" में दिया जाचुका है। इसी तरह दीक्षान्वय क्रिया के पुनर्विवाह का विवेचन आक्षेप नं० 'ख' में किया गया है। आक्षेपक ने बकवाद तो बहुत किया, परन्तु वह इतनी भी बात नहीं समझ पाया कि दीक्षान्वय क्रिया के पुनर्विवाह का उल्लेख क्यों किया गया था। दीक्षान्वय क्रियाके पुनर्विवाह से हम विधवाविवाह सिद्ध नहीं करना चाहते, किन्तु यह बतलाना चाहते हैं कि विवाहिता स्त्री भी, अगर उसका फिर विवाह हो तो (भले ही अपने पति के ही साथ हो) कन्या कहलाती है। अगर कन्या शब्द का अर्थ कुमारी ही किया जायगा तो दीक्षान्वय क्रियामें

दीक्षिता स्त्रीका अपने पतिके साथ पुनर्विवाह कैसे हो सकेगा, क्योंकि आक्षेपक कन्या का ही विवाह मानता है।

आक्षेप (थ)—जैनाचार्यों की सम्पूर्ण कथनी नय विवक्षा पर है। उन्होंने (?) विश्वलोचन में "कन्या कुमारिका नार्यः" लिखा है। यद्यपि यह बिल्कुल सीधा सादा है और इसमें नय प्रमाणके वारों की कुछ आवश्यकता नहीं है फिर भी नीतिकार ने कहा है—'अर्थी दोषं न पश्यति'। जो हो! जाति अपेक्षा (राशि भेदोपर्धाभिदा) नारि (?) के साथ कन्या, कुमारी का प्रयोग किया गया है। हमारे अर्थ को सिद्ध करने वाला अंश 'जगत्' में बड़े (?) बारीक टाइप में छापा गया है। इतना झूल! कुछ खौफ है?

समाधान—कोष के स्त्री वाची कन्या शब्द का जब कुछ भी खण्डन न हो सका तो उपर्युक्त प्रलाप किया गया है। आक्षेपक का कहना है कि कन्या और स्त्री की जाति एक है, इसलिये दोनों को साथ लिख दिया है। ठीक है, मगर भार्या और भगिनी भी तो सजातीय हैं, बाप और बेटा भी तो सजातीय है, तो इन सबके विषय में घुटाला कर देना चाहिये। इस बकवाद से आक्षेपक ने अपने कोष देखने की कला के अज्ञान का पुनः प्रदर्शन किया है। विश्वलोचन, एक अनेकार्थ कोश है। अन्य कोशों के समान उसमें पर्यायवाची शब्दों की लाइन खड़ी नहीं की जाती है। उसमें तो यह बताया जाता है कि एक शब्द के जुदे जुदे कितने अर्थ हैं। कन्या शब्दके कुमारी, नारी, राशिभेद आदि जुदे जुदे अर्थ हैं। अगर आक्षेपक को कोश देखने का ज़रा भी ज्ञान होता तो वह इतनी भूल न करता। टाइप की बात तो बड़ी विचित्र है। लेखक, जिस बात पर पाठकों का ध्यान ज़्यादः आकर्षित करना चाहता है उसे वह अन्डर लाइन कर देता है और प्रेस वाले उसे ब्लाक

[मोटे] टाइप में छापते हैं। इस बात में आक्षेपक को छल खौफ़ आदि अनेक भूत नज़र आ रहे हैं। यह पागलपन नहीं तो क्या है ? बेचारा आक्षेपक ऐसे ऐसे ज़बरदस्त (?) तर्क (!) शस्त्रों से विधवाविवाह का खण्डन करने चला है।

कन्या शब्दके विषय में इतना लिखा जाचुका है कि अब और लिखने की ज़रूरत नहीं है। सागारधर्मामृत के निर्दोषा विशेषण पर जो आक्षेपक ने लिखा है उसका समाधान "ग" में किया गया है।

आक्षेप (द)—शायद सव्यसाची को करुणानुयोग का लक्षण भी नहीं मालूम है। कहीं करुणानुयोग में गृहस्थ-चारित्र की आज्ञाएँ भी देखने में आई है। करुणानुयोग में तो लोकालोक विभाग आदि का वर्णन रहता है। करुणानुयोग और आज्ञा का क्या सम्बन्ध ?

समाधान—इस आक्षेप से मालूम होता है कि आक्षेपक का शास्त्रज्ञान अधूरा और तुच्छ है। पाठशालाओं के छोटे २ बच्चे जितना ज्ञान रखते हैं उतना ज्ञान बेचारे आक्षेपकको मिला है और उसी के बल पर वह अपने को सर्वज्ञ समझता है ! आक्षेपक को हम सलाह देते हैं कि वह मोक्षमार्गप्रकाश के आठवें अधिकार में "करुणानुयोग का प्रयोजन" और "करुणानुयोग के व्याख्यान की पद्धति" नामक विवेचनों का स्वाध्याय कर जाय। वहाँ के कुछ उद्धरण हम यहाँ नीचे देते हैं:—

"बहुरि करुणानुयोग विषै जीवनि की वा कर्मनि की विशेषता वा त्रिलोकादि की रचना निरूपण करि जीवन को धर्मविषैं लगाये हैं। जे जीव धर्मविषैं उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनि का गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनि का कारण अवस्था फल कौन कौन के कैसे कैसे पाइये, इत्यादि

विशेष अर त्रिलोक विषै नरक स्वर्गादिक ठिकाने पहिचानि पाप तें विमुख होय धर्म विषै लागे हैं"।

"बहुरि करणानुयोग विषै छद्मस्थनि की प्रवृत्ति के अनुसार (आचरण) वर्णन नाहीं। केवलज्ञान गम्य (आत्म परिणाम) पदार्थनिका निरूपण है। जैसे—कोई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करें हैं वा व्रतादिक पालैं हैं, परन्तु अंतरंग सम्यक् चारित्र नहीं तातैं उनको मिथ्यादृष्टि† अव्रती कहिये है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिक का वा व्रतादिक का विचार-रहित हैं अन्य कार्यनि विषै प्रवर्तैं हैं वा निद्रादि करि निर्विचार होय रहे हैं, परन्तु उनके सम्यक्तादि शक्ति का सद्भाव है तातैं उन को सम्यक्ती वा व्रती कहिये हैं। बहुरि कोई जीव के कषायनि की प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरङ्ग कषाय-शक्ति थोरी है तो वाकों मन्दकषाई कहिये हैं। अर कोई जीव के कषायनि की प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकै अन्तरङ्ग कषाय-शक्ति घनी है तो वाकों तीव्र कषायी† कहिये है"।

"बहुरि कहीं जाकी व्यक्ति तो किछू न भासै तो भी सूक्ष्म शक्ति के सद्भावतैं ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसे मुनि के अब्रह्म कार्य किछू नाहीं तो भी नवम गुणस्थान पर्यन्त मैथुन संज्ञा कही"।

"बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिक धर्म का निरूपण कर्म प्रकृतीनिका उपशमादिक की अपेक्षा लिये सूक्ष्म शक्ति जैसे पाइये तैसे गुणस्थानादि विषैं निरूपण करै है"।

इन उद्धरणों से पाठक समझ जायँगे कि करणानुयोग में चारित्रादिक का भी निरूपण रहता है। हाँ, करणानुयोगका

† जैसे दक्षिण के शान्तिसागरजी। —सम्पादक

विवेचन भावों के अनुसार है और चरणानुयोग का विवेचन बाह्यक्रिया के अनुसार । चरणानुयोग का मुनि व श्रावक करणानुयोग का मिथ्यादृष्टि हो सकता है । भावों के सुधार के लिये क्रिया है अर्थात् करणानुयोग के धर्म के लिये चरणानुयोग का धर्म है । विवाह से पुरुषकी कामलालसा अन्य स्त्रियों से हट कर एक ही स्त्री में केन्द्रीभूत होजाती है । इस प्रकार इच्छा का केन्द्रीभूत होना कुमारी-विवाह से भी है और विधवा-विवाह से भी है, इसलिये करणानुयोग की अपेक्षा कुमारी-विवाह और विधवाविवाह में कुछ फ़र्क नहीं है। इसलिये कुमारी-विवाह और विधवाविवाहके लिये जुदी जुदी आज्ञाएँ नहीं बनाई जासकतीं न बनाई गई हैं । अगर आक्षेपक करणानुयोग के स्वरूप को समझने की चेष्टा करेगा तो उसे अच्छी तरह यह बात समझ में आजायगी।

आक्षेप (ध)—विधवा के लिये आचार-शास्त्र में स्पष्ट वैधव्य दीक्षा का विधान है।

समाधान—इस आक्षेप का उत्तर नम्बर 'घ' में दिया गया है।

इसके बाद आक्षेपक ने सम्यक्त्व बन्ध का कारण है या नहीं इस विषय पर अनावश्यक विवेचन किया है, जिसका विधवाविवाहसे कोई ताल्लुक़ नहीं है । हाँ, यह बात हम पहिले विस्तार से कह चुके हैं कि सम्यक्त्वी विधवा-विवाह कर सकता है ।

दूसरा प्रश्न

दूसरे प्रश्न के उत्तर में कोई ऐसी बात नहीं है जिसका उत्तर पहिले प्रश्न के उत्तर में न आगया हो । इसलिये यहाँ पर विशेष न लिखा जायगा । पुनर्विवाह करने वाला सम्यक्त्वी

होने पर स्वर्ग जा सकता है या नहीं—इस पर श्रीलालजी तो कहते हैं कि वह सीधा नरक निगोदका पात्र है; जबकि विद्यानन्द लिखते हैं कि उदासीन वृत्ति रखने पर स्वर्ग जा सकता है। इस तरह दोनों आक्षेपक एक दूसरे को काटते हैं। दोनों आक्षेपकोंके आक्षेपों पर निम्न में विचार किया जाता है :—

आक्षेप (क)—पुनर्विवाह करने वाला मोक्ष तो तब जाय, जब वह रॉड पीछा छोड़े। भाव ही मुनिव्रत के नहीं होते। विधवाविवाह से संतान होगी वह रॉड का साँड फिर किसी का लँडरा बनेगा। (श्रीलाल) । विधवाविवाह की संतान मोक्ष की अधिकारिणी नहीं है। (विद्यानन्द)

समाधान— रॉड, साँड, लँडरा आदि शब्दों का उत्तर देना वृथा है। विधवाविवाह की सन्तान मोक्ष जा सकती है। जब व्यभिचारजात सुदृष्टि मोक्ष जा सकता है, तब और की बात ही क्या है ? विधवाविवाह करने के बाद मुनिव्रत धारण कर सकता है और मोक्ष भी जा सकता है। इसमें तो विवाद ही नहीं है।

आक्षेप (ख)—पुनर्विवाह करने वाले असच्छूद्र हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—पहिले प्रश्न के उत्तर में इसका समाधान कर चुके हैं। देखो नं०—(ङ)

आक्षेप (ग)—सागारधर्मामृत में लिखा है कि स्वदार-संतोषी पर-स्त्री का कभी ग्रहण नहीं करता। विधवा का परस्त्रीत्व किस प्रमाण से हटेगा। (विद्यानन्द)

समाधान—इस का समाधान उसी सागारधर्मामृत में है। वहाँ लिखा है कि स्वदार-संतोषी परस्त्री-गमन और वेश्यागमन नहीं करता। यहाँ पर ग्रन्थकार ने कन्या (कुमारी) को भी परस्त्री में शामिल किया है (कन्यातु भाविकर्तृकत्वा-

त्पित्रादि परतन्त्रत्वाद्वासनाथेत्यन्यस्त्री नो न विशिष्यते)। जब कन्या भी परस्त्री है और विवाह द्वारा उस का परस्त्रीत्व दूर कर दिया जाता है तब कन्या के समान विधवा का भी पर स्त्रीत्व दूर कर दिया जावेगा। अथवा जैसे विधुर का परपुरुषत्व दूर होता है उसी प्रकार विधवा का परस्त्रीत्व दूर हो जायगा।

ख़ैर, जब सागारधर्मामृत की बात चल पड़ी है तब हम भी कुछ लिख देना चाहते हैं। विधवाविवाहविरोधी, अपने अज्ञान तिमिर को हटा कर ज़रा देखें।

सागारधर्मामृत में वेश्यासेवी को भी ब्रह्मचर्याणुव्रती माना है, क्योंकि ग्रन्थकार के मत से वेश्या, पर-स्त्री नहीं है। उनका कहना है कि "यस्तु स्वदारवत्साधारण स्त्रियोऽपि व्रतयितुमशक्तः परदारानेव वर्जयति सोऽपि ब्रह्माणुव्रतीष्यते" अर्थात् जो स्वस्त्री के समान वेश्या को भी छोड़ने में असमर्थ है सिर्फ़ परस्त्री का ही त्याग करता है वह भी ब्रह्मचर्याणुव्रती है। इसका मतलब यह है कि वेश्या, परस्त्री नहीं है, क्योंकि उस का कोई स्वामी मौजूद नहीं है। यदि ऐसी वेश्या का सेवन करने वाला अणुव्रती हो सकता है तो विधवासे विवाह करने वाला क्या अणुव्रती नहीं हो सकता? वेश्या, परस्त्री नहीं है, किन्तु वह पूर्णरूप से स्वस्त्री भी तो नहीं है। परन्तु जिस विधवा के साथ विवाह कर लिया जाता है, वह तो पूर्णरूप से स्वस्त्री है। क़ानून से वेश्या स्वस्त्री नहीं कहलाती, जबकि पुनर्विवाहिता स्वस्त्री कहलाती है। इतने पर भी अगर वेश्यासेवी द्वितीय श्रेणी का अणुव्रती कहला सकता है तो विधवाविवाह करने वाला प्रथम श्रेणी का अणुव्रती कहला सकता है।

सागारधर्मामृत में जहाँ इत्वरिकागमन को ब्रह्मचर्याणुव्रत

का अतिचार सिद्ध किया है वहाँ लिखा है कि "चास्य भार्यादिना परेण किञ्चित्काल परिगृहीतां वेश्यां गच्छतो भंगः कथञ्चित्परदारत्वात्तस्याः । लोकेतु परदारत्वारूढेर्न भंगः इति भंगाभंग रूपोतिचारः"। इस वाक्य पर विचार कीजिये।

जहाँ भंग ही भंग है वहाँ अनाचार माना जाता है। जहाँ अभंग ही है वहाँ व्रत माना जाता है। जहाँ भंग और अभंग दोनों है वहाँ अतिचार माना जाता है। ऊपर के वाक्य में वेश्या-सेवन को भंग और अभङ्गरूप मान कर अतिचार सिद्ध किया गया है। यहाँ देखना इतना ही है कि भङ्ग अंश क्या है और अभङ्ग अंश क्या है? और उनमें से कौनसा अंश विधवाविवाह में पाया जाता है? ग्रन्थकार कहते हैं कि वेश्या-सेवन में व्रत का भङ्ग इसलिये होता है कि वह दूसरों के द्वारा ग्रहण की जाती है। मतलब यह कि वेश्या के पास बहुत से पुरुष जाते हैं और सभी पैसा दे देकर उसे अपनी अपनी स्त्री बनाते हैं। इसलिये वह परपरिगृहीता हुई और उसके सेवन से व्रत का भङ्ग हुआ। लेकिन लोक में वह परस्त्री नहीं मानी जाती (क्योंकि पैसा लेने पर भी पूर्णरूप से वह किसी की स्त्री नहीं बनती)। इसलिये उस के सेवन में व्रत का अभङ्ग (रक्षा) हुआ। पाठक देखें कि विधवाविवाह में व्रत का अभङ्ग (रक्षा) ही है, भङ्ग बिलकुल नहीं है। लोक-व्यवहार से, क़ानून की दृष्टि से, तथा परस्त्री सेवन में जो संक्लेश होता है वह संक्लेश न होने से पुनर्विवाहिता स्वस्त्री ही है, इसलिये इस सेवन में वेश्यासेवन की अपेक्षा कई गुणी व्रत-रक्षा (अभङ्गांश) है। साथ ही वेश्या में तो परपरिगृहीतता है किन्तु इस में नाममात्र को भी परपरिगृहीतता नहीं है। जब कोई मनुष्य वेश्या के पास जाता है तब वह उस का पूर्ण अधिकारी नहीं बन सकता, क्योंकि उतना

अधिकार दूसरे पुरुषों को भी प्राप्त है। लेकिन पुनर्विवाहिता के ऊपर दूसरे का बिलकुल अधिकार नहीं रहता। इसलिये वेश्यासेवन में तो अभङ्ग के साथ में भङ्ग है, लेकिन पुनर्विवाहिता में अभङ्ग ही अभङ्ग है। इसलिये वेश्या-सेवन अतिचार है और पुनर्विवाह व्रत है। अनाचार दोनों ही नहीं हैं। सागारधर्मामृत का यह कथन विधवाविवाह का पूर्ण समर्थन करता है।

हम पाठकों से दृढ़ता के साथ कहते हैं कि अकेले सागारधर्मामृत में ही क्या, किसी भी जैनग्रन्थ में—जो कि भगवान महावीर के परम पवित्र और उच्च सिद्धान्तों के अनुसार बना हो—विधवाविवाह का समर्थन ही मिलेगा। किन्तु उसे समझने के लिये विवेक और निःपक्षता की ज़रूरत है।

आक्षेप (घ)—चन्द्राभा अपने निंद्य कृत्य की जीवन भर निन्दा करती रही (विद्यानन्द)। जब उस दुष्ट का साथ छूट गया तब श्रेष्ठमार्ग धारण करने से स्वर्ग गई। वह स्वेच्छा से व्यभिचार न करती थी, किन्तु उस पर मधु बलात्कार करता था। (श्रीलाल)

समाधान—मधु ने चन्द्राभा के साथ बलात्कार किया था या दोनों ही इससे प्रसन्न थे, यह बात प्रद्युम्नचरित के निम्नलिखित श्लोकों से मालूम हो जाती है :—

चाटुभिःसपरिहासवचोभिस्तां तथा समनुनीय स रेमे।
जातमस्य च यथा चरितार्थं यौवनं च मदनो विभवश्च ॥७।६९॥
लोचनान्तक निरीक्षणमन्तःकूजितं च हसितं च तदस्याः।
चुम्बितं च वितुतश्च रतश्च व्याजहार सुरतोत्सवरागम् ॥७।७०॥
गीतनृत्यपरिहास्यकथाभिर्दीर्घिकाजलवनान्त विहारैः।
तत्रतौ रतिसुखार्णव मग्नौ जज्ञतुर्न समयं समतीतम् ॥७।१७॥

मधु ने चन्द्राभा को मीठी मीठी और हंसीली बातों

से खुश करके रमण किया जिससे उसका यौवन मदन और विभव सफल हो गया। चन्द्राभा का देखना, किलोलें करना, हंसना, चूमा लेना, काम क्रीड़ा करना आदि से उनका सुरतोत्सव रँग जमने लगा। गाना, नाचना, हँसी दिल्लगी करना, वापिका के जल में और बनों में विहार करना आदि से वे सुख के समुद्र में मग्न हो गये। उन्हें जाता हुआ समय मालूम भी न पड़ा।

पाठक देखें कि क्या वह बलात्कार था? ख़ैर, मधु की बात आई है तो एक बात और सुनिये। मधु था तो परस्त्री सेवक और उसका यह पाप विख्यात भी हो गया था। फिर भी उसके यहाँ एक दिन विमलवाहन मुनिराज आहार लेने के लिये आये—स्मरण रहे कि इस समयभी मधु चन्द्राभा के साथ रहता था—तो उसने मुनि को दान दिया।

प्रासुकं नृपतिना विधिपूर्वं संयताय वरदानमदायि।
तेन चाल्पफलतः सहसैव चित्रपञ्चक मवापि दुरापम् ॥७॥८५॥

राजा मधु ने मुनिराज के लिये आहार दान दिया, जिससे तुरन्त ही पंच-आश्चर्य हुए। पाठक देखें कि एक परस्त्रीसेवी, मुनि को आहार देता है जिसको आचार्य महाराज वरदान (उत्कृष्टदान) कहते हैं और उससे तुरन्त पंच-आश्चर्य भी होते हैं। इससे न तो मुनि को पाप लगता है न मधु को। पञ्च आश्चर्य इसका प्रमाण है। इतना ही नहीं, बल्कि उस परस्त्रीसेवी का अन्न खाने के बाद ही विमलवाहन मुनिको केवल ज्ञान पैदा हुआ। अगर आजकलके ढोंगी मुनियोंके साथ ऐसी घटना हो जावे तो वे दुरभिमान के पुतले शुद्धि के नाम पर अँतड़ियाँ तक निकाल निकाल कर धोने की चेष्टा करेंगे और बेचारे दाताको तो नरक निगोद के सिवाय दूसरी जगह भेजेंगे ही नहीं। ख़ैर, अब आगे देखिये। राजा मधु और चन्द्राभा

दोनों मरकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुए (इस घटना से नरक के ठेकेदार पंडितोंको बड़ा कष्ट होता होगा।)। इस पर आक्षेपक का कहना है कि 'वह स्वर्ग गई सो श्रेष्ठ-मार्ग के अवलंबन से गई', परन्तु इससे इतना तो मालूम होगया कि परस्त्रीसेवी को श्रेष्ठमार्ग अवलम्बन करने का अधिकार है—व्यभिचारिणी स्त्री भी आर्यिका के व्रत ले सकती है। उसका यह कार्य धर्म-विरुद्ध नहीं है। अन्यथा उसे अच्युत-स्वर्ग में देवत्व कैसे प्राप्त होता?

हमारा यह कहना नहीं है कि विवाह करने से ही कोई स्वर्ग जाता है। स्वर्ग के लिये तो तदनुरूप श्रेष्ठ मार्ग धारण करना पड़ेगा। हमारा कहना तो यही है कि विधवाविवाह कर लेने से श्रेष्ठ मार्ग धारण करने का अधिकार या योग्यता नहीं छिन जाती। आक्षेपकों का कहना तो यह है कि पुनर्विवाह वाला सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता, परन्तु मधु के दृष्टान्त से तो यह सिद्ध होगया कि पुनर्विवाह वाला तो क्या, परस्त्रीसेवी भी सम्यक्त्वी ही नहीं, मुनि तक बन सकता है।

प्रश्न तीसरा

"विधवाविवाह से तिर्यञ्च और नरकगतिका बंध होता है या नहीं"—इस तीसरे प्रश्न के उत्तर में हमने जो कुछ कहा था उस पर आक्षेपकों ने कोई ऐसी बात नहीं कही है, जिसका उत्तर दिया जाय? आक्षेपकों ने बार बार यही दुहाई दी है कि विधवाविवाह धर्म-विरुद्ध है, व्यभिचार है, इसलिये उस से विसंवाद कुटिलता है, उससे नरक तिर्यञ्चगति का बन्ध है। लेकिन इस कथनमें अन्योन्याश्रय दोष है। क्योंकि जब विधवा-विवाह धर्मविरुद्ध सिद्ध हो तब उससे विसंवादादि सिद्ध हों।

जब विसंवादादि सिद्ध हों, तब वह धर्मविरुद्ध सिद्ध हो। ख़ैर नाममात्र के आक्षेपों का उत्तर देना भी हम उचित समझते हैं।

आक्षेप (क)—राजुल आदि की तपश्चर्याओं के दृष्टान्त शास्त्रों में पाये जाते हैं। अगर उन्हें कोई विवाह का उपदेश देता तो उनकी उन्नति में सन्देह था। (विद्यानन्द)

समाधान—राजुल आदि के समान बाल ब्रह्मचारिणी ब्राह्मीदेवी, सुन्दरी देवी, नीलीबाई आदि के दृष्टान्त भी तो शास्त्रों में पाये जाते हैं। इसलिये क्या यह नहीं कहा जासकता कि अगर कुमारीविवाह का उपदेश होता तो ब्राह्मी आदि की तरक्की कैसे होती? अगर कुमारीविवाह के उपदेश रहने पर भी बालब्रह्मचारिणी मिल सकती हैं तो पुनर्विवाह का उपदेश रहने पर भी वैधव्य-दीक्षा लेने वाली और आर्यिका बन कर घोर तपश्चर्या करने वाली क्यों न मिलेंगी?

आक्षेपक को राजुलदेवी की कथाका पूरा पता ही नहीं है। जैनियों का बच्चा बच्चा जानता है कि नेमिनाथके दीक्षा लेने पर राजुल के माता, पिता, सखियाँ तथा अन्य कुटुम्बियों ने उन्हें किसी दूसरे राजकुमार के साथ विवाह कर लेने को खूब ही समझाया था। फिर भी उनने विवाह न किया। आक्षेपक को समझना चाहिये कि राजुल सरीखी दृढ़मनस्विनी देवियाँ किसी के उपदेश अनुपदेश की पर्वाह नहीं करतीं। अगर उन्हें विवाह करना होता तो सब लोग रोकते रहते, फिर भी वे विवाह कर लेतीं। और उन्हें विवाह नहीं करना था तो सब लोग आग्रह करते रहे फिर भी उनने किसी के कहने की पर्वाह नहीं की।

आक्षेप (ख)—पंडित लोग श्रेष्ठमार्ग का उपदेश देते हैं, इसलिये विसंवादी नहीं हैं। जबरन व्यभिचार की शिक्षा देने वाले कुछ अपटुडेट लीडर्स विसंवादी हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—श्रेष्ठ मार्ग का उपदेश देना बुरा नहीं है, परन्तु जो उस श्रेष्ठमार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते उनको उससे उतरती श्रेणी के मार्ग में भी न चलने देना मतके नाम पर मतवाला हो जाना है। क्या विधवाविवाह का उपदेश ब्रह्मचर्यका घातक है? यदि हाँ, तो गृहस्थधर्म का विधान भी मुनिधर्म का घातक कहलायगा। पहिली आदि प्रतिमाओं का विधान भी दूसरी आदि प्रतिमाओं का घातक कहलायगा। यदि गृहस्थधर्म आदि का उपदेश देने वाले, वञ्चक, नास्तिक, पाखंडी, पापोपदेष्टा, पाप पंथ में फँसाने वाले आदि नहीं हैं तो विधवाविवाह के प्रचारक भी वञ्चक आदि नहीं हैं। क्योंकि जिस प्रकार पूर्ण संयम के अभाव में अविरति से हटाने के लिये गृहस्थधर्म (विरताविरत) का उपदेश है उसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचर्य के अभाव में, व्यभिचार से दूर रखने के लिये विधवाविवाह का उपदेश है। जब विधवा-विवाह आगमविरुद्ध ही नहीं है तब उसमें विसंवाद कैसा? और उसका उपदेश भी व्यभिचार की शिक्षा क्यों? विधवाविवाह के उपदेशक ज़बरदस्ती आदि कभी नहीं करते न वे बहिष्कार आदि की धमकियाँ देते हैं। ये सब पाप तो विधवाविवाह-विरोधी पण्डितों के ही सिर पर सवार है।

आक्षेप (ग)—विधवाविवाह में वेश्या-सेवन की तरह आरम्भ भले ही कम हो, परन्तु परिग्रह—ममत्वपरिणाम—कुमारी विवाह से असंख्यात गुणा है। (श्रीलाल)

समाधान—यदि विधवाविवाहमें असंख्यात गुणा ममत्व है तो विधुरविवाह में भी असंख्यातगुणा ममत्व मानना पड़ेगा। क्योंकि जिस प्रकार विधवा पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उसे एक पुरुष से सन्तोष नहीं हुआ, उसी प्रकार विधुर को भी एक स्त्री से सन्तोष नहीं हुआ; इसीलिये वह

भी दोषी कहलाया । वास्तविक बात तो यह है कि न विधुर विवाह में ज्यादः ममत्व परिणाम हैं और न विधवाविवाह में। हाँ, अगर कोई स्त्री एक ही समय में दो पति रक्खे अथवा कोई पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियाँ रखे तो ममत्व परिणाम (राग परिणति) ज़्यादः कहलायगा। अगर किसी ने यह प्रतिज्ञा ली कि मैं २००) रुपये से ज्यादः न रक्खूँगा और अब यदि वह २०१) रक्खे तो उस की रागपरिणति में वृद्धि मानी जायगी। लेकिन अगर वह २००) में से एक रुपया ख़र्च करदे फिर दूसरा एक रुपया पैदा करके २००) करले तो यह नहीं कहा जायगा कि तू दूसरा नया रुपया लाया है, इसलिये तेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो गई और ममत्व परिणाम बढ़ गया। किसी ने एक घोड़ा रखने की प्रतिज्ञा ली, दुर्भाग्य से वह मर गया; इसलिये उसने दूसरा घोड़ा ख़रीदा। यहाँ पर भी वह प्रतिज्ञा-च्युत या अधिक रागी (परिग्रही) नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार एक पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करना, या एक पत्नी के मरजाने पर दूसरा विवाह करना अधिक राग (परिग्रह) नहीं कहा जा सकता। हाँ, पति के या पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना, अवश्य ही अधिक रागी होना है। परन्तु पण्डितों के अँधेर नगरी के न्याया-नुसार पुरुष तो एक साथ हज़ारों स्त्रियों के रखने पर भी अधिक परिग्रही नहीं हैं और स्त्री, एक पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करने से ही, असंख्यात गुणी परिग्रहशालिनी है! कैसा अद्भुत न्याय है?

विधवाविवाह में आरम्भ कम है, परन्तु इसका कारण गुण्डों का तमाशा नहीं है। तमाशे के लिये तो ज़्यादः आरम्भ की ज़रूरत है। विधवाविवाह तमाशा नहीं है इसलिये आरम्भ कम है। असली बात तो यह है कि विधवाविवाह में शामिल

होने वाले पुरुष धर्मज्ञ, दयालु, विवेकी और द्रव्य क्षेत्र काल भाव के ज्ञाता होते हैं; इसलिये उसमें किसी भी तरह के ढोंग और कुरूढ़ियों को स्थान नहीं मिलता। इसीलिये उसमें आरम्भ कम होता है। इस तरह विधवाविवाहमें विवाहरूपता है, अल्प आरम्भ है, अधिक परिग्रह नहीं है, वेश्यासेवन जैसा नहीं है। वेश्यासेवन या परस्त्री-सेवन से विधवाविवाह में क्या फ़रक है, यह बात हम पहिले बतला चुके हैं।

आक्षेप (घ)—जब विधवाविवाह होने लगेंगे, तब बड़े बड़े मोटे मोटे पुरुषत्वहीन पुरुषों की हत्याएँ होंगी और तलाक़ का बाज़ार गर्म होगा। (श्रीलाल)

समाधान—आक्षेपक के कथन से मालूम होता है कि समाजमें बहुत से बड़े बड़े मोटे मोटे पुरुष ऐसे हैं जो नपुन्सक होकर भी स्त्री रखने का शौक रखते हैं। अगर यह बात सच है तो एक ऐसे क़ानून की बड़ी आवश्यक्ता है जिससे ऐसे धृष्ट, बेईमान, निर्लज्ज और धोखेबाज़ नपुंसकों को आजन्म काले पानी की सज़ा दी जा सके, जो नपुन्सक होते हुए भी एक स्त्री के जीवन को बर्बाद कर देते हैं, उसे जीते जी जीवन भर जलाते हैं—उनका अपराध तो मृत्युदण्ड के लायक़ है। विष देना पाप है, परन्तु ऐसे पापियोंको विष देना ऐसा पाप है जो क्षन्तव्य कहा जासकता है। निःसन्देह ऐसे पापी, श्रीमानों में ही होते हैं। क्योंकि पहिले तो ग़रीबों में ऐसे नपुन्सक होते ही नहीं हैं। अगर कोई हुआ भी, तो जब पुरुषत्व होने पर भी ग़रीबों के विवाह में कठिनाई है तो पुरुषत्वहीन होने पर तो विवाह ही कैसे होगा? श्रीमान् लोग तो पैसे के बल पर विवाह करा लेते हैं। अगर वे विवाह न करावें तो लोग योंही कहने लगें कि क्या भैयासाहिब नपुन्सक हैं? इसलिये वे विवाह कराते हैं और अपने घर में दर्ज़ी, सुनार, लोदी

आदि किसी भी जाति का गुन्डा नौकर रख लेते हैं जिससे श्रीमतीजी की कामवासना शान्त होती रहती है, तथा उन के तो नहीं उनके नाम के बच्चे पैदा होते रहते हैं। ऐसी हालत में विष देने की भी क्या ज़रूरत है? अगर श्रीमती जी पतिव्रता निकलीं तो वे विष ही क्यों देंगी?

विधवाविवाह होने पर तलाक़ का रिवाज चलाना न चलाना अपने हाथ में है। शताब्दियों से स्त्री-जाति के ऊपर हम नारकीय अत्याचार करते आरहे हैं। आये दिन कौटुम्बिक अत्याचारों से स्त्रियों की आत्महत्या के समाचार मिलते हैं। उनके ऊपर इतने अत्याचार किये जाते हैं जितने पशुओं पर भी नहीं किये जाते। कसाई के पास जाने वाली गाय तो दस पन्द्रह मिनट कष्ट सहती है और उस समय उसे ज़्यादः नहीं तो चिल्लाने का अधिकार अवश्य रहता है। लेकिन नारीरूपी गायको तो जीवनभर यन्त्रणाएँ सहना पड़ती है और उसे चिल्लाने का भी अधिकार नहीं होता। पुरुष तो रात रातभर रंडी और परस्त्रियोंके यहाँ पड़ा रहे, वर्षों तक अपनी पत्नीका मुंह न देखे, फिरभी अपनी पत्नीको जीवनभर गुलाम रखना चाहे, यह अन्धेर कबतक चलेगा? हमारा कहना तो यही है कि अगर पुरुष, अपने अत्याचारों का त्याग नहीं करता तो तलाक़ प्रथा ज़रूर चलेगी। अगर पुरुष इनका त्याग करता है तो तलाक़ प्रथा न चलेगी।

आक्षेप (ङ)—विधवाविवाह वालों को विधवा का विवाह करके भी शङ्का लगी हुई है तो पहिले से ही विधवा से क्यों नहीं पूछलिया जाता कि तेरी तृप्ति कितने मनुष्यों से होगी?

समाधान—हमने कहा था कि विधवाविवाह कोई पाप नहीं है। हाँ, विधवाविवाह के बाद कोई दूसरा (हिंसा झूँठ चोरी कुशील आदि) पाप करे तो उसे पाप बन्ध होगा। सो

तो कुमारी-विवाहके बाद और मुनिवेष लेने के बाद भी होता है । हमारे इस वक्तव्य के ऊपर आक्षेपक ने ऊपर का (ङ) बेहूदा और अप्रासङ्गिक आक्षेप किया है। ख़ैर, उसपर हमारा कहना है कि स्त्री तो यही चाहती है कि एक ही पति के साथ जीवन व्यतीत हो जाय। परन्तु जब वह मरजाता है तो विवश होकर उसे दूसरे विवाहके लिये तैयार होना पड़ता है। विवाह के समय वह बिचारी क्या बतलाए कि कितने पुरुषों से तृप्ति होगी ? वह तो एक ही पुरुष चाहती है। हाँ, यह प्रश्न तो उन निर्लज्जों से पूछो, जो कि एक तरफ़ तो विधवाविवाह का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ़ जब पहिली स्त्रीको जलाने के लिये मरघट में जाते हैं तो वहीं दूसरे विवाह की चर्चा करने लगते हैं और इसी तरह चार चार पाँच पाँच स्त्रियाँ हड़प करके कन्याकुरंगी केसरी की उपाधि प्राप्त करते हैं । अथवा उन धूर्तों से पूछो जो विधवाविवाहवालों का बहिष्कार करने के लिये तो बड़ा गर्जन तर्जन करते हैं, परन्तु खुद एक स्त्री के रखते हुए भी दूसरी स्त्री का हाथ पकड़ने में लज्जित नहीं होते। दैव की सतायी हुई बिचारी विधवा से क्या पूछते हो ? शराबियों को भी मात करने वाली असभ्यता और कसाइयों को भी मात करने वाली क्रूरता के बल पर बिचारी विधवाओं का हृदय क्यों जलाते हो।

चौथा प्रश्न

चौथे प्रश्न के उत्तर में तो दोनों ही आक्षेपक बहुत बुरी तरह से लड़खड़ाते हैं । इस प्रश्न के उत्तर में हमने कहा था कि परस्त्रीसेवन, वेश्यासेवन और बिना विवाह के पत्नी बना लेना, ये व्यभिचार की तीन श्रेणियाँ हैं। विधवाविवाह किसी में भी शामिल नहीं हो सकता। कुमारी भी परस्त्री है, लेकिन

विवाह से स्वस्त्री बन जाती है । उसी प्रकार विधवा भी विवाह से स्वस्त्री बन जाती है । श्रीलालजी ने व्यभिचार की उपर्युक्त तीन श्रेणियाँ स्वीकार कीं, जब कि विद्यानन्द उस के विरुद्ध हैं । हर बात के उत्तर में दोनों आक्षेपक यही कहते हैं कि "विधवाविवाह धर्मविरुद्ध है, कन्या का ही विवाह होता है आदि" । इन सब बातों का खूब विवेचन हो चुका है ।

आक्षेप (क)—विधवा कभी भी दूसरा पति नहीं करेगी जबतक कामाधिक्य न हो । लोकलज्जा आदि को तिलाञ्जुली दे जो दूसरे पति को करने में नहीं हिचकती, वह उस दूसरे करे हुए पति में सन्तोष रक्खे, असम्भव है । अतः उसका तीसरा चौथा और जार पुरुष भी होना सम्भव है । अतएव वह भी एक प्रकार वेश्यासंगम जैसा हुआ । (श्रीलाल)

समाधान—एक मनुष्य अगर प्रतिदिन आध सेर अनाज खाता है, इस तरह महीने में १५ सेर अनाज खाने पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह बड़ा अगोरी है, पन्द्रह पन्द्रह सेर अनाज खा जाता है । इसी प्रकार एक स्त्री अगर एक समयमें एक पति रखती है और उसके स्वर्गवास होने पर अपना दूसरा विवाह कर लेती हैं तो उसे अनेक पति वाली नहीं कह सकते जिससे उसमें कामाधिक्य माना जावे । एक साथ दो पति रखने में या एक साथ दो पत्नी रखने में कामाधिक्य कहा जा सकता है । इस दृष्टिसे पुरुषों में ही कामाधिक्य पाया जा सकता है ।

दूसरी बात यह कि आक्षेपक कामाधिक्य का अर्थ ही नहीं समझा । मानलीजिये कि एक स्त्री ने यह प्रतिज्ञा ली कि महीने में सिर्फ एक दिन (ऋतु काल के बाद) काम सेवन करूँगी । वह इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रही । ऐसी हालत में अगर वह विधवा हो जावे और फिर विवाह करले और इसके बाद

भी वह पूर्व प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे तो उसमें कामाधिक्य (काम की अधिकता) नहीं कहा जा सकता । और दूसरी स्त्री जो सधवा ही बनी रही है और प्रतिदिन या दो दो चार चार दिन में काम सेवन करती है उसमें कामाधिक्य है। काम की अधिकता कामाधिक्य है, न कि काम के साधनों का परिवर्तन। इसलिये पति या पत्नीके बदल जाने से कामाधिक्य नहीं कहा जा सकता।

लोकलज्जा के नामपर अन्याय या अत्याचार सहना पाप है । धर्मविरुद्ध कार्य में लोकलज्जा से डरना चाहिये, लेकिन आँख मूँदकर लोक की बातों को धर्मसंगत मानना मूर्खता है। जो काम यहाँ लोकलज्जा का कारण है वही अन्यत्र लोकलज्जा का कारण नहीं है। कहीं कहीं तो धर्मानुकूल काम भी लोक-लज्जा के कारण होजाते हैं जैसे, अन्तर्जातीयविवाह, चारसाँक में विवाह, स्त्रियों के द्वारा भगवान की पूजा, प्रक्षाल, शूद्रोंको धर्मोपदेश देना पर्दा न करना, वस्त्राभूषणोंमें परिवर्तन करना, निर्भीकता से बोलना, स्त्रीशिक्षा, अत्याचारी शासक या पंच के विरुद्ध बोलना आदि। किस किस बात में लोकलज्जा का विचार किया जायगा ? ज़माना तो ऐसा गुज़र चुका है कि जैनधर्म धारण करने से ही लोकनिन्दा होती थी, दिगम्बर वेष धारण करने से निन्दा होती थी । तो क्या उसे छोड़ देना चाहिये ? और आजकल भी ऐसे लोग पड़े हुए हैं—जिनमें आक्षेपक का भी समावेश है—जो कि भगवान महावीर की जयन्ती मानना भी निन्दनीय समझते हैं। जब ऐसे धर्मानुकूल कार्यों की निन्दा करने वाले मौजूद हैं तब लोकनिन्दा की कहाँ तक पर्वाह की जाय ? इसके अतिरिक्त धर्मविरुद्ध कार्य भी लोक-प्रशंसा के कारण हो जाते हैं या लोक-निन्दा के कारण नहीं होते। जैसे—सीथियन जाति में प्रत्येक पुरुष का प्रत्येक

स्त्री पर और प्रत्येक स्त्री का प्रत्येक पुरुष पर समान अधिकार रहता है, इससे वहाँ सब पुरुष अपने को भाई २ समझते हैं। चीन में भी फूबीके राजत्वकाल तक ऐसा ही नियम था। इसी तरह आयर्लेंगड की केल्टिक जाति के बारे में भी है। फेलिक्स अरेबिया में और कोरम्बा जाति में भी ऐसा ही नियम था। ऑस्ट्रेलिया में विवाह के पहिले समागम करना बुरा नहीं समझा जाता था। बैबिलोनमें प्रत्येक स्त्रीको विवाह के बाद व्हीनस के मन्दिर में बैठकर किसी अपरिचित आदमी के साथ सहवास करना पड़ता था। जब तक वह ऐसा न करे, तब तक वह घर नहीं जा सकती थी। अर्मीनियन जाति में कुमारी स्त्रियाँ विवाह के पहिले वेश्यावृत्ति तक करती हैं परन्तु इसमें लोकलज्जा नहीं समझी जाती। प्राचीन रोम में विवाह के पहिले यदि कोई लड़की व्यभिचारवृत्ति से पैसा पैदा नहीं कर पाती थी तो उसे बहुत लज्जित होना पड़ता था। चिपचा जाति में अगर किसी पुरुष को यह मालूम हो कि उसकी स्त्री का अभी तक किसी पुरुष से समागम नहीं हुआ तो वह अपने को अभागा समझता था और अपनी स्त्री को इसलिये तुच्छ समझता था कि वह एक भी पुरुष का चित्ताकर्षण न कर सकी। बोटियाक लोगों में अगर किसी कुमारी के पीछे नवयुवकों का दल न चले तो उसके लिये यह बड़े अपमान की बात समझी जाती है। वहाँ पर कुमारावस्था में ही माता बनजाना बड़े सौभाग्य और सन्मान की बात मानी जाती है। इस विषय में इसी प्रकार के अद्भुत नियम चियेब, केमैग्मट, कूकी, किचनूक, रेड इन्डियन, चुकची, एस्किमो, डकोटा, मौंगोलकारेन, डोडा, रेड कारेन, टेहिटियन, आदि जातियों में तथा इसके अतिरिक्त कमेस्क डैल,

अलीटस, उत्तरी एशिया, टहीटी, मैकरोनेशिया, कैण्ड्रोन आदि देश और द्वीपों के निवासियों में भी पाये जाते हैं। इसलिये जो लोग लोकलज्जा और लोकाचार की दुहाई देकर कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करना चाहते हैं वे मूर्ख हैं। हमारे कूपमण्डूक पण्डित बार बार चिल्लाया करते हैं—"क्योंजी, ऐसा भी कहीं होता है?" उन्हें जानना चाहिये कि यह "कहीं" और 'लोक' तुम्हारे घर में ही सीमित नहीं हैं। 'कहीं' का क्षेत्र व 'लोक' बहुत बड़े और विचित्र हैं, और उन्हें जानने के लिये विस्तृत अध्ययन की ज़रूरत है। लोकाचार, क्षेत्र काल की अपेक्षा विविध और परिवर्तनशील है, इसलिये उस को कसौटी बनाना मूर्खता है। हम तो कहते हैं कि अगर विधवा-विवाह धर्मविरुद्ध है तो वह लोकलज्जा का विषय हो या न हो, वह त्यागने योग्य है; और अगर वह धर्मविरुद्ध नहीं है तो लोगों के बकवाद की चिन्ता न करके उसे अपनाना चाहिये। धर्मानुकूल समाजरक्षा और न्याय के लिये अगर लोकलज्जा का सामना करना पड़े तो उसको जीतना परिषह-विजय के समान श्रेयस्कर है।

इसके बाद पुनर्विवाहिताओं के विषय में आक्षेपक ने जो शब्द लिखे हैं वे धृष्टता के सूचक हैं। अगर पुनर्विवाहिता के तीसरा चौथा और जार पुरुष होना भी सम्भव है तो पुनर्विवाहित पुरुष के तीसरी चौथी पाँचवीं तथा अनेक रखैल माशूकाएँ होना सम्भव है। इस तरह पुनर्विवाह करने वाला—आक्षेपकके कथनानुसार—भँडुआ है। आक्षेपक की सम्भावना का कुछ ठिकाना भी है। एक साथ हज़ारों स्त्रियाँ रखने वाला पुरुष तो सन्तोषी माना जाय और पुनर्विवाह करके एक ही पुरुष के साथ रहने वाली स्त्री असन्तुष्ट मानी जाय, यह आक्षेपक की अन्धेर नगरी का न्याय है। पाठक देखें कि

आक्षेपक से जब विधवाविवाह के विरोध में कुछ कहते नहीं बन पड़ा तब उसने यह बेहूदा बकवाद शुरू कर दिया है।

आक्षेप (ख)—विवाह तो कन्या का होता है सो भी कन्यादान पूर्वक। वह विधवा न कन्या है न उसका कोई देने वाला। जिसकी थी वह चल बसा····वह किसी के लिये वसीयत कर गया नहीं, अब देने का अधिकारी कौन? (श्रीलाल)

समाधान—इन आक्षेपों का समाधान प्रथम प्रश्न के उत्तर में कर चुके हैं। देखो, 'ए' 'ऐ' 'ओ' 'घ'। हमारे विवेचन से सिद्ध है कि स्त्री सम्पत्ति नहीं है। जब सम्पत्ति नहीं है तो उसकी वसीयत करने का अधिकार किसे है। कन्यादान भी अनुचित है। यह ज़बर्दस्ती का दान है; अत कुदान है। इसलिये आचार्य सोमदेव ने कुदानों की निन्दा करते हुए लिखा है :—

हिरण्यपशु भूमीनाम्कन्याशय्यान्नवाससाम्।
दानैर्बहुविधैश्चान्यैर्न पाप मुपशाम्यति॥

चाँदी, पशु, ज़मीन, कन्या, शय्या, अन्न, वस्त्र आदि दानों से पाप शान्त नहीं होता। अगर विवाह का लक्षण कन्यादान होता तो वह कुदान में शामिल कभी न किया जाता। यह बात पण्डितों के महामान्य त्रिवर्णाचार में भी पायी जाती है :—

कन्याहस्ति सुवर्ण वाजि कपिला दासी तिलास्यन्दनं।
क्ष्मा गेहे प्रतिबद्धमत्र दशधा दानं दरिद्रेप्सितम्॥
तीर्थान्ते जिनशीतलस्य सुतरामाविश्चकार स्वयं।
लुब्धो वस्तुषु भूतिशर्म तनयो-सौमुण्डशालायनः॥

कन्या, हाथी, सुवर्ण, घोड़ा, गाय, दासी, तिल, रथ, ज़मीन, ये दरिद्रों को इष्ट दश प्रकार के दान हैं, जिन का,

शीतलनाथ के तीर्थ के अन्त में भूतिशर्मा के पुत्र मुण्डशालायन ने आविष्कार किया था।

इससे सिद्ध है कि कन्यादान, जैनधर्म में नहीं है। शीतलनाथ स्वामी के पहिले कन्यादान का रिवाज ही नहीं था। तो क्या उसके पहिले विवाह न होता था? तब तो ऋषभदेव, भरत, जयकुमार सुलोचना आदि का विवाह न मानना पड़ेगा। कन्यादान को विवाह मानने से गान्धर्व आदि विवाह, विवाह न कहलायँगे। श्रीकृष्ण का रुक्मणी के साथ जो विवाह हुआ था उसमें कन्यादान कहाँ था? क्या वह विवाह नाजायज़ था? स्मरण रहे कि इसी विवाह के फलस्वरूप, रुक्मणी जी के गर्भ से तद्भवमोक्षगामी प्रद्युम्न का जन्म हुआ था। ख़ैर, इस विषय में हम पहिले बहुत कुछ लिख चुके हैं। मुख्य बात यह है कि कन्यादान विवाह का लक्षण नहीं है।

आक्षेप (ग)—पुरुष भोक्ता है, स्त्री भोज्य है। पुरुष जब अनेक भोज्यों के भोगने की शक्ति रखता है तब क्यों नहीं एक भोज्य के अभाव में दूसरे भोज्य को भोगे। (श्रीलाल)

समाधान—पुरुष भोक्ता है परन्तु वह भोज्य भी है। इसी प्रकार स्त्री भोज्य है परन्तु वह भोक्री (भोगने वाली) भी है। इसलिये भोज्य-स्त्री के अभाव में, पुरुष को अधिकार है कि वह दूसरी भोज्य-स्त्री प्राप्त करे; इसी प्रकार भोज्य-पुरुष के अभाव में स्त्री को अधिकार है कि वह दूसरा भोज्य-पुरुष प्राप्त करे। शक्ति का विचार किया जाय तो पुरुष में जितनी स्त्रियों को भोगने की ताक़त है उससे भी ज़्यादः पुरुषों को भोगने की ताक़त स्त्री में है।

जहां भोज्यभोजक सम्बन्ध होता है वहाँ यह बात देखी जाती है कि भोग से भोजक को सुखानुभव होता है और भोज्य को नहीं होता। स्त्री-पुरुष के भोग में तो दोनों को

सुखानुभव होता है; इसलिये उनमें से किसी एक को भोज्य या किसी एक को भोजक नहीं कह सकते। असल में दोनों ही भोजक हैं। अगर स्त्री को भोजक न माना जायगा तो स्त्रियों के लिये कुशील नाम का पाप ही नहीं रहेगा; क्योंकि कुशील करने वाला (भोजक) तो पुरुष है न कि स्त्री। इस लिये स्त्री का क्या दोष है ? हिंसा करने वाला हिंसक कहलाता है न कि जिसकी हिंसा की जाय वह। चोरी करने वाला चोर कहलाता है न कि जिसकी चोरी की जाय वह। इसलिये जो व्यभिचार करने वाला होगा वही व्यभिचारी कहलायगा न कि जिसके साथ व्यभिचार किया जाय वह। इसलिये स्त्रियाँ सैकड़ों पुरुषों के साथ सम्भोग करने पर भी व्यभिचार पाप करने वाली न कहलायँगी, क्योंकि वे भोजक (भोग करने वालीं) नहीं हैं। अगर स्त्रियों को व्यभिचार का दोष लगता है तो कहना चाहिये कि उनमें भी भोक्तृत्व है।

भोक्तृत्व के लक्षण पर विचार करने से भी स्त्रियों में भोक्तृत्व मानना पड़ता है। दूसरी वस्तु की ताक़त को ग्रहण करने की शक्ति को भोक्तृत्व कहते हैं (पर द्रव्यवीर्यादान-सामर्थ्यं भोक्तृत्वलक्षणम्—राजवार्तिक)। स्त्री पुरुष के भोगमें हमें विचारना चाहिये कि कौन किसकी ताकत ग्रहण करता है और कौन अपनी शक्तियों को ज़्यादः बर्बाद करता है। विचार करते ही हमें मालूम होगा कि भोक्तृत्व स्त्री में है न कि पुरुष में, क्योंकि सम्भोग कार्य में पुरुष की ज़्यादः शक्ति नष्ट होती है। दूसरी बात यह है कि स्त्रीके रजको पुरुष ग्रहण नहीं कर पाता बल्कि पुरुष के वीर्य को स्त्री ग्रहण करलेती है। राजवार्तिक के लक्षणानुसार, ग्रहण करना ही भोक्तृत्व है।

स्त्रीको जूँठी थालीके समान बतलाकर भोज्य ठहराना अनुचित है, क्योंकि पुरुष को भी गन्ने के समान ठहरा कर

भोज्य सिद्ध कर दिया जायगा। यदि एक पुरुष के संगम से स्त्री जूँठी हो जाती है तो एक स्त्रीके संगम से पुरुष भी जूँठा हो जाता है। इसलिये अगर जूँठी स्त्री को सेवन करने वाला चांडाल या कुत्ता है तो जूँठे पुरुषको सेवन करने वाली चांडालिन या कुतिया है। अगर दूसरी बात ठीक नहीं तो पहिली बात भी ठीक नहीं है।

भोज्य भोजकके सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह उपभोग का प्रकरण है। भोजन वगैरह तो भोग हैं और वस्त्र वगैरह उपभोग हैं। स्त्री के लिये पुरुष उपभोग सामग्री है और पुरुष के लिये स्त्री उपभोग सामग्री है। इसलिये यहाँ जूँठी थाली आदि भोग सामग्री का उदाहरण ठीक नहीं हो सकता है। उपभोग में यह नियम नहीं है कि एक सामग्री का एक ही व्यक्ति उपभोग करे। जिस बिस्तर पर एक आदमी सो लेता है उसी पर अगर दूसरा लेटजावे तो वह जूँठा खानेवाला या उसके समान न कहलायेगा। एक साबुन की बट्टी का चार आदमी उपयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार कुर्सी, टेबुल, पलंग, चौकी, मोटरगाड़ी, रेलगाड़ी, चटाई, साइकिल, मोती, माणिक आदि वस्तुओंका अनेक आदमी उपयोग कर सकते हैं, लेकिन इससे कोई जूँठन खाने वाले के समान नहीं कहलाता। इसलिये अगर थोड़ी देर के लिये स्त्री को भोज्य (उपभोग-सामग्री) मान लिया जाय तो भी उसके पुनर्विवाह को घृणित नहीं कहा जा सकता।

जिस समय माता, अपने बच्चे की सेवा करती है, उस समय माता बच्चे की उपभोग सामग्री है; इसलिये क्या माता अब दूसरे बच्चे की सेवा नहीं कर सकती? क्या वह जूँठी हो गई? एक नौकर अपने मालिक के हाथ पैर आदि दबाता (संवाहन करता) है तो क्या वह जूँठा होगया? भोग सामग्री

और उपभोग सामग्रीमें बड़ा फ़र्क है, यह सदा स्मरण रखना चाहिये। उपभोग सामग्री दूसरे के लिये घृणित नहीं होजाती। हाँ, अगर एकाध चीज़ थोड़ी बहुत घृणित कहलावे भी, तो यह नियम कदापि नहीं बनाया जा सकता कि उपभोग सामग्री हो जाने से घृणित हो ही गई। क्योंकि ऐसा मानने से कुर्सी चौकी आदि का दुबारा उपयोग करना भी घृणित कहलाने लगेगा।

आक्षेप (घ)—ऐसा कहीं न देखा सुना होगा कि एक स्त्री के अनेक पुरुष हों, जिस प्रकार एक पुरुष के अनेक स्त्रियाँ होती हैं; यह सिद्धान्त कितना अटल है? (श्रीलाल)

समाधान—आक्षेपक के सिद्धान्त की अटलता का तिब्बत में—जिसे प्राचीनकालमें त्रिविष्टप या स्वर्ग कहते थे—दिवाला निकला हुआ है। वहाँ पर एक स्त्रीके एक साथ चार चार छः छः पति होते हैं। और अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों में एक पुरुष को एक से अधिक पत्नी रखने का अधिकार नहीं है। प्राकृतिक बात यह है कि एक पुरुष और एक स्त्री का दाम्पत्य सम्बन्ध हो। हाँ, अगर शक्तिका दुरुपयोग करना हो तो एक पुरुष अनेक स्त्री रख सकता है और एक स्त्री अनेक पुरुष रख सकती है। अटल नियम कुछ भी नहीं है। अगर थोड़ी देर के लिये आक्षेपक की बात मानली जाय कि एक स्त्री एक ही पुरुष रख सकती है तोभी उसके पुनर्विवाह का अधिकार छिन नहीं जाता। एक आभूषण एक समय में एक ही आदमी के काम में आ सकता है। क्या इसीलिये फिर कोई उसका उपयोग नहीं कर सकता? स्त्री तो रत्न है। रत्न एक समय में एक ही आदमी की शोभा बढ़ाता है, लेकिन समयान्तर में दूसरे के काम में भी आता है।

आक्षेप (ङ)—एक पुरुष अनेक स्त्रियों से एक वर्ष में

अनेक सन्तान उत्पन्न कर सकता है परन्तु एक स्त्री, अनेक पुरुषों को भी रखकर एक सन्तान से अधिक पैदा नहीं कर सकती। (श्रीलाल)

समाधान—यदि ऐसा है तो स्त्रियोंका पुनर्विवाह तुरंत चालू कर देना चाहिये, भले ही पुरुषों का पुनर्विवाह रोक दिया जाय। क्योंकि अनेक सन्तान पैदा करने के लिये तो एक पुरुष ही काफ़ी है; इसलिये बहुत पुरुष कुमार या विधुर रहें तो सन्तान संख्या की दृष्टि से कोई हानि नहीं है, किन्तु स्त्री तो एक भी कुमारी या विधवा न रह जाना चाहिये; क्योंकि उनके वैधव्य या कौमार्य से संख्या घट जायगी। यह कहाँ का न्याय है कि जिसकी हमें अधिक ज़रूरत है वह तो व्यर्थ पड़ी रहे और जिसकी थोड़ी ज़रूरत है उसकी ज़्यादः क़दर की जाय। प्रकृति ने जो स्त्री पुरुष के बीच में अन्तर उत्पन्न कर दिया है, उससे मालूम होता है कि विधुरविवाह की अपेक्षा विधवा-विवाह कई गुणा आवश्यक है।

आक्षेप (च)—सब विषय समान नहीं हुआ करते। एक ही सम्भोग क्रिया से स्त्री को गर्भधारण आदि अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं और पुरुष को कुछ नहीं। अब कहाँ गये समान बताने वाले न्यायतीर्थ जी? (श्रीलाल)

समाधान—स्त्री पुरुषों में शारीरिक समानता नहीं है इसलिये उनके अधिकारों में भी विषमता होना चाहिये और उस विषमता में पुरुषों को अधिक अधिकार मिलना चाहिये यह नहीं कहा जासकता। अगर कोई कहे कि स्त्री पुरुष में शारीरिक विषमता है, इसलिये पुरुष के मरने पर स्त्री को भोजन करने का भी अधिकार नहीं है (उसे भूखों रह कर मर जाना ही उचित है), तो क्या यह उचित है? प्रकृतिविरुद्ध विषमता पैदा करने का हमें क्या अधिकार है? हाँ, अगर

प्रकृति ने कोई ऐसी विषमता पैदा की होती जिससे पुनर्विवाह का निषेध मालूम होता तो कहने को गुंजाइश थी। अगर विधवा हो जाने से स्त्री का मासिकधर्म रुक जाता, स्त्रीत्व के चिन्ह नष्ट हो जाते या बिगड़ जाते तो कुछ अवश्य ही स्त्री के पुनर्विवाह का अधिकार छीना जाता।

आक्षेपक ने जो विषमता बतलाई है उससे तो स्त्रियों को ही विशेष अधिकार मिलने चाहियें, क्योंकि कर्तव्य और अधिकार ये एक ही सिक्के के दो पृष्ठ (बाजू) हैं। इसलिये न्यायोचित बात यह है कि जहाँ कर्तव्य अधिक है वहाँ अधिकार भी अधिक हैं सन्तानोत्पत्ति में स्त्रियों का जितना कर्तव्य है उसका शतांश कर्तव्य भी पुरुषों का नहीं है; इसलिये स्त्रियों को ज़्यादः अधिकार मिलना चाहियें।

स्त्री सम्पत्ति है, इसके खण्डन के लिये देखो प्रश्न पहिला समाधान 'ओ'। स्त्री यावज्जीव प्रतिज्ञा करती है और पुरुष भी करता है। खुलासे के लिये देखो प्रश्न पहिला समाधान ए (१-ए)।

अमरकोष और धनञ्जयनाममाला के पुनर्भू शब्द का खुलासा '१—त' में देखिये। विवाह आठ प्रकार के हैं; उनमें विधवाविवाह नहीं है—इसका उत्तर आक्षेप "१—ज" में देखिये।

आक्षेप (छ)—व्यभिचार की तीन श्रेणियाँ ठीक नहीं हैं। रखैल के साथ सम्भोग करना परस्त्रीसेवन की कोटि का ही पाप है। रखैल और विधवाविवाह में कुछ भेद नहीं है। परस्त्रीसेवन को व्यभिचार मान लेने से विधवाविवाह भी पाप सिद्ध हो गया; इसलिये सव्यसाची निग्रहस्थान पात्र है।

(विद्यानन्द)

समाधान—व्यभिचार की तीन श्रेणियाँ श्रीलाल जी ने

मानी हैं; विद्यानन्द नहीं मानते हैं। और, परस्त्रीसेवन में वेश्या-सेवन से अधिक पाप है जबकि रखैल स्त्री के साथ सम्भोग वेश्यासेवन से छोटा पाप है। इसका कारण संक्लेश की न्यूनता है। परस्त्रीसेवन में वेश्यासेवन की अपेक्षा इसलिये ज़्यादः संक्लेशता है कि उसमें परस्त्री के कुटुम्बियों का तथा पड़ोसियों का भय रहता है, और ज़्यादः मायाचार करना पड़ता है। वेश्यासेवन में ये दोनों बातें कम रहती हैं। रखैल स्त्री में ये दोनों बातें बिलकुल नहीं रहती हैं। व्यभिचार को उन दोनों श्रेणियों से यह श्रेणी बहुत छोटी है, यह बात बिलकुल स्पष्ट है। इस तीसरी श्रेणीको व्यभिचार इसलिये कहा है कि ऐसी स्त्री से पैदा होने वाली सन्तान अपनी सन्तान नहीं कहलाती; और इनका परस्पर सम्बन्ध समाज की अनुमति के बिना ही होता है और समाज की अनुमति के बिना ही छूट जाता है। विधवाविवाह में ये दोष भी नहीं पाये जाते। इससे सन्तान अपनी कहलाती है। बिना समाज की सम्मति के न यह सम्बन्ध होता है न टूटता है। व्यभिचार का इससे कोई ताल्लुक नहीं। विवाह के समय जैसे अन्य कुमारियाँ कन्या (दुलहिन) कहलाती हैं, उसी प्रकार विवाह के समय विधवा भी कन्या कहलाती है। व्यभिचार की तीन श्रेणियाँ और विधवाविवाह का उनसे बाहर रहना इतना स्पष्ट है कि विशेष कहने की ज़रूरत नहीं है। जब विधवाविवाह परस्त्रीसेवन नहीं है तब परस्त्रीसेवनको व्यभिचार मान लेनेसे व्यभिचार कैसे सिद्ध होगया? आक्षेपक, यहाँ पर अनिग्रह में निग्रह का प्रयोग करके स्वयं निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान में गिर गया है।

आक्षेप (ज)—जहाँ कन्या और वर का विवाहविधि के पूर्व सम्बन्ध हो जाता है वह गांधर्व-विवाह है। इसमें कन्या के साथ प्रवीचार होता है; इसलिये व्यभिचार श्रेणी से हलका

है। कुन्ती का पाण्डु के साथ पहिले गान्धर्वविवाह हो चुका था। बाद में उस अधर्मदोष को दूर करने के लिये नहीं, किन्तु अपनी कुमारी कन्या का विवाह करना माता पिता का धर्म है इस नीति वाक्य को पालने के लिये उनने अपनी कुमारी कन्या कुन्ती का विवाह किया। गान्धर्वविवाह के अधर्म के दोष को दूर करने के लिये उन्हें कुन्ती का विवाह नहीं करना पड़ा, किन्तु पाण्डु को पात्र चुनना पड़ा। इसलिये विवाह व्यभिचार-दोष को दूर करने का असमर्थ साधन नहीं है। (विद्यानन्द)

समाधान—आक्षेपक ने यहाँ पर बड़ा विचित्र प्रलाप किया है। हमने कहा था कि विवाह के पहिले अगर किसी कुमारी से सम्भोग किया जायगा तो व्यभिचार कहलायगा; अगर विवाह के बाद सम्भोग किया जायगा तो व्यभिचार न कहा जायगा। मतलब यह कि विवाह से व्यभिचार दोष दूर होता है। इस वक्तव्य का उत्तर आक्षेपक से न बना। इसलिये उनने कहा कि विवाह के पहिले किसी कुमारी के साथ संभोग करना व्यभिचार ही नहीं है। तब तो पंडित लोग जिस चाहे कुमारी लड़की के साथ संभोग कर सकते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह व्यभिचार नहीं है। तारीफ़ यह है कि व्यभिचार न मानने पर भी इसे अधर्म मानते हैं। व्यभिचार तो यह है नहीं, बाक़ी चार पापों में यह शामिल किया नहीं जा सकता, इसलिये अब कौनसा अधर्म कहलाया? आक्षेपक ने गान्धर्वविवाह के लक्षण में भूल की है। प्रवीचार करना विवाह का अन्यतम फल है, न कि विवाह। गांधर्व विवाह में वर कन्या एक दूसरे से प्रतिज्ञाबद्ध होजाते है, तब प्रवीचार होता है। विवाह के पहिले पाण्डु और कुन्ती का जो संसर्ग हुआ था वह व्यभिचार ही था। अगर वह व्यभिचार न होता तो उस संसर्ग से पैदा होने

वाली सन्तान (कर्ण) छिपाकर नदी में न बहादी जाती। हम कह चुके हैं कि व्यभिचार से जो सन्तान पैदा होती है वह नाजायज़ कहलाती है और विवाह से जो सन्तान पैदा होती है वह जायज़ कहलाती है। कर्ण नाजायज़ सन्तान थे, इसलिये वे बहादिये गये। और इसीलिये पाण्डु कुन्ती का प्रथम संयोग व्यभिचार कहलाया न कि गान्धर्व विवाह। अब हमें देखना चाहिये कि वह कौनसा कारण है जिससे कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न कर्ण तो नाजायज़ कहलाये, किन्तु युद्धिष्ठिर आदि जायज़ कहलाये, अर्थात् जिस संसर्ग से कर्ण पैदा हुए वह व्यभिचार कहलाया और जिससे युद्धिष्ठिर पैदा हुए वह व्यभिचार न कहलाया। कारण स्पष्ट है कि प्रथम संसर्ग के समय विवाह नहीं हुआ था और द्वितीय संसर्ग के समय विवाह हो गया था। इससे बिलकुल स्पष्ट है कि विवाह से व्यभिचार का दोष दूर होता है। इसलिये विवाह के पहिले किसी विधवा से संसर्ग करना व्यभिचार है और विवाह के बाद (विधवाविवाह होने पर) संसर्ग करना व्यभिचार नहीं है।

आक्षेपक के कथनानुसार अगर पाण्डु कुन्ती का प्रथम संयोग गान्धर्व-विवाह था तो कर्ण नाजायज़ संतान क्यों माने गये? उनको छिपाने की कोशिश क्यों की गई? कृष्णजी ने भी रुक्मणी का हरण करके रैवतक पर्वत के ऊपर उनके साथ गान्धर्व-विवाह किया था, परन्तु रुक्मणीपुत्र प्रद्युम्न तो नहीं छिपाये गये। दूसरी बात यह है कि जब पाण्डु कुन्ती का गांधर्व-विवाह हो गया था तो उनके माता पिता ने कुन्ती का दूसरी बार विवाह (पुनर्विवाह) क्यों किया? क्या विवाहिता का विवाह करना भी माता पिता का धर्म है? और क्या तब भी वह कन्या बनी रही? यदि हाँ, तो विधवा का विवाह करना

माता पिता या समाज का धर्म क्यों नहीं ? और वह कन्या भी क्यों नहीं ?

आक्षेपक के होशहवास तो यहाँ तक बिगड़े हुए हैं कि एक बच्चा पैदा कर देने के बाद भी कुन्ती को कुमारी कन्या बतला रहे हैं। जब एक बच्चे की मां कुमारी कन्या हो सकती है तब बेचारी विधवा, कुमारी कन्या नहीं, सिर्फ़ 'कन्या' क्यों नहीं हो सकती ? कन्या के साथ कुमारी विशेषण लगा कर आक्षेपक ने यह स्वीकार कर लिया है कि कन्या कुमारी भी होती है और अकुमारी (विधवा) भी होती है।

आक्षेप (झ)—कुमारी जैसे स्वस्त्री बनायी जा सकती है उस प्रकार विधवा नहीं बनायी जा सकती। क्योंकि कुमारी परस्त्री नहीं है। आप कुमारी को परस्त्री कहने का साहस क्यों कर गये ? वह तो स्त्री भी नहीं है। भावी स्त्री है।

समाधान—कुमारी, स्त्री तो अवश्य है, क्योंकि वह पुरुष अथवा नपुंसक नहीं है। परन्तु आक्षेपक ने स्त्री शब्द का भार्या अर्थ किया है। इसलिये उसी पर विचार किया जाता है। आचार शास्त्रों में ब्रह्मचर्याणुव्रती को कुमारी के साथ सम्भोग करने की मनाई है; इसलिये कुमारी परस्त्री है। अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों को परस्त्री कहते हैं; इसलिये भी कुमारी परस्त्री है। कुन्ती को अपनी संतान छिपाना पड़ी; इसलिये भी सिद्ध होता है कि कुमारी परस्त्री है। राजनियमों के अनुसार भी कुमारी परस्त्री है। कल्पना कर लो, अगर पाण्डु अणुव्रती होते तो विवाह के बिना कुन्ती के साथ सम्भोग करने से उनका अणुव्रत क्या नष्ट न होता ? जैनशास्त्रों के अनुसार उनका अणुव्रत अवश्य नष्ट होता। लेकिन विवाह करके अगर सम्भोग करते तो उनका अणुव्रत नष्ट नहीं होता। क्या इससे यह नहीं मालूम होता कि विवाह के द्वारा परस्त्री,

स्वस्त्री बन गई है। खैर ! अगर आक्षेपक की यही मंशा है कि कुमारी को परस्त्री न माना जाय, क्योंकि वर्तमान में वह किसी की स्त्री नहीं है-भावी स्त्री है, तो इसमें भी हमें कोई ऐतराज़ नहीं है। परन्तु ऐसी हालत में विधवा भी परस्त्री न कहलायगी, क्योंकि वर्तमान में वह किसी की स्त्री नहीं है। जिसकी थी वह तो मर गया, इसलिये वह तो भूत-स्त्री है। इसलिये कुमारी के समान वह स्वस्त्री बनाई जा सकती है।

आक्षेप (ञ)—विवाह किसी अपेक्षा से व्यभिचार को दूर करने का कारण कहा भी जा सकता है। किन्तु कहा जा सकता है विवाह ही। विधवा सम्बन्ध की विवाह संज्ञा ही नहीं।

समाधान—शास्त्रों में जो विवाह का लक्षण किया गया है वह विधवाविवाह में जाता है। यह बात हम प्रथम प्रश्न में कन्या-शब्द का अर्थ करते समय लिख आये हैं। लोक में भी विधवाविवाह शब्द का प्रचार है, इसलिये संज्ञा का प्रश्न निरर्थक है। इस आक्षेप को लिखने की ज़रूरत ही नहीं थी, परन्तु यह इसलिये लिख दिया है कि आक्षेपक ने यहाँ पर विवाह को व्यभिचार दूर करने का कारण मान लिया है। इसलिये विधवाविवाह व्यभिचार नहीं है।

आक्षेप (ट)—विवाह तो व्यभिचार की ओर रुजू कराने वाला है, अन्यथा भगवान् महावीर को क्या सूझी थी जो उन्हों ने ब्रह्मचर्यव्रत पाला ?

समाधान—विवाह तो व्यभिचार की ओर रुजू कराने वाला नहीं है, अन्यथा श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरों को क्या सूझी थी जो विवाह कराया ? सभी तीर्थंकरों को क्या सूझी थी जो ब्रह्मचर्याणुव्रत का उपदेश दिया ? आचार्यों को क्या सूझी थी कि पुराणों को विवाह की घटनाओं से भर दिया और

विवाहविधि के विषय में प्रकरण के प्रकरण लिखे? विवाह पूर्णब्रह्मचर्य का विरोधी है, ब्रह्मचर्याणुव्रत का बाधक या व्यभिचार का साधक नहीं है। अगर यह बात मानली जाय तो अकेला विधवाविवाह ही क्या, कुमारी विवाह भी व्यभिचार कहलायगा। अगर व्यभिचार होने पर भी कुमारीविवाह विधेय है तो विधवाविवाह भी विधेय है।

आक्षेप (ठ)—पुरुष इसी भव से मोक्ष जा सकते हैं, पुरुषों के उच्च संस्थान संहनन होते हैं, उनके शिश्न मूछें होती हैं। स्त्रियों में ये बातें नहीं हैं; इसलिये उन्हें पुरुषों के समान पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है। लक्षण, आकृति, स्वभाव, शक्ति की अपेक्षा भी महान् अन्तर है।

समाधान—आजकल के पुरुष न तो मोक्ष जा सकते हैं, न स्त्रियों से अधिक संहनन रख सकते हैं। इसलिये इन्हें भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिये। संस्थान तो स्त्रियों के भी पुरुषों के समान सभी हो सकते हैं (देखो गोम्मटसार कर्मकांड)। पुरुषों के शिश्न मूछें होती हैं और स्त्रियों के योनि और स्तन होते हैं। आक्षेपक के समान कोई यह भी कह सकता है कि पुरुषों को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है, क्योंकि उनके योनि और स्तन नहीं होते। लिङ्ग और मूँछें ऐसी चीज़ नहीं हैं जिनके ऊपर पुनर्विवाह की छाप खुदी रहती हो। देवों के और तीर्थंकरादिकों के मूँछें नहीं होतीं, फिर भी उनके अधिकार नहीं छिनते। दाढ़ी के बाल और मूँछें तो सौन्दर्य की विघातक और उतने स्थान की मलीनता का कारण है। उनसे विशेषाधिकार मिलने का क्या सम्बन्ध? ख़ैर, विषमता को लेकर स्त्रियों के अधिकार नहीं छीने जा सकते। संसार का प्रत्येक व्यक्ति विषम है। सूक्ष्म विषमता को अलग करदें तो स्थूल विषमता भी बहुत है। परन्तु विषमता

के कारण अधिकार छीनना अन्याय है । अगर यह नियम बनाया जाय कि जो इतना विद्वान हो उसे इतने विवाह करने का अधिकार है और जो विद्वान नहीं है उसे विवाह का अधिकार नहीं है, तो क्या यह ठीक होगा ? दूसरी बात यह है कि जिस विषय का अधिकार है उसी विषय की समता, विषमता, योग्यता, अयोग्यता का विचार करना चाहिये । किसी के पैर में चोट आगई है तो बहुत से बहुत वह जूता नहीं पहिनेगा, परन्तु वह कपड़े भी न पहिने, यह कहाँ का न्याय है ? किसी भी अधिकार के विषय में प्रायः चार बातों का विचार किया जाता है । योग्यता, आवश्यक्ता, सामाजिक लाभ, स्वार्थत्याग । पुनर्विवाह के विषय में भी हम इन्हीं बातों पर विचार करेंगे । स्त्रियों में पुनर्विवाह की योग्यता तो है ही, क्योंकि पुनर्विवाह से भी वे सन्तान पैदा कर सकती हैं । संभोगशक्ति, रजोधर्म तथा गार्हस्थ्यजीवन के अन्य कर्तव्य करने की क्षमता उन में पाई जाती है । आवश्यक्ता भी है, क्योंकि विधवा हो जाने पर भी उनकी कामवासना जाग्रत रहती है, जिसके सीमित करने के लिये विवाह करने की ज़रूरत है । इसी तरह सन्तान की इच्छा भी रहती है, जिसके लिये विवाह करना चाहिये । वैधव्यजीवन बहुत पराश्रित, आर्थिक कष्ट, शोक, चिन्ता और संक्लेशमय तथा निराधिकार होता है, इसलिये भी उन को पुनर्विवाह की आवश्यक्ता है । कुछ इनीगिनी विधवाओं को छोड़ कर बाक़ी विधवाओं का जीवन समाज के लिये भार सरीखा होता है । वैधव्यजीवन के भीतर क़ैद हो जाने से बहुत से पुरुषों को स्त्रियाँ नहीं मिलतीं । इसलिये उनका जीवन दुःखमय या पतित हो जाता है । समाज की संख्या घटती है । विधवाविवाह से ये समस्याएं अधिक अंशों में हल हो जाती हैं: इसलिये विधवाविवाह से सामाजिक लाभ

हैं। स्वार्थत्याग तो ज़्यादः है ही, क्योंकि स्त्रियाँ सेवाधर्म का पालन ज़्यादह करती हैं। सन्तानोत्पत्ति में स्त्रियों को जितना कष्ट सहना पड़ता है, उसका शतांश भी पुरुषों को नहीं सहना पड़ता। विवाह होते ही स्त्री अपने पितृगृह का त्याग कर देती है। मतलब यह कि चाहे विवाह के विषय में विचार कीजिये, चाहे विवाहके फल के बारे में विचार कीजिये, स्त्रियों का स्वार्थत्याग पुरुषों के स्वार्थत्याग से कई गुणा ज़्यादह है। स्त्रियों में पुरुषों से विषमता ज़रूर है, परन्तु वह विषमता उन बातों में कोई त्रुटि उपस्थित नहीं करती, जो कि पुनर्विवाह के अधिकार के लिये आवश्यक हैं; बल्कि वह विषमता अधिकार बढ़ाने वाली ही है। क्योंकि पुरुष विधुर हो जाने पर तो किसी तरह गार्हस्थ्यजीवन गौरव के साथ बिता सकता है, साथ ही आर्थिक स्वातन्त्र्य और सुविधा भी रख सकता है; परन्तु विधवा का तो सामाजिक स्थान गिर जाता है और उसका आर्थिक कष्ट बढ़ जाता है। इसलिये विधुरविवाह की अपेक्षा विधवाविवाह की ज्यादः आवश्यक्ता है। और स्वार्थत्याग में स्त्रियाँ ज्यादः हैं ही, इसलिये विधुरों को विवाह का अधिकार भले ही न हो, परन्तु विधवाओं को तो अवश्य होना चाहिये।

आक्षेप (ङ)—स्त्री पर्याय निंद्य है। इसलिये उच्चपर्याय (पुरुषपर्याय) प्राप्त करने के लिये त्याग करना चाहिये।

(विद्यानन्द)

समाधान—स्त्रीपर्याय निंद्य है, अथवा अत्याचारी पुरुष समाज ने सहस्राब्दियों के अत्याचारों से उसे निंद्य बनाडाला है, इसकी मीमांसा हम विचारशील पाठकों पर छोड़ देते हैं। अगर आक्षेपक की बात मानली जाय तो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को पुनर्विवाह की सुविधा ज़्यादः मिलना चाहिये, क्यों-

कि पुरुषों को अपनी उच्चता के लिहाज़ से ज़्यादः त्याग करना चाहिये। मुनिपद श्रेष्ठ है और श्रावकपद नीचा। अब कोई कहे कि मुनि उच्च हैं, इसलिये उन्हें रण्डीबाज़ी करने का भी अधिकार है! गृहस्थ को तो मुनिपद प्राप्त करना है, इसलिये उसे रण्डीबाज़ी न करना चाहिये? क्या उच्चता के नामपर मुनियों को ऐसे अधिकार देना उचित है? यदि नहीं, तो पुरुषों को भी उच्चता के नाम पर पुनर्विवाह का अधिकार न रखना चाहिये। अथवा स्त्रियों का अधिकार न छीनना चाहिये।

इसी युक्ति के बल पर हम यह भी कह सकते हैं कि स्त्रियाँ अधिक निर्बल और निःसहाय हैं; इसलिये स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा ज़्यादः सुविधा देना चाहिये।

आक्षेप (ढ)—विषय-भोगों की स्वच्छन्दता हरएक को देदी जाय तो वैराग्यका कारण बहुत ही कम मिला करे। छोटी अवस्था की विधवा का दर्शन होना कर्मवैचित्र्य का सूचक है, इससे उदासीनता आती है। (विद्यानन्द)

समाधान—पुरुष तो एक साथ या क्रम से हज़ारों स्त्रियाँ रक्खे, फिर भी वैराग्य के कारणों में कमी न हो और स्त्री के पुनर्विवाह मात्र से वैराग्य के कारण बहुत कम रह जायँ—यह तो विचित्र बात है! क्या संसार में दुःखों की कमी है जो वैराग्य उत्पन्न करने के लिये नये दुःख बनाये जाते हैं? क्या अनेक तरह की बीमारियाँ देखकर वैराग्य नहीं हो सकता? फिर चिकित्सा का प्रबन्ध क्यों किया जाता है? यदि आज जैनियों के वैराग्य के लिये संसार को दुःखी बनाने की ज़रूरत है तो जैनधर्ममें और आसुरीलीलामें क्या अंतर रह जायगा? यह तो रौद्रध्यान की प्रकर्षता है। जिनको वैराग्य पैदा करना है उन्हें, संसार वैराग्य के कारणों से भरा पड़ा है। मेघों और बिजलियों की क्षणभंगुरता, दिन रात मृत्यु का दौरा, अनेक

तरह की बीमारियाँ आदि वैराग्य की ओर झुकाने वाली हैं। पुराणों में ऐसे कितने मनुष्यों का उल्लेख है जिन्हें बालविधवाओं को देखकर वैराग्य पैदा हुआ हो? कर्मवैचित्र्य की सूचना पुण्य और पाप दोनों से मिलती है। विधवा के देखने से जहाँ पाप कर्म की विचित्रता मालूम होती है वहाँ विधवाविवाह से पुण्य कर्म की विचित्रता मालूम होती है। जिस प्रकार एक स्त्री मर जाने पर पुण्योदयसे दूसरी स्त्री मिल जाती है, उसी प्रकार एक पुरुष के मर जाने पर भी पुण्योदय से दूसरा पुरुष मिल जाता है। वैराग्य के लिये बालविधवाओं की स्थिति चाहना ऐसी निर्दयता, क्रूरता और रुद्रता है कि जिसकी उपमा नहीं मिलती।

पाँचवाँ प्रश्न

इस प्रश्न का सम्बन्ध विधवाविवाह से बहुत कम है। इस विषयमें हमने लिखा था कि वेश्या और कुशीला विधवा के मायाचार में अन्तर है। कुशीला विधवा का मायाचार बहुत है। हाँ, व्यक्तिगत दृष्टि से किसी के अन्तरङ्ग भावों का निर्णय होना कठिन है। इस विषयमें आक्षेपकों को कोई ज्यादः ऐतराज़ नहीं है, परन्तु 'विरोध तो करना ही चाहिये' यह सोच कर उनने विरोध किया है।

आक्षेप (क)—वेश्या, माया-मूर्ति है। व्यभिचार ही उसका कार्य है। वह अहर्निशि माया-मूर्ति है। किन्तु यह नियम नहीं है कि कुशीला जन्मभर कुशीला रहे। (विद्यानन्द)

समाधान—यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि पाप किसका ज्यादः है? प्रश्न मायाचार का है। जो कार्य जितना छुपाकर किया जाता है उसमें उतना ही ज्यादः मायाचार है। वेश्या इस कार्य को छुपाकर नहीं करती, जबकि कुशीला को छुपाकर

करना पड़ता है। व्यभिचार के लिये नहीं, किन्तु पैसों के लिये वेश्या कृत्रिम प्रेम करके किसी आदमी के साथ मायाचार करती है जबकि कुशीला विधवा अपने पाप को सुरक्षित रखने के लिये सारी समाज के साथ मायाचार करती है। अपने व्यभिचार को छुपाने के लिये ऐसी नारियाँ मुनियों की सेवा सुश्रूषा में आगे आगे रहती हैं, देव पूजा आदि के कार्यों में अग्रेसर बनती हैं, तप आदि के ढोंग करती हैं जिससे लोग उन्हें धर्मात्माबाई कहें और उनका पापाचार भूले रहें। स्मरण रहे कि व्याघ्र से गोमुख-व्याघ्र भयानक होता है। वेश्या अगर व्याघ्री है तो कुशीला गोमुखव्याघ्री है। सम्भव है कोई स्त्री जन्मभर कुशीला न रहे। परन्तु यह भी सम्भव है कि कोई स्त्री जन्मभर वेश्या न रहे। जब तक कोई कुशीला या वेश्या है, तभी तक उसकी आत्मा का विचार करना है।

आक्षेप (ख)—प्रश्न में मायाचार की दृष्टि से अन्तर पूछा गया है अतः पाप-कार्य की दृष्टि से अन्तर बतलाना प्रश्न के बाहर का विषय है। (विद्यानन्द)

समाधान—हमने कहा था कि, "जब हम वेश्यासेवन और परस्त्रीसेवन के पाप में अन्तर बतला सकते हैं तब दोनों के मायाचार में भी अन्तर बतला सकते हैं।" इसमें अन्य पाप से मायाचार का पता नहीं लगाया है, परन्तु अन्य पाप के समान मायाचार को भी अपने ज्ञान का विषय बतलाया है। यह भूल तो आक्षेपक ने स्वयं की है। उनने लिखा है—"व्यभिचार एक पाप-पथ है। उसपर जो जितना आगे बढ़गया वह उतना ही अधिक सर्व दृष्टि से पापी एवं महामायावी है।" पाप के अन्तर से माया का अन्तर दिखला कर आक्षेपक स्वयं विषय के बाहर गये हैं।

आक्षेप (ग)—सव्यसाची ने आन्तरिक भावों का निर्णय

कठिन लिखा है; फिर भी मायाचार की तुलना की है। ये परस्पर विरुद्ध बातें कैसी? मन का हाल तो मनःपर्ययज्ञानी ही जान सकते हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—मनःपर्ययज्ञानी को मन की बातका प्रत्यक्ष होता, है लेकिन परोक्ष ज्ञप्ति तो श्रुतज्ञान से भी हो सकती है। वचन, आचरण तथा मुखाकृति आदि से मानसिक भावों का अनुमान किया जाता है। आक्षेपकने स्वयं लिखा है कि "किसका मायाचार किस समय अधिक है सो भगवान ही जानें, परन्तु वेश्या से अधिक कभी कुशीला का मायाचार युक्ति प्रमाण से सिद्ध नहीं होता।" क्या यह वाक्य लिखते समय आक्षेपक को मनःपर्ययज्ञान था? यदि नहीं तो भगवान के ज्ञान की बात उनने कैसे जानली?

आक्षेप (घ)—कुशीला, पतिव्रता के वेष में पाप नहीं करती। जहाँ पति पातिव्रत होगा वहाँ तो कुशीलभाव हो ही नहीं सकते। (विद्यानन्द)

समाधान—आक्षेपक पतिव्रता के वेष और पातिव्रत के अन्तर को भी न समझ सके। वेश्याएँ भी सीता सावित्री आदि का पार्ट लेकर पतिव्रता का वेष धारण करती हैं, परन्तु क्या वे इसी से पतिव्रता होती हैं? क्या कुशीलाओं का कोई जुदा वेष होता है?

आक्षेप (ङ)—कुशीला हज़ार गुप्त पाप करती है, परन्तु जिन-मार्ग को दूषित नहीं करती। इसलिये विवाहित विधवा और वेश्या से कुशीला की कक्षा ऊँची कही गई है।
(विद्यानन्द)

समाधान—विवाहितविधवा और वेश्यासे कुशीला की कक्षा किस शास्त्र में ऊँची कही गई है? ज़रा प्रमाण दीजिये!

हमने विधवाविवाह को धार्मिक सिद्ध कर दिया है, इसलिये विवाहित विधवा जिनमार्ग दूषित करने वाली नहीं कही जा सकती। अथवा जब तक विधवाविवाह पर यह वादविवाद चल रहा है तब तक विधवाविवाह की धार्मिकता या अधार्मिकता की दुहाई न देना चाहिये। नहीं तो अन्योन्याश्रय आदि दोष आयँगे। इस आक्षेप से यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि पण्डिताऊ जैनधर्म के अनुसार कोई स्त्री रण्डी बनजाय या हज़ार गुप्त पाप करे तो जिनमार्ग दूषित नहीं होता और छिनाल बनजाय तो भी नहीं होता, नवजात बच्चों के प्राण लेले तो भी नहीं होता, लेकिन अगर वह किसी एक पुरुष के साथ दाम्पत्य बन्धन स्थापित करले तो बेचारे पंडिताऊ जैनधर्म की मौत ही समझिये। वास्तव में ऐसे जैनधर्म को व्यभिचार पन्थ समझना चाहिये।

आक्षेप (च)—इन्द्रियतृप्ति करने में ही प्रसन्नता मानते हो तो आप शौकसे चार्वाक हो जाओ! (विद्यानन्द)

समाधान—रण्डी बनाने के लिये, हज़ारों गुप्त पाप करने के लिये धर्मधुरन्धर कहलाकर लौंडेबाज़ी करने के लिये, भ्रूणहत्या करने के लिये अगर कोई चार्वाक नहीं बनता तो विधवाविवाह के लिये चार्वाक बनने की क्या ज़रूरत है? यदि जैनधर्म में इन्द्रियतृप्ति को बिलकुल स्थान नहीं है तो अविरत सम्यग्दृष्टि के लिये "णो इन्द्रियेसु विरदो" अर्थात् 'अविरत सम्यग्दृष्टि जीव पाँच इन्द्रिय के विषयों से विरक्त नहीं होता' क्यों लिखा है? जैनी लोग कोमल बिस्तर पर क्यों सोते हैं? स्वादिष्ट भोजन क्यों करते हैं? लड़कों बच्चों के होने पर भी विवाह क्यों कराते हैं? क्या यह इन्द्रिय विषय नहीं हैं? अथवा क्या ऐसे सब जैनी चार्वाक हैं? पुरुष जब दूसरा विवाह करता है तो क्या वैराग्य की भावना के

लिये स्त्री लाता है ? या पण्डितों के वेद त्रिवर्णाचार के अनुसार योनि-पूजा के लिये लाता है ? क्या यह इन्द्रिय-विषय नहीं है ? क्या विधवाविवाह में ही अनन्त इन्द्रिय-विषय एकत्रित हो गये हैं ? क्या तुम्हारा जैनधर्म यही कहता है कि पुरुष तो मनमाने भोग भोगें, मनमाने विवाह करें, उससे वीतरागता को धक्का नहीं लगता, परन्तु विधवाविवाह से लग जाता है ? इसी को क्या "छोड़ो छोड़ो की धुन" कहते हैं ?

आक्षेप (छ)—कुशीला अपने पापों को मार्ग-प्रेम के कारण छिपाती है । ....वह भ्रूणहत्या करती है फिर भी विवाहित विधवा या वेश्या से अच्छी है । (विद्यानन्द)

समाधान—अगर मार्ग-प्रेम होता तो गुप्त पाप क्यों करती ? भ्रूणहत्याएँ क्यों करती ? क्या इनसे जिनमार्ग दूषित नहीं होता ? या ये भी जैनमार्ग के अङ्ग हैं ? चोर छिपाकर धन हरण करता है, यह भी मार्गप्रेम कहलाया । अनेक धर्मधुरन्धर लौंडेबाज़ी करते हैं, परस्त्री सेवन करते हैं. यह भी मार्गप्रेम का ही फल समझना चाहिये ! मतलब यह कि जो मनुष्य समाज को जितना अधिक धोखा देकर पाप कर लेता है वह उतना ही अधिक मार्गप्रेमी कहलाया ! वाहरे मार्ग ! और वाहरे मार्गप्रेमी !

व्यभिचारिणी स्त्री वेश्या क्यों नहीं बनजाती ? इसका उत्तर यह है कि वेश्याजीवन सिर्फ़ व्यभिचार से ही नहीं आजाता । उसके लिये अनेक कलाएँ चाहिये, जिनका कि दुरुपयोग किया जा सके अथवा जिन कलाओं के जाल में अनेक शिकार फँसाए जासकें । कुछ दुःसाहस भी चाहिये, कुछ निमित्त भी चाहिये, कुछ स्वावलम्बन और निर्भयता भी चाहिये । जिनमें ये बातें होती हैं वे वेश्याएँ बन ही जाती हैं । आज जो भारतवर्ष में लाखों वेश्यायें पाई जाती हैं

उनमें से आधी से अधिक वेश्याएँ ऐसी हैं जो एक समय कुल-वधुएँ थीं। वे समाज के धर्मढौंगी नरपिशाचों के धक्के खाकर वेश्याएँ बनी हैं। व्यभिचारिणी स्त्री पुनर्विवाह क्यों नहीं करती? इसका कारण यह है कि पुनर्विवाह तो वह तब करे जब उसमें ब्रह्मचर्याणुव्रत की भावना हो, जैनधर्म का सच्चा ज्ञान हो। जो स्त्री नये नये यार चाहती हो, उसे पुनर्विवाह कैसे अच्छा लग सकता है? अथवा वह तैयार भी हो तो जिन धर्मात्माओं ने उसे अपना शिकार बना रक्खा है वे कब उसका पिंड छोड़ेंगे? पुनर्विवाह से तो शिकार ही निकल जायगा। स्त्रियों की अज्ञानता और पुरुषों का स्वार्थ ही स्त्रियों को विधवाविवाह के पवित्र मार्ग से हटाकर व्यभिचार की तरफ़ ले जाता है।

छठा प्रश्न

कुशीला भ्रूणहत्याकारिणी को और कृतकारित अनुमोदना से उसके सहयोगियों को पाप-बन्ध होता है या नहीं? इसके उत्तर में हमने कहा था कि होता है और जो लोग विधवाविवाह का विरोध करके ऐसी परिस्थति पैदा करते हैं उन को भी पाप का बन्ध होता है। इसके उत्तर में आक्षेपकों ने जो यह लिखा है कि "विधवाविवाह व्यभिचार है, उसमें अकलंकदेव प्रणीत लक्षण नहीं जाता, आदि" इसका उत्तर प्रथम प्रश्न के उत्तर में अच्छी तरह दिया जा चुका है।

आक्षेप (क)—विधवाविवाह के विरोधी व्यभिचार को पाप कहते हैं तो पाप करने वाले चाहे स्त्रियाँ हों चाहे पुरुष, वह सब ही पापी हैं। (श्रीलाल)

समाधान—ऐसी हालत में जब विधवाविवाह पाप है तो विधुरविवाह भी होना चाहिये या दोनों ही न होना

चाहिये। क्योंकि जब पाप है तो 'सर्व ही पापी हैं'। व्यभिचार में तो आप सर्व ही पापी बतलावें और पुनर्विवाह में विधुरविवाह को धर्म बतलावें और विधवाविवाह को पाप, यह कहाँ का न्याय है ?

आक्षेप (ख)—चोर चोरी करता है। गवर्नमेन्ट दण्ड देती है इसमें गवर्नमेन्ट का क्या अपराध ? (श्रीलाल)

समाधान—गवर्नमेन्ट ने अर्थोपार्जन का अधिकार नहीं छीना है। व्यापार से और नौकरी या भिक्षा से मनुष्य अपना पेट भर सकता है। गवर्नमेन्ट अगर अर्थोपार्जन के रास्ते रोकदे तो अवश्य ही उसे चोरी का पाप लगेगा। विधवाविवाह के विरोधी, विधवा को पति प्राप्त करने के मार्ग के विरोधी हैं, इसलिये उन्हें व्यभिचार या भ्रूणहत्या का पाप अवश्य लगता है। यदि स्थितिपालक लोग बतलावें कि अमुक उपाय से विधवा पति प्राप्त करले और वह उपाय सुसाध्य हो, फिर भी कोई व्यभिचार करे तो अवश्य स्थितिपालकों को वह पाप न लगेगा। परन्तु जब ये लोग किसी भी तरह से पति प्राप्त नहीं करने देते तो इससे सिद्ध है कि ये लोग भ्रूणहत्या और व्यभिचार के पोषक हैं। अगर कोई सरकार व्यापार न करने दे, नौकरी न करने दे, भीख न माँगने दे और फिर कहे कि—"तुम चोरी भी मत करो, उपवास करके ही जीवन निकाल दो" तो प्रत्येक आदमी कहेगा कि यह सरकार बदमाश है, इसकी मन्शा चोरी कराने की है। ऐसी ही बदमाश सरकार के समान आजकल की पंचायतें तथा स्थितिपालक लोग हैं। इसमें इतनी बात और विचारना चाहिये कि अगर कोई सरकार चोरी की अपेक्षा व्यापारादि करने में ज़्यादा दण्ड दे तो उस सरकार की बदमाशी बिल्कुल नंगी हो जायगी। उसी प्रकार स्थितिपालकों की चालाकी भी नंगी हो जाती है,

क्योंकि वे लोग कहते हैं कि व्यभिचार भले ही करलो, परन्तु विधवाविवाह मत करो ! विधवाविवाह करने के पहिले पंडित उदयलाल जी से एक बुज़ुर्ग पण्डित जी ने कहा था कि–"तुम उसे स्त्री के रूप में यों ही रखलो, उसके साथ विवाह क्यों करते हो?" आप के सहयोगी विद्यानन्द जी ने पाँचवें प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि– 'यद्यपि कुशीला भ्रूणहत्या करती है किन्तु फिर भी जिनमार्ग से भय खाती है। उसमें स्वाभिमान लज्जा है। इसलिये वह विधवाविवाहित या वेश्या से अच्छी है"—क्या अब भी स्थितिपालक लोग व्यभिचारपोषकता का कलंक छिपा सकते हैं? उस सरकार को क्या कहा जाय जो चोरों को प्रशंसा करती है और व्यापारियों की निन्दा?

आक्षेप (ग)—यदि किसी को स्त्री नहीं मिलती तो क्या दया धर्म के नाम पर दूसरे दे दें? विधवाविवाह के प्रचार हो जाने पर भी सभी पुरुषों को स्त्रियाँ न मिल जायँगी तो क्या स्त्री वाले लोग एक एक घण्टे को स्त्रियाँ दे देंगे।

समाधान—सुधारकों के धर्मानुसार स्त्रियों का देना लेना नहीं बन सकता, क्योंकि स्त्रियाँ सम्पत्ति नहीं हैं। हाँ, स्थितिपालक पण्डितों के मतानुसार घंटे दो घंटे या महीनों वर्षों के लिये स्त्री दी जासकती है, क्योंकि उनके मतानुसार वह देने लेने की वस्तु है, भोज्य है, सम्पत्ति है। पुरुष की इच्छा के अनुसार नाचने के सिवाय उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है। ख़ैर, लोगों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे स्त्रियाँ दे दें, परन्तु उनका इतना कर्तव्य अवश्य है कि कोई पुरुष स्त्री प्राप्त करता हो या कोई स्त्री पति प्राप्त करती हो तो उनके मार्ग में रोड़े न अटकावें। यह कहना कि "विधवा अपने भाग्योदय से पतिहीन हुई; कोई क्या करे" मूर्खता और पक्षपात है। भाग्यो-

दय से तो विधुर भी बनता है और सभी विपत्तियाँ आती हैं। उनका इलाज किया जाता है। विधुर का दूसरा विवाह किया जाता है। इसी तरह विधवा का भी करना चाहिये। इसका उत्तर हम पहिले भी विस्तार से दे चुके हैं। "पुरुषत्वहीन पुरुषों की सिकारें होंगी" इस आक्षेप के समाधान के लिये देखो "३ घ"।

आक्षेप (घ)—विधवाविवाह के विरोधियों को पापियों की कक्षा में किस आगम युक्तितर्क के आधार पर आपने घसीट लिया ? (विद्यानन्द)

समाधान—इसका उत्तर ऊपर के (ख) नम्बर में है। उससे सिद्ध है कि कारित और अनुमोदन के सम्बन्ध से विधवाविवाह के विरोधी भ्रूणहत्यारे हैं।

आक्षेप (ङ)—पण्डित लोग आगम का अवर्णवाद नहीं करना चाहते। वे तो कहते हैं कि परलोक की भी सुध लिया करो।

समाधान—जिन पण्डितों के विषय में यह बात कही जारही है, वे बेचारे अज्ञानतमसावृत जीव आगम को समझते ही नहीं। वे तो रूढ़ियों को ही धर्म या आगम समझते हैं और रूढ़ियों के भंडाफोड़ को आगम का अवर्णवाद। परलोक की सुध दिलाने की बात तो विचित्र है। जो लोग खुद तो चार २ पाँच पाँच औरतें हज़म कर जाते हैं और बालविधवाओं से कहते हैं कि परलोक की सुध लिया करो! उन धूर्तों से क्या कहा जाय ? जो खुद तो ठूँस ठूँस कर खाते हों और दूसरों से कहते हों कि "भगवान् का नाम लो ? इस शरीर के पोषने में क्या रक्खा है ? यह तो पुद्गल है"—उनकी धृष्टता प्रदर्शनी की वस्तु है। वे इस धृष्टता से उपदेश नहीं देते, आदेश करते हैं, ज़बर्दस्ती दूसरों को भूखों रखते हैं। क्या यह परलोक की

सुध स्त्रियों के लिये ही है ? मर्दों के लिये नहीं ? फिर जैनधर्म ज़बर्दस्ती त्याग कराने की बात कहाँ कहता है ? उसका तो कहना है कि "ज्यों ज्यों उपशमत कषाया। त्यों त्यों तिन त्याग बताया।"

आक्षेप (च)—पण्डितों के कठोरतापूर्ण शासन और पक्षपातपूर्ण उपदेशों के कारण स्त्रियाँ भ्रूणहत्या नहीं करतीं, परन्तु जो उनके उपदेश से निकल भागती हैं वे व्यभिचारिणियाँ ही यह पाप करती हैं।

समाधान—इस बात के निर्णय के लिये एक दृष्टान्त रखना चाहिये। चार विधवाएँ हैं। दो सुधारक और दो स्थितिपालक। एक सुधारक और एक स्थितिपालक विधवा तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पाल सकती है और बाकी की एक एक नहीं पाल सकतीं। पहिली से सुधारक कहते हैं कि "बहिन! अगर तुम पवित्रता के साथ ब्रह्मचर्य पालन करने को तैयार हो तो एक ब्रह्मचारीके समान हम आपकी पूजा करते हैं और अगर तुम नहीं पाल सकती हो तो आज्ञा दो कि हम आपके विवाह का आयोजन कर दें।" वह बहिन कहती है कि अभी मैं ब्रह्मचर्य पालन कर सकती हूँ, इसलिए अपना पुनर्विवाह नहीं चाहती। जब मैं अपने मनको वश में न रख सकूँगी तो पुनर्विवाह का विचार प्रगट कर दूँगी। दूसरी बहिनसे यही बात कही जाती है तो वह विवाह के लिये तैयार हो जाती है और उसका विवाह कर दिया जाता है। उसके विवाह को पण्डित लोग ठीक नहीं समझते—सुधारक ठीक समझते हैं। परन्तु जब वह बहिन विवाह करा लेती है तो उसे संतान को छिपाने की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती जिससे वह भ्रूणहत्या करे। इस तरह सुधारक पक्ष में तो दोनों तरह की विधवाओं का पूर्ण निर्वाह है। अब स्थितिपालकों में देखिये! उनका कहना

है कि 'विधवा-विवाह घोर पाप है, क्योंकि स्त्रियाँ जूँठी थाली के समान हैं। अब वे किसी के काम की नहीं'। दोनों बहिनों को यह अपमान चुपचाप सहलेना पड़ता है, जिस में पहिली बहिन तो ब्रह्मचर्य से जीवन बिताती है और दूसरी वैधव्यका ढोंग करती है। उसकी वासनाएँ प्रगट न हो जावें, इसलिये वह विधवा-विवाह वालोंको गालियाँ देती है। इसलिये पंडित लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। परन्तु वह बेचारी अपनी वासनाओं को दमन नहीं कर पाती, इसलिये व्यभिचारके मार्ग में चली जाती है। फिर गर्भ रह जाता है। अब वह सोचती है कि विधवाविवाहवालों को मैंने आज तक गालियाँ दी हैं, इसलिये जब मेरे बच्चा पैदा होगा तो कोई क्या कहेगा? इसलिये वह गर्भ गिराने की चेष्टा करती है। गिर जाता है तो ठीक, नहीं गिरता है तो वह पैदा होते ही बच्चेको मारडालती है। वह बीच बीच में पुनर्विवाह का विचार करती है, लेकिन पण्डितों का यह वक्तव्य याद आजाता है कि "विधवाविवाह से तो जिनमार्ग दूषित होता है लेकिन व्यभिचार या भ्रूणहत्या से जिनमार्ग दूषित नहीं होता", इसलिये वह व्यभिचार और भ्रूणहत्या की तरफ़ झुक जाती है। सुधारक बहिन को तो ऐसा मौक़ा ही नहीं है जिससे उसे अपना दाम्पत्य छिपाना पड़े और भ्रूणहत्या करना पड़े। उसके अगर सन्तान पैदा होगी तो वह हर्ष मनायगी जबकि स्थितिपालक बहिन हाय २ करेगी और उसकी हत्या करने की तरकीब सोचेगी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि हत्यारा मार्ग कौन है और दया का मार्ग कौन है?

हम यहाँ एक ही बात रखते हैं कि कोई स्त्री विधवा-विवाह और गुप्त व्यभिचार में से किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहती है। सुधारक लोग विधवाविवाह की सलाह

देते हैं। अब पण्डितों से हम पूछते हैं कि उनकी क्या सलाह है? अगर वे गुप्त व्यभिचार की सलाह देते हैं, तो उसके भीतर भ्रूणहत्या की सलाह भी शामिल है क्योंकि भ्रूणहत्या न करने पर व्यभिचार गुप्त न रह सकेगा। इसलिये इस सलाह से पण्डितों को भ्रूणहत्या का दोषी होना ही पड़ेगा। अगर वे विधवाविवाह की सलाह देते हैं तो भ्रूणहत्या के पाप से बच सकते हैं। यदि वे इस पाप से बचना चाहते हैं तो उन्हें विधवाविवाह को व्यभिचार और भ्रूणहत्या से भी बुरा कहने की बात प्रायश्चित्त के साथ वापिस लेना चाहिये। ऐसी हालत में ये पण्डित सुधारकों से जुदे नहीं रह सकते। क्योंकि सुधारक लोग भी व्यभिचार आदि की अपेक्षा विधवाविवाह को अच्छा समझते हैं, पूर्णब्रह्मचर्य से विधवाविवाह को अच्छा नहीं समझते। इस वक्तव्य से सिद्ध हो जाता है कि पण्डित लोग भ्रूणहत्या आदि का प्रचार खुल्लमखुल्ला भले ही न करते हों परन्तु उनके सिद्धान्त ही ऐसे हैं कि जिससे भ्रूणहत्या का समर्थन तो होता ही है साथ ही उसको उत्तेजन भी मिलता है। और यह पाप विधवाविवाह करने वाली बहिनों को नहीं करना पड़ता, बल्कि उन्हें करना पड़ता है जो पण्डितों के कथनानुसार विधवाविवाह को गालियाँ देती हैं या उससे दूर रहती हैं।

आक्षेप (छ)—आप लिखते हैं कि स्थितिपालकों में सभी भ्रूणहत्या पसन्द नहीं करते परन्तु फ़ीसदी नब्बे करते हैं। इस परस्पर विरोधी वाक्य का क्या मतलब?

समाधान—इस आक्षेप में आक्षेपक ने अपने भाषा-विज्ञान का ही नहीं, भाषाज्ञान का भी दिवाला निकाल दिया है। पूर्णांश के निषेध में अल्पांश की विधि भी इन्हें परस्पर विरुद्ध मालूम होती है। अगर कोई कहे कि मेरे पास पूरा रुपया तो नहीं है, चौदह आने हैं। तो भी आक्षेपक यहां

कहेंगे कि जब तुमने रुपये का निषेध कर दिया तो चौदह आने की विधि क्यों करते हो ? क्योंकि चौदह आने तो रुपये के भीतर ही हैं। यह विरोध नहीं, विरोध प्रदर्शन की बीमारी है। 'एक के होने पर दो नहीं हैं' (एकस्मिन्नेऽपि द्वयं नास्ति) के समान 'दो न होने पर एक है' की बात भी परस्पर विरुद्ध नहीं है। खेद है कि आक्षेपक को इतना सा भी भाषाज्ञान नहीं है।

आक्षेप (ज)—मछली की अपेक्षा बकरा ग्राह्य है या बकरा की अपेक्षा मछली ? सिद्धान्तदृष्टि से दोनों ही नहीं।

(विद्यानन्द)

समाधान—विधवाविवाह और भ्रूणहत्या इन दोनों में समानता नहीं है किन्तु तरतमता है। और ऐसी तरतमता है जैसी कि विधुरविवाह और नरहत्या में है। इसलिये मछली और बकरे का दृष्टान्त विषम है। जहाँ तरतमता नहीं वहाँ चुनाव नहीं हो सकता। त्रसहिंसा और स्थावर हिंसा, अणुव्रत और महाव्रत के समान व्यभिचार और विधवाविवाह में चुनाव हो सकता है जैसा कि विधुरविवाह और व्यभिचार में होता है।

आक्षेप (झ)—चाणक्य ने कहा है कि राजा और पण्डित एक ही बार बोलते हैं कन्या एक ही बार दी जाती है। (विद्यानन्द)

समाधान—हमने विधवाविवाह को न्यायोचित कहा है। उसका विरोध करने के लिये ऊपर का नीतिवाक्य उद्धृत किया गया है। आक्षेपक ने भूल से न्याय और नीति का एक ही अर्थ समझ लिया है। असल में नीति शब्द के, न्याय से अतिरिक्त तीन अर्थ हैं। (१) क़ानून, (२) चाल, ढंग, पॉलिसी, (३) रीति रिवाज। ये तीनों ही बातें न्याय के विरुद्ध भी हो सकती हैं। दक्षिण के एक राज्य में ऐसा क़ानून

है कि लड़का बाप की सम्पत्ति का मालिक नहीं होता। यह क़ानून है परन्तु न्याय नहीं। प्रजा में फूट डालकर मनमाना शासन करने की पॉलिसी, नीति है, परन्तु यह न्याय नहीं है। इसी तरह "मिलजुल कर पञ्चों में रहिये, प्राण जाँय साँची नहीं कहिये" की नीति है परन्तु यह न्याय नहीं है। योरोप में डयूअल का रिवाज था और कहीं कहीं अब भी है, परन्तु यह न्याय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें सबल का ही न्याय कहलाता है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह भी एक नीति है परन्तु न्याय नहीं। इसलिये नीतिवाक्य का उद्धरण देकर न्यायोचितता का विरोध करना व्यर्थ है।

दूसरी बात यह है कि चाणक्य ने खुद स्त्रियों के पुनर्विवाह के क़ानून बनाये हैं जिनका उल्लेख २७ वें प्रश्न में किया गया था। इस लेख में भी आगे किया जायगा। यहाँ सिर्फ़ एक वाक्य उद्धृत किया जाता है—'कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम्'। अर्थात् कुटुम्ब की सम्पत्ति का नाश होने पर अथवा समृद्ध बन्धुबांधवों से छोड़े जाने पर कोई स्त्री, जीवननिर्वाह के लिये अपनी इच्छा के अनुसार अन्य विवाह कर सकती है। चाणक्यनीति का उल्लेख करने वाला ज़रा इस वाक्य पर भी विचार करें। साथ ही यह भी ख़याल में रक्खें कि ऐसे ऐसे दर्जनों वाक्य चाणक्य ने लिखे हैं। जब हम दोनों वाक्यों का समन्वय करते हैं तब चाणक्यनीति के श्लोक से पुनर्विवाह का ज़रा भी विरोध नहीं होता। उस श्लोक से इतना ही मालूम होता है कि बाप को चाहिये कि वह अपनी पुत्री एक ही बार देवे। विधवा होने पर या कुटुम्बियों के नाश होने पर देने की ज़रूरत नहीं है। उस समय तक उसे इतना अनुभव हो जाता है कि वह स्वयं अपना पुनर्विवाह कर सकती है। इसलिये पिता को

फिर कौटुम्बिक अधिकार न बताना चाहिये। अगर चाणक्य-नीति के उस वाक्य का यह अर्थ न होता तो चाणक्य के अन्य वाक्यों से समन्वय ही न हो पाता।

आक्षेप (ञ)—आपने कहा कि 'अगर हम खूब स्वादिष्ट भोजन करें और दूसरों को एक टुकड़ा भी न खाने दें तो उन्हें स्वाद के लिये नहीं तो क्षुधाशांति के लिये चोरी करनी ही पड़ेगी। और इसका पाप हमें भी लगेगा। इसी तरह भ्रूणहत्या का पाप विधवाविवाह के विरोधियों को लगता है" परन्तु कौन किस को क्या नहीं खाने देता? कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है कि 'उपकार तथा अपकार शुभाशुभ कर्म ही करे हैं'। (विद्यानन्द)

समाधान—उपकार अपकार तो कर्म करते हैं परन्तु कर्मों का उदय नोकर्मों के बिना नहीं आता। बाह्यनिमित्तों को नोकर्म कहते हैं (देखो गोम्मटसार कर्मकाण्ड)। अशुभ कर्मों के नोकर्म बनना पाप है। पशु तो अपने कर्मोदय से मारा जाता है परन्तु कर्मोदय के नोकर्म कसाई को पाप का बन्ध होता है या नहीं? विधवा को पापकर्म के उदय से पति नहीं मिलता, परन्तु जो लोग पति नहीं मिलने देते वे तो उसी कसाई के समान उस पाप कर्म के नोकर्म हैं। यदि कार्तिकेयानुप्रेक्षा का ऐसा ही उपयोग किया जाय तो पण्डित लोग गुट्ट बाँध कर डाका डालना, स्त्रियों के साथ बलात्कार करना आदि का श्रीगणेश करदें और जब कोई पूछे कि ऐसा क्यों करते हो? तो कह दें—"हमने क्या किया? उपकार तथा अपकार तो शुभाशुभ कर्म ही करे हैं'। इस तरह से राजदण्ड आदि की भी कोई ज़रूरत नहीं रहेगी क्योंकि "उपकार अपकार शुभाशुभ कर्म ही करे हैं"। खैर साहिब! ऐसा ही सही। तब तो जिस विधवा का कर्मोदय आयगा उसका पुनर्विवाह

हो जायगा। न आयगा न हो जायगा। इसमें उस दम्पति को तथा सुधारकों को कोसने की क्या ज़रूरत? क्योंकि यह सब तो "शुभाशुभ कर्म ही करे है"। वाह रे! 'करे है'।

आक्षेप (ट)—कर्म की विचित्रता ही तो वैराग्य का कारण है। उन दुखियों पर तरस आता है इसलिये हम उन्हें शान्ति से इस कर्मकृत विधिविडम्बना को सहलेने का उपदेश देते हैं।" (विद्यानन्द)

समाधान—जी हाँ, और जब यह विधिविडम्बना उपदेशदाताओं के सिर पर आती है तब वे स्वयं कामदेव के आगे नंगे नाचते हैं, मरघट में ही नये विवाह की बातचीत करते हैं! यह विधिविडम्बना सिर्फ़ स्त्रियों को सहना चाहिये। न सही जाय तो गुप्त पाप करके ऊपर से सहने का ढोंग करना चाहिये। परन्तु पुरुषों को इसके सहने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि धर्म पुरुषों के लिये नहीं है। वे तो पाप से भी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अथवा यहाँ की आदत के अनुसार मुक्ति का झोंटा पकड़ कर उसे वश में कर सकते हैं। उन्हें पाप पुण्य के विचार की ज़रूरत क्या है?

वैराग्य के लिए कर्मविचित्रता की ज़रूरत है। इसलिये आवश्यक है कि सैकड़ों मनुष्य भूखों मारे जाँय, गरम कड़ाहों में पकाए जाँय, बीमारों की चिकित्सा बन्द कर दी जाय। इस से असुरकुमारों के अवतार पण्डितों को और पशुओं को वैराग्य पैदा होगा। अच्छा हो, ये लोग एक क़साईख़ाना खोल दें जिस में क़साई का काम ये स्वयं करें। जब इनकी छुरी खाकर बेचारे दीन पशु चिल्लायेंगे और तड़पेंगे, तब अवश्य ही उनके ख़ून में से वैराग्य का सत्व खींचा जासकेगा। अगर किसी जगह विधवाओं की कमी हो तो पुरुषों की हत्या करके विधवाएँ पैदा की जाँय। क्योंकि उनके करुण क्रन्दन और

आँसुओं में से वैराग्य का दोहन बहुत अच्छा होता है। यह वैराग्य न मालूम कैसा अड़ियल टट्टू है कि आता ही नहीं है! इधर जैनसमाज में मुफ्तखोरों की इतनी कमी है और जैन समाज के पास इतना धन है कि सूझता ही नहीं कि किसे खिलायें या कैसे खर्च करें!

सातवाँ प्रश्न

इसमें पूछा गया था कि आजकल कितनी विधवाएं पूर्ण पवित्रता के साथ वैधव्यव्रत पालन कर सकती हैं। इसका उत्तर हमने दिया था कि वृद्धविधवाओं को छोड़कर बाकी विधवाओं में से फ़ी सदी पाँच। यहाँ पूर्णपवित्रता के साथ वैधव्य पालने की बात है। रो धोकर वैराग्य पालन करने वाली तो आधी या आधी से भी कुछ ज़्यादा निकल सकती हैं। आक्षेपकों ने उत्तर का मतलब न समझकर बकवाद शुरु कर दिया। श्रीलाल जी हमसे पूछते हैं कि :—

आक्षेपक—आप को व्यभिचारिणियों का ज्ञान कहाँ से हुआ? क्या व्यभिचारियों का कोई अड्डा है जो खबर देता है या गवर्नमेण्ट रिपोर्ट निकलती है?

समाधान—मालूम होता है आक्षेपक भूगर्भ में से बिलकुल ताज़े निकले हैं। अन्यथा आप किसी भी शहर के किसी भी मोहल्ले में चले जाइये और ज़रा भी गौर से जाँच कीजिये, आपकी बुद्धि आपको रिपोर्ट दे देगी। इस रिपोर्ट की जाँच का हमने एक अच्छा तरीका बतलाया था-विधुरों की जाँच। स्त्रियों में काम की अधिकता बतलाई जाती है। अगर हम समानता ही मानलें तो विधुरों की कमज़ोरियों से हम विधवाओं की कमज़ोरियों का ठीक अनुमान कर सकते हैं। वृद्ध विधुरों को छोड़कर ऐसे कितने विधुर हैं जो पुनर्विवाह को

कोशिश न करते हों ? किसी प्रान्त में या शहर में जाँच करली जाय तो मालूम होगा कि चालीस पैंतालिस वर्ष से कम उमर में विधुर होकर अपने पुनर्विवाह की कोशिश न करने वाले विधुर फ़ी सदी पाँच से भी कम हैं। जहाँ पर विधुरविवाह के समान विधवाविवाह का भी पूर्ण प्रचार है वहाँ की रिपोर्ट से भी इस बातका समर्थन होगा। क्या ऐसी स्पष्ट जाँच को धृष्टता कहते हैं ?

इस वक्तव्य से विद्यानन्दजी के आक्षेपों का भी उत्तर हो जाता है। हाँ ! उनके बहुत से आक्षेप प्रकरण के बाहर होगये हैं, परन्तु उनका भी उत्तर दिया जाता है जिससे कहने को भी गुंजाइश न रह जावे।

आक्षेप (ख)—क्या अभव्य में मोक्ष जाने की ताक़त नहीं है ? तो केवल ज्ञानावरण का सद्भाव कैसे घटित होगा ? राजवार्तिक देखिये ! (विद्यानन्द)

समाधान—आक्षेपक ने राजवार्तिक गौर से नहीं देखा। राजवार्तिक में लिखा है कि द्रव्यार्थिकनय से तो अभव्य में केवलज्ञानादि की शक्ति है, परन्तु पर्यायार्थिकनय से नहीं है। इसलिये द्रव्यार्थिकनय से तो स्त्रियों में वैधव्य-पालन की तो क्या, केवलज्ञानादिक की भी शक्ति कहलायी। ऐसी हालत में तो प्रश्न की कोई ज़रूरत ही नहीं रहती। और जब प्रश्न किया गया है तो सिद्ध है कि पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा है, और उस नय से अभव्य में मुक्तियोग्यता नहीं है। ज़रा राजवार्तिक के इस वाक्य पर भी विचार कीजिये—"सम्यक्त्वादिपर्यायव्यक्तियोगार्हो यः स भव्यः तद्विपरीतोऽभव्यः" अर्थात् जिसमें सम्यक्त्वादि को प्रगट करने की योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं; उससे विपरीत को अभव्य। मतलब यह है कि प्रकट करने की शक्ति अशक्ति की अपेक्षा से भव्य अभ-

व्य का भेद है। हमने मोक्ष जाने तक की बात कही है, शक्ति रूप में मौजूद रहने की नहीं। खैर, यहाँ इस चर्चा से कुछ मतलब नहीं है। अगर आक्षेपक को इस विषय की विशेषज्ञता का अभिमान है तो वे स्वतन्त्र चर्चा करें। हम उनका समाधान कर देंगे।

आक्षेप (ग)—आजकल भी स्त्रीजाति को पंचम गुणस्थान हो सकता है और पुरुषों को सप्तम गुणस्थान। इसलिये अवस्था का बहाना बताना अधमता से भी अधम है।

समाधान—गुणस्थानों की चर्चा उठाकर आक्षेपक ने अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मारी है। क्या आक्षेपक ने विचार किया है कि मनुष्यों में पञ्चम गुणस्थान के मनुष्य कितने हैं? कुल मनुष्य २९ अङ्क प्रमाण हैं और पञ्चम गुणस्थानवाले मनुष्यों की संख्या ९ अङ्कप्रमाण। बीस अङ्क ज़्यादा हैं। १९ अङ्क के दस सङ्ख होते हैं बीस अङ्क के १०० सङ्ख हुए। अर्थात् पाँचवें गुणस्थान के मनुष्यों से कुल मनुष्य सौ सङ्ख गुणे हैं। सौ सङ्ख मनुष्यों में एक मनुष्य पञ्चम गुणस्थानवर्ती है। इस चर्चा से तो सौ में पाँच तो क्या एक या आधा भी नहीं बैठता! फिर समझ में नहीं आता कि पाँचवें गुणस्थान में जीव होने से दुराचारियों का निषेध कैसे हो गया? अनन्त सिद्धों के होने पर भी उनसे अनन्तगुणे संसारी हैं। असंख्य सम्यग्दृष्टियों के होने पर भी अनन्तानन्त मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिये पाँच सदाचारिणी स्त्रियों के होने से क्या ९५ दुराचारिणी नहीं हो सकतीं? फिर हमने तो वृद्धाओं को अलग रक्खा है और युवती विधवाओं में भी ९५ को दुराचारिणी नहीं, किन्तु पूर्ण वैधव्य न पालने वाली बतलाया है।

सीता राजुल आदि सतियों के दृष्टान्त से आक्षेपक की नहीं, किन्तु हमारी बात सिद्ध होती है। सतीत्व के गीत गाने

वाले बतलावें कि आज कितनी स्त्रियाँ अग्नि में बैठकर अपने सतीत्व की परीक्षा दे सकती हैं? सीता और राजुल आज तो असाधारण हैं ही, परन्तु उस ज़माने में भी असाधारण थीं।

आक्षेपकने ज्योतिःप्रसाद जी आदि का उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि विधुर भी ब्रह्मचर्य से रहते हैं। इस सिद्ध करने की धुन में आप अपने असली पक्ष को खो बैठे। अगर ज्योतिःप्रसादजी आदि विधुरों के रहने पर भी फ़ी सदी ९५ विधुर अपने पुनर्विवाह की कोशिश करते हैं अर्थात् निर्दोष वैधुर्य का पालन नहीं कर पाते तो शुद्ध वैधव्य पालन करने वाली अनेक विधवाओं के रहने पर भी फ़ी सदी ९५ विधवाएँ शुद्ध वैधव्य पालन नहीं कर पातीं।

आक्षेप (घ)—विधुरों के समान विधवाओं के विवाह की आज्ञा कौन दे? क्या हम छद्मस्थ लोग? शास्त्रों में बहुविवाह का उल्लेख पाया जाता है। शास्त्रकर्ता पुरुष होने से पक्षपाती नहीं कहे जासकते, क्योंकि न्याय और सिद्धान्त की रचनाएँ गुरुपरम्परा से हैं। यदि उन्हें पुरुषत्व का अभिमान होता तो शूद्रों को पूजनप्रक्षाल, महाव्रत ग्रहण आदि से वंचित क्यों रखते? यदि ब्राह्मणत्वका पक्षपात बताया जाय तो उनने हीनाचारी ब्राह्मण को शूद्रों से भी बुरा क्यों कहा? इसलिये पक्षपात का इल्ज़ाम लगाना पशुता और दमनीय अविचारता है।

(विद्यानन्द)

समाधान—हमारे उत्तरमें इस विषयका एक अक्षर भी नहीं है और न घुमा फिराकर हमने किसी पर पक्षपात का इल्ज़ाम लगाया है। यह हरिण का सोते शेर को जगाना है।

प्रारम्भ में हम यह कह देना चाहते हैं कि आक्षेपकने जैन शास्त्रों की जैसी आज्ञाएँ समझी हैं वैसी नहीं हैं। जैन शास्त्र तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की आज्ञा देते हैं, लेकिन जो लोग पूर्ण

ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते उनके लिये कुछ नीची श्रेणी का (विवाह आदि का) उपदेश देते हैं। इन नीची श्रेणियों में किस ज़माने के अधिकांश मनुष्य किस श्रेणी का किस रूप में पालन कर सकते हैं इस बात का भी विचार रक्खा जाता है। भारतवर्ष, तिब्बत और वर्तमान योरोप की परिस्थितियोंमें बड़ा फ़र्क है। भारतवर्ष में एक पति, अनेक पत्नियाँ रख सकता है। तिब्बत में एक पत्नी अनेक पति रख सकती है। योरोप में पति, अनेक पत्नियाँ नहीं रख सकता, न पत्नी अनेक पति रख सकती है। योरोप में अगर एक पत्नी के रहते हुए कोई दूसरी पत्नी से विवाह करले तो वह जेल में भेज दिया जायगा। क्या ऐसी परिस्थिति में आचार्य, योरोपियन पुरुषों को बहुविवाहकी आज्ञा देंगे? जैनाचार्यों की दृष्टिमें भी वहाँ का बहुविवाह अनाचार कहलायगा। परन्तु भारत के लिये पुरुषों का बहुविवाह अतिचार ही होगा। तिब्बत के लिये स्त्रियोंका बहुविवाह अतिचार होगा। तात्पर्य यह है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य से उतर कर समाज का नैतिक माध्यम (Medium) जिस श्रेणी का रहता है उसी को आचार्य ब्रह्मचर्याणुव्रत कहते हैं। यही कारण है कि सोमदेव और आशाधरजी ने वेश्यासेवी को भी अणुव्रती मान लिया है। इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं है क्योंकि यह तो जुदे जुदे समय और जुदे स्थानों के समाज का माध्यम है। इस विषय में इतनी बात ध्यान में रखने की है कि माध्यम चाहे जो कुछ रहा हो परन्तु उनका लक्ष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य रहा है। इसलिये बहुपत्नीक मनुष्य को उनने अतिचारी कहा है। देखिये सागारधर्मामृत टीका "यदा तु स्वदारसन्तुष्टो विशिष्टसन्तोषाभावात् अन्यत्कलत्रं परिणयति तदाऽप्यस्यायमतिचारः स्यात्" अर्थात् विशिष्ट सन्तोष न होने के कारण जो दूसरी स्त्री के साथ विवाह करता है उसको ब्रह्मचर्याणुव्रत में दोष लगता है।

असल बात तो यह है कि ब्रह्मचर्याणुव्रत भी एक तरह का परिग्रहपरिमाणव्रत है; परिग्रह परिमाण में सम्पत्ति तथा अन्य भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा की जाती है। ब्रह्मचर्य में काम सेवन सम्बन्धी उपभोगसामग्री की मर्यादा की जाती है। परन्तु जिस प्रकार अहिंसा के भीतर चारों व्रत शामिल होने पर भी स्पष्टता के लिये उनका अलग व्याख्यान किया जाता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्याणुव्रत में परिग्रह परिमाण व्रत से अलग व्याख्यान किया गया है। परिग्रह परिमाणव्रतमें परिग्रह की मर्यादा की जाती है, परन्तु वह परिग्रह कितना होना चाहिये यह बात प्रत्येक व्यक्ति के द्रव्य क्षेत्रकालभाव पर निर्भर है। मर्यादा बाँध लेने पर सम्राट् भी अपरिग्रहाणुव्रती है और मर्यादाशून्य साधारण भिखमंगा भी पूर्ण परिग्रही है। ब्रह्मचर्याणुव्रत के लिये आचार्य ने कह दिया कि अपनी कामवासना को सीमित करो और विवाह को कामवासना की सीमा नियत कर दिया। जो वैवाहिक बन्धन के भीतर रहकर कामसेवन करता है वह ब्रह्मचर्याणुव्रती है। यह बन्धन कितना ढीला या गाढ़ा हो यह सामाजिक परिस्थिति और वैयक्तिक साधनों के ऊपर निर्भर है। यहाँ पर एक पुरुष का अनेक स्त्रियों के साथ विवाह हो सकता है और विवाह ही मर्यादा है इसलिये वह ब्रह्मचर्याणुव्रती कहलाया। तिब्बत में एक स्त्री अनेक पुरुषों के साथ एक साथ ही विवाह कर सकती है और विवाह ही मर्यादा है इसलिये वहाँ पर अनेक पति वाली स्त्री भी अणुब्रह्मचारिणी है। अणुब्रह्मचर्य का भंग वहीं होगा जहाँ अविवाहित के साथ कामादि सेवन किया जायगा। इससे साफ़ मालूम होता है कि अणुव्रत के लिये आचार्य एक अनेक का बन्धन नहीं डालते, वे विवाह का बन्धन डालते हैं। सामाजिक परिस्थिति और साधन सामग्री से जो जितने विवाह कर सके

उसे वही अणुव्रत की सीमा है। एक पति या अनेक पति का प्रश्न सामाजिक या राजकीय परिस्थिति का प्रश्न है न कि धार्मिक प्रश्न।

ऊपर, तिब्बत का उदाहरण देकर बहुपतित्व का उल्लेख कर चुका हूँ। और भी अनेक छोटी छोटी जातियों में यह रिवाज है। अगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो एक दिन संसार के अधिकांश देशों में बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित थी। बात यह है कि माता का महत्व पिता से अधिक है। माता को ही लेकर कुटुम्ब की रचना होती है। इसलिये एक समय मातृवश अर्थात माता के हाथ शासन की विधि प्रचलित थी। उस समय बहुपतिविवाह अर्थात् एक स्त्री के कई पति होने की प्रथा भी शुरू हो गई। एशिया की कुछ प्राचीन जातियों में अब भी इस प्रथा के चिन्ह पाये जाते हैं। कई पतियों में से जो सबसे बलवान और रक्षा करने में समर्थ होता था धीरे धीरे उसका आदर अधिक होने लगा अर्थात् पट्टरानी के समान पट्टपति का रिवाज चला। जो बलवान और पत्नी का ज़्यादा प्यारा होता था वही अच्छी तरह घरमें रह पाता था। यही रिवाज अङ्गरेज़ों के हसबैंड Husband शब्द का मूल है। इस शब्द का असली रूप है Hus bnandi अर्थात घर में रहने वाला। सब पतियों में जो पत्नी के साथ घर पर रहता था वही धीरे धीरे गृहपति या हसबैंड कहलाने लगा, और शक्ति होने से धीरे धीरे घर का पूरा आधिपत्य उस के हाथ में आगया। घर की मालिकी के बाद जब किसी पुरुष को जाति की सरदारी मिली तो पुरुषों का शासन शुरू हुआ, और बहुपतित्व के स्थान पर बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पड़ी। हिन्दू शास्त्रों में द्रौपदी को पाँच पति वाली कहा है और उसे महासती भी माना है। भले ही यह कथा कल्पित

हो परन्तु भारतवर्ष में भी एक समय बहुपतित्व के साथ सतीत्व का निर्वाह होता था, इस बात की सूचक अवश्य है। जैन-समाज में थी कि नहीं, यह जुदा प्रश्न है परन्तु भारतवर्ष में अवश्य थी।

मतलब यह है कि बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व की प्रथा सामयिक है। धर्म का उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म तो अणुव्रती को अविवाहित के साथ संभोग करने की मनाई करता है। विवाहित पुरुष या स्त्री, एक हो या अनेक, धर्म की दृष्टि में अणुव्रतनाशक नहीं है। हाँ, धर्म तो मनुष्य को पूर्णब्रह्मचर्य की तरफ़ झुकाता है इसलिये बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व के स्थान में एक पतित्व, और एक पत्नीत्व को अच्छा समझता है और जिसका प्रचार अधिक सम्भव हो उसी पर अधिक ज़ोर देता है। इतना ही नहीं, एक पत्नीत्व के बाद भी वह संभोग की रोकथाम करता है। जैसे पर्व के दिन में विषय सेवन मत करो! ऋतुस्नान दिवस के सिवाय अन्य दिवसों में मत करो! आदि।

मुनियों के लिये जैसा ब्रह्मचर्य है आर्यिकाओं के लिये भी वैसा है। ब्रह्मचारियों के लिये जैसा है, ब्रह्मचारिणियों के लिये भी वैसा है। बाक़ी पुरुषों के लिये जैसा है, बाक़ी स्त्रियों के लिये भी वैसा है। सामयिक परिस्थिति के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों ने जिस प्रकार पालन किया आचार्यों ने उसी प्रकार उसका उल्लेख किया। आचार्य तो बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व दोनों नहीं चाहते थे। वे तो पूर्णब्रह्मचर्य के पोषक थे। अगर वह न हो सके तो एकपतित्व और एकपत्नीत्व चाहते थे। ज़बरदस्ती से हो या और किसी तरह से हो, स्त्रियों में बहुपतित्व की प्रथा जब नहीं थी तब वे उसका उल्लेख करके पीछे खिसकने का मार्ग क्यों बतलाते? पिछले

ज़माने में जब विधवाविवाह की प्रथा न रही या कम हो गई तब इस प्रथा का उल्लेख भी न किया गया। यदि इसी तरह बहुपत्नीत्व की प्रथा नष्ट हो जाती तो आचार्य इस प्रथा का भी उल्लेख न करते। माध्यम जितना ऊँचा होजाय उतना ही अच्छा है। अगर परिस्थितियों ने स्त्रियों का ब्रह्मचर्यविषयक माध्यम पुरुषों से ऊँचा कर दिया था तो इससे स्त्रियों के अधिकार नहीं छिन जाते। कम से कम धर्म तो उनके अधिकारों में बाधा नहीं डालता। पुरुष समाज का माध्यम तो स्त्री समाज से नीचा है। इसलिये पुरुषों को तो स्त्रियों से कुछ कहने का अधिकार ही नहीं है। अब यहाँ एक प्रश्न यह खड़ा होता है कि विधवाविवाह का प्रचार करके स्त्रियों का वर्तमान माध्यम क्यों गिराया जाता है? इसके कारण निम्नलिखित हैं।

(१) यह माध्यम स्त्रियों के ऊपर ज़बरदस्ती लादा गया है, और लादने वाले पुरुष हैं जो कि इस दृष्टि से बहुत गिरे हुए हैं। इसलिये यह त्याग का परिचायक नहीं किन्तु दासता का परिचायक है। इसलिये जब तक पुरुष समाज इस माध्यम पर चलने को तैयार नहीं है तब तक स्त्रियों से ज़बर्दस्ती इस माध्यम का पलवाना अन्याय है, और अन्याय का नाश करना धर्म है।

(२) माध्यम वही रखना चाहिये जिसका पालन सहूलियत के साथ हो सके। प्रतिदिन होने वाली भ्रूणहत्याएँ और प्रति समय होने वाले गुप्त व्यभिचार आदि से पता लगता है कि स्त्रियाँ इस माध्यम में नहीं रह सकतीं।

(३) आर्थिक कष्ट, घोर अपमान, तथा अन्य अनेक आपत्तियों से वैधव्य जीवन में धर्मध्यान के बदले आर्तध्यान की ही प्रचुरता है।

(४) स्त्री और पुरुष के माध्यम में इतनी विषमता है

कि पुरुषसमाज का और स्त्रीसमाज का अधःपतन हो रहा है। इस समय दोनों का माध्यम समान होना चाहिये। इसके लिये पुरुषों को बहुपत्नीत्व की प्रथा का त्याग करने की और स्त्रियों को विधवाविवाह की ज़रूरत है।

(५) जनसंख्या की दृष्टि से समाज का माध्यम हानिकारी है। भारतवर्ष में स्त्रियों की संख्या कम है, पुरुषों में बहुविवाह होता है, फिर फ़ीसदी १७ स्त्रियाँ असमय में विधवा हो जाती हैं, इसलिये अनेक पुरुषों को, बिना स्त्री के रहना पड़ता है। उनमें से अधिकांश कुमार्गगामी हो जाते हैं। अगर विधवाविवाह का प्रचार हो तो यह कमी पूरी हो सकती है तथा अनेक कुटुम्बों का सर्वनाश होने से भी बचाव हो सकता है।

(६) बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व की प्रथा, सीमित होने पर इतनी विस्तृत है कि उसमें विषय वासनाओं का ताण्डव हो सकता है। सामूहिक रूपमें इसका पालन हो नहीं होसकता इसलिये ये दोनों प्रथाएँ त्याज्य हैं। किन्तु अपतित्व और अपत्नीत्व की प्रथा इतनी संकुचित है कि मनुष्य उसमें पैर भी नहीं पसार सकता। और सामूहिक रूपमें इसका पालन भी नहीं होसकता। इसलिये कुमार और कुमारियों का विवाह कर दिया जाता है। अपतित्व की प्रथा से जिस प्रकार कुमारियों की हानि हो सकती है वही हानि विधवाओं को हो रही है इसलिये उनके लिये भी कुमारियों के समान एकपतित्व प्रथा की आवश्यकता है।

जब कि बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व तक ब्रह्मचर्याणुव्रत की सीमा है तब एक पतित्वरूप विधवाविवाह की प्रथा, न तो अणुव्रतकी विरोधिनी होसकती है और न आचार्यों की आज्ञाओंकी आज्ञाके प्रतिकूल हो सकती है। यहाँ पाठक विधवा-

विवाह को बहुपतित्व की प्रथा न समझें। एक साथ अनेक पतियों का रखना बहुपतित्व है। एक की मृत्यु हो जाने पर दूसरा पति रखना एक पतित्व ही है क्योंकि इसमें एक साथ बहुपति नहीं होते।

पाठक इस लम्बे विवेचन से ऊब तो गये होंगे, परन्तु इससे "विधवाविवाह की आज्ञा कौन दे ?", "पुराणों में बहु-विवाह का उल्लेख पाया जाता है" आदि आक्षेपों का पूरा समाधान हो जाता है। शास्त्रोंके कथन की अनेकान्तता मालूम हो जाती है। साथ ही ब्रह्मचर्याणुव्रत का रहस्य मालूम हो जाता है। आक्षेपकने पक्षपात के इल्ज़ाम को पशुता और दमनीय अविचारता लिखा है। खैर, जैनधर्म तो इतना उदार है कि उसपर बिना इल्ज़ाम लगाये विधवाविवाह का समर्थन हो जाता है। परन्तु जो लोग जैनशास्त्रों को विधवाविवाह का विरोधी समझते है या जैनशास्त्रों के नाम पर बने हुए, जैन-धर्म के विरुद्ध कुछ ग्रन्थों को जैनशास्त्र समझते है उनसे हम दो दो बातें कर लेना चाहते हैं। ये दो बातें हम अपनी तरफ से नहीं, किन्तु उनके वकील की हैसियत से कहते है जिनको आक्षेपकने पशु बतलाया है।

आक्षेपक का कहना है कि "न्याय और सिद्धान्तकी रच-नाएँ गुरु-परम्परा से हैं", परन्तु उनमें स्वकल्पित विचारों का सम्मिश्रण नहीं हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। माणिक्यनंदि आदि आचार्योंने प्रमाण को अपूर्वार्थग्राही माना है और धारा-वाहिक ज्ञानको अप्रमाण। परन्तु आचार्य विद्यानन्दीने गृहीत-मगृहीतं वा स्वार्थं यदि व्यवस्यति, तन्न लोके न शास्त्रेषु विजहाति प्रमाणताम्-कहकर धारावाहिक को अप्रमाण नहीं माना है। ऐसा ही अकलङ्कदेवने लिखा है (देखो श्लोकवार्तिक, लघीयस्त्रय, या न्यायप्रदीप) धर्मशास्त्रमें तो और भी ज़्यादा

अन्धेर है। रविषेण कहते हैं कि सीता जनक की पुत्री थी। रामको बनवास मिला था। वे अयोध्या में रहते थे। गुणभद्र कहते हैं सीता रावण की पुत्री थी। राम को बनवास नहीं मिला था। वे बनारस में रहते थे। दोनों कथानकों के स्थूल सूक्ष्म अंशोंमें पूर्व पश्चिम का सा फ़रक़ है। क्या यह गुरुपरम्परा का फल है? कोई लेखक कहता है कि मैं भगवान महावीर का ही उपदेश कहता हूँ तो क्या इसीसे गुरुपरम्परा सिद्ध होगई? यदि गुरुपरम्परा सुरक्षित रही तो कथानकों में इतना भेद क्यों? श्रावकों के मूलगुण कई तरह के क्यों? क्या इस से यह नहीं मालूम होता है कि अनेक लेखकोंने द्रव्य क्षेत्र कालादि की दृष्टिसे अनेक तरह का कथन किया है। अनेकों ने जैनधर्म विरुद्ध अनेक लोकाचारों को जिनवाणी के नाम से लिख मारा है; जैसे सोमसेन आदि भट्टारकोंने योनिपूजा आदि की घृणित बातें लिखी हैं। इसीलिये तो मोक्षमार्गप्रकाश में लिखा है कि "कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैन शास्त्रनि विषैं असत्यार्थपद मिलावै परन्तु जिन शास्त्र के पदनिविषैं तो कषाय मिटावने का वा लौकिक कार्य घटावने का प्रयोजन है। और उस पापी ने जो असत्यार्थ पद मिलाये हैं तिनि विषै कषाय पोषने का वा लौकिक कार्य साधने का प्रयोजन है। ऐसे प्रयोजन मिलता नाहीं, तातैं परीक्षा करि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं, कोई मूर्ख होय सोही जैन शास्त्र नाम करि ठिगावैं हैं।" कहिये! अगर गुरु परम्परा में ऐसा कचरा या विष न मिल गया होता तो क्यों लिखा जाता कि मूर्ख ही जैन शास्त्र के नाम से ठगाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि गुरु परम्परा के नाम पर बैठे रहना मूर्खता है। जैनी को तो कोई शास्त्र तभी प्रमाण मानना चाहिये जब वह जैन सिद्धान्त से मिलान खाता है। अगर वह मिलान न खावे तो अन-

केवली के नाम से ही क्यों न लिखा गया हो, उसे कचरे में डाल देना चाहिये। धूर्तों की धूर्तता को छिपाना घोर मिथ्यात्व का प्रचार करना है। जैन सिद्धान्तों के विरुद्ध जाने पर भी ऐसे शास्त्रों को मानना घोर मिथ्यात्वी बनजाना है। गुरु परम्परा है कहाँ? श्वेताम्बर कहते हैं कि हमारे सूत्र भगवान् महावीर के कहे हुए हैं। दिगम्बर कहते हैं कि कुन्द-कुन्द से लेकर भट्टारकों और अन्य अनेक पोंगापन्थियों तक के बनाये हुए ग्रन्थ वीरभगवान की वाणी हैं। अब कहिये! किसकी गुरु परम्परा ठीक है? यों तो सभी अपने बाप के गीत गाते हैं परन्तु इतने से ही सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो जाता। यहाँ तो गुरुपरम्परा के नाम पर मक्खी हाँकते बैठा न रहना पड़ेगा। समस्त साहित्य की साक्षी लेकर अपनी बुद्धि से जैनधर्म के मूल सिद्धान्त खोजने पड़ेंगे और उन्हीं सिद्धान्तों को कसौटी बनाकर स्वर्ण और पीतल की परीक्षा करना पड़ेगी, और धूर्तों तथा पक्षपातियों का भण्डाफोड करना पड़ेगा। यह कहना कि "प्राचीन लेखकों में पक्षपाती धूर्त नहीं हुए" बिलकुल धोखेबाज़ी या अज्ञानता है। माना कि बहुत से लेखकों ने आपेक्षिक कथन किया है जैसाकि इसी प्रकरण में ऊपर कहा जा चुका है परन्तु थोड़े बहुत निरे पक्ष-पाती, उत्सूत्रवादी और कुलजाति मद के प्रचारक घोर मिथ्यात्वी भी हुए हैं। अगर किसी लेखक ने यह लिखा हो कि "पुरुष तो एक साथ हज़ारों स्त्रियाँ रखने पर भी अणु-व्रती है परन्तु स्त्री, एक पति के मर जाने पर भी दूसरा पति रखे तो घोर व्यभिचारिणी है उसको पुनर्विवाह का अधिकार ही नहीं है" तो क्या पक्षपात न कहलायगा? पक्षपात के क्या सींग होते हैं? यह पुरुषत्व की उन्मत्तता का तांडव नहीं तो क्या है? पुरुषों ने शूद्र पुरुषों को भी कुचला है: इससे तो

सिर्फ़ यही सिद्ध होता है कि उनमें पुरुषत्व की उन्मत्तता के साथ द्विजत्व की उन्मत्तता भी थी। "उनने पुरुषों को भी कुचला, इसलिये स्त्रियों को नहीं कुचला" यह नहीं कहा जासकता। मुसलमान आपस में भी लड़ते हैं, क्या इसलिये उनका हिन्दुओं से न लड़ना सिद्ध हो जाता है? कहा जाता है कि "उनने दुराचारी द्विजों की भी तो निन्दा की है, इसलिये वे सिर्फ़ दुराचार के ही निन्दक हैं"। यदि ऐसा है तो दुराचारी शूद्रों की और दुराचारिणी स्त्रियों की ही निन्दा करना चाहिये। स्त्रीमात्र को और शूद्र मात्र को नीचा क्यों दिखाया जाता है? अमेरिका में अपराधी लोग दण्ड पाते हैं और बहुत से हब्शी नाममात्र के अपराध पर इसलिये जला दिये जाते हैं कि वे हब्शी हैं, तो क्या यह उचित है? अपराधियों को दण्ड देने से क्या निरपराधियों को सताना जायज़ हो जाता है? प्राचीन लेखकों ने अगर दुराचारियों को कुचला है तो सिर्फ़ इसीलिये उनका शूद्रों को और स्त्रियों को कुचलना जायज़ नहीं कहला सकता।

यह पक्षपात पिशाच, उस समय बिलकुल नंगा हो जाता है जब दुराचारी द्विज के अधिकार, सदाचारी शूद्र और सदाचारिणी महिला से ज़्यादा समझे जाते हैं। दुराचारी द्विज अगर जीते बालकोंको मार मारकर खाजाय तो भी उसके मुनि बनने का और मोक्ष जाने का अधिकार नहीं छिनता (देखो पद्मपुराण सोदास की कथा)। परन्तु शूद्र कितना भी सदाचारी क्यों न हो, उसका आत्मविकास कितना ही क्यों न हो गया हो वह मुनि भी नहीं बन सकता। झूठा, चोट्टा, व्यभिचारी और लुच्चा द्विज अगर भगवान् की पूजा करे तो कोई हानि नहीं, परन्तु शूद्र आरम्भत्यागी या उद्दिष्ट त्यागी ही क्यों न हो, वह जिन पूजा करने का अधिकारी

नहीं। क्या सदाचार या चारित्र की यही प्रशंसा है? क्या इसी का नाम निष्पक्षता है? स्त्री हो या शूद्र हो, प्रत्येक जीव को ऊंचा से ऊँचा धर्म पालने का अधिकार है। जो उनके अधिकारों को छीनते हैं वे सिर्फ़ पक्षपाती ही नहीं डाकू हैं। मनुष्य जाति के दुश्मन हैं। वे चाहे पूर्व पुरुषों के वेष में हों, चाहे आचार्य के वेष में हों, चाहे और किसी रंग में रंगे हों, उनका नाम सिर्फ़ उनके नाम पर थूकने के लिये ही लेना चाहिये।

पाठक देखें कि पक्षपात का दोष लगाना सत्य है या नहीं! हमें यह वकालत इसलिये करनी पड़ी है कि आज बुद्धि और विवेक से काम लेने वालों को अधम पशु कहा जाता है। कौन अधम पशु है, इसका निर्णय पाठक ही करेंगे।

नवमा प्रश्न।

"विवाह के बिना, कामलालसा के कारण जो संक्लेश परिणाम होते हैं, उन में विवाह होने से कुछ न्यूनता आती है या नहीं?" इस प्रश्न के उत्तर में हमने कहा था कि संक्लेश परिणामों को कम करने के लिये विवाह किया जाता है और इस में बड़ी भारी सफलता मिलती है। हमने सागारधर्मामृत और पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के श्लोकोंसे अपने पक्ष का समर्थन किया था। आक्षेपक कई जगह तो हमारे भाव को समझ नहीं पाये और बाकी जगह उन से उत्तर नहीं बन पड़ा।

आक्षेप (क)—जब ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण कर युवा १६ वर्ष का होता है तब पितादि उस का विवाह करते हैं। ऐसी अवस्था में न किसी के विवाहके बिना संक्लेश परिणाम होते हैं न कुछ होता है। (श्रीलाल)

समाधान—कामलालसा रूप संक्लेशके बिना किसी का

विवाह करना राजवार्त्तिक के लक्षण के अनुसार विवाह ही नहीं कहला सकता। जैसे ज्वर न होने पर ज्वर की औषधि देना हानिकारक है, उसी प्रकार काम वासनाके बिना उसका विवाह कर देना हानिकारक है। उस से तो नवीन कामज्वर पैदा हो जायगा। खैर, अगर १६ वर्ष के युवा में कामवासना नहीं है तो क्या २०—३० वर्ष के उस विधुर में भी नहीं है, जो विवाह के लिये अपनी सारी शक्ति लगा रहा है ? विवाह के होजाने पर वह थोड़ी बहुत निश्चिन्तता का अनुभव करता है या नहीं ? वही निश्चिन्तता तो संक्लेश परिणामोंकी न्यूनता है। जिस प्रकार विधुरविवाहसे संक्लेश परिणामों में न्यूनता होती है उस प्रकार विधवाविवाहसे भी संक्लेश परिणामों में न्यूनता होती है, इसलिये विधवाविवाह भी विधेय है।

आक्षेप (ख)—जिन पुरुषोंके सर्वथा विवाह होने की आशा नहीं है, उन का काम नष्ट जैसा होजाता है। उन की इच्छा भी नहीं होती। जैसे किसी ने आलू खाना छोड़ दिया तो उसका मन आलुओं पर नहीं चलता। रात्रिमें जलत्यागियों को प्यास नहीं लगती। पुनः पुनः काम न सेवन करने से काम नष्ट हो जाता है। जिस विधवा को पुरुषसङ्ग की आशा नहीं होती, उसका मन विकृत नहीं होता।

समाधान—आक्षेप क्या है, पागल के प्रलाप हैं। नपुंसक को विवाह और कामभोगकी आशा तो नहीं होती परन्तु उसकी कामवेदना को शास्त्रकारों ने सब से अधिक तीव्र बतलाया है। यदि साधन न मिलने से ब्रह्मचर्य होने लगता तो विधुर और विधवाओं में व्यभिचार क्यों होता ? आलू छोड़ देना एक बात है और आलू न मिलना दूसरी बात है। ब्रह्मचर्य एक बात है और दुर्भाग्यवश विधवा या विधुर हो जाना दूसरी बात है। रात्रि में जलत्यागियों को प्यास नहीं लगती,

इसका कारण यह है कि वे संध्या को ही लोटे दो लोटे पानी गटक जाया करते हैं । खैर ! विधवा होने से जिनकी कामवासना नष्ट होजावे उनसे विवाह का अनुरोध नहीं किया जाता परन्तु जो कामवासना पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती हैं उन्हें अवश्य ही विवाह कर लेना चाहिये ।

आक्षेप (ग)—काम शान्ति को विवाह का मुख्य उद्देश्य बताना मूर्खता है । शुद्ध सन्तानोत्पत्ति व गृहस्थ धर्म का दानादिकार्य यही मुख्य उद्देश्य है ।······अतएव काम गौण है, मुख्य धर्म ही है । (श्रीलाल)

समाधान—आक्षेपक यहाँ इतना पागल होगया है कि उसे काम में और कामवासना की निवृत्ति में कुछ अन्तर ही नहीं मालूम होता । हमने कामवासना की निवृत्ति को मुख्यफल कहा है न कि काम को । और कामवासना की निवृत्तिको धर्मरूप कहा है । धर्म अगर मुख्य फल है तो कामवासना की निवृत्ति ही मुख्य फल कहलायी । इसमें विरोध क्या है ? पुत्रोत्पत्ति आदि को मुख्यफल कहने के पहिले आक्षेपक अगर हमारे इन शब्दों पर ध्यान देता तो उसे इस तरह निरर्गल प्रलाप न करना पड़ता—

"मान लीजिये कि किसी मनुष्य में मुनिव्रत-धारण करने की पूर्ण योग्यता है । ऐसी हालत में अगर वह किसी आचार्य के पास जावे तो वे उसे मुनि बनने की सलाह देंगे या श्रावक बन कर पुत्रोत्पत्ति की सलाह देंगे" ?

यह कह कर हमने अमृतचन्द्र आचार्य के तीन श्लोक उद्धृत करके बतलाया था कि ऐसी अवस्था में आचार्य मुनिव्रत का ही उपदेश देंगे । मुनिव्रत धारण करने से बच्चे पैदा नहीं हो सकते, परन्तु कामलालसा की पूर्ण निवृत्ति होती है । इससे मालूम होता है कि जैनधर्म बच्चे पैदा करने पर ज़ोर नहीं

देता, किन्तु कामलालसा की निवृत्ति पर ज़ोर देता है। पूर्ण निवृत्ति में असमर्थ होने पर आंशिक निवृत्ति के लिये विवाह है। उससे सन्तान आदि की भी पूर्ति हो जाती है। परन्तु मुख्य उद्देश्य तो कामवासना की निवृत्ति ही रहा। अमृतचंद्र के पद्योंने यह विषय बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। फिर भी आक्षेपक को पद्यों की उपयोगिता समझ में नहीं आती। ठीक है, समझने की अक्ल भी तो चाहिये।

आक्षेप (घ)—विवाहको गृहस्थाश्रमका मूल कहकर धर्म, अर्थ, काम रूप तो नियत कर दिया, परन्तु इससे आप हाथ थप्पड़ खाली। जब काम गृहस्थाश्रम रूप है तब उस की शान्ति क्यों? काम-शान्ति से तो गृहस्थाश्रम उड़ता है। काम निवृत्तिको धर्म और प्रवृत्तिको काम कहना कैसा? एक विषय में यह कल्पना क्या? और अर्थ इस का साधक क्या? फल तो विवाह के तीन हैं, उलटा अर्थ साधक क्यों पड़ा? साध्य को साधक बनादिया? (श्रीलाल)

समाधान—यहाँ तो आक्षेपक बिलकुल हक्काबक्का हो गया है। इसलिये हमारे न कहने पर भी उसने काम को गृहस्थाश्रमरूप समझ लिया है। काम की पूर्णरूप से शान्ति हो जाय तो गृहस्थाश्रम उड़ जायगा और मुनिआश्रम आजायगा। अगर काम की निवृत्ति ज़रा भी न हो तो भी गृहस्थाश्रम उड़ जायगा, क्योंकि ऐसी हालत में वहाँ व्यभिचारादि दोषों का दौरदौरा हो जायगा। अगर काम की आंशिक निवृत्ति हो अर्थात् परदार-विषयक काम की निवृत्तिरूप स्वदार-सन्तोष हो तो गृहस्थाश्रम बना रहता है। आक्षेपक ऐसा जड़बुद्धि*

---

* आक्षेपकने ऐसे ही कटुक और एक वचनात्मक शब्दों का जहाँ तहाँ प्रयोग किया है; इसलिये हमें भी "शठम् प्रति

है कि वह अभी तक यह नहीं समझ पाया है कि कामवासना की आंशिक निवृत्तिका मतलब स्वदारसन्तोष या स्वपतिसन्तोष है। जो लोग स्वदारसन्तोष को विवाह का मुख्य फल नहीं मानते वे जैनधर्म से बिलकुल अनभिज्ञ निरे बुद्धू हैं। बेचारा श्रीलाल, काम निवृत्ति अर्थात् परदार निवृत्ति या परपुरुष-निवृत्तिको धर्म, और स्वदारप्रवृत्तिको काम कहनेमें चकित होता है। वाहरे श्रीलाल के पाण्डित्य! गृहस्थाश्रम, धर्म अर्थ काम तीनों का साधक है, परन्तु उन तीनों में भी परस्पर साध्य साधकता हो सकती है। जैसे—धर्म, अर्थ काम का साधक है; अर्थ, कामका साधक है आदि। खैर, हमारा कहना इतना ही है कि कुमारी विवाह के जो जो फल हैं वे सब विधवा विवाहसे भी मिलते हैं; इसलिये विधवाविवाह भी विधेय है।

आक्षेप (ङ)—जो पुरुष विषयों को न छोड़ सके वह गृहस्थधर्म धारण करे। यहाँ विषय शब्द से केवल काम की ही सूझी! (श्रीलाल)

समाधान—विषय तो पाँचों इन्द्रियों के होते हैं, परन्तु उन सब में यह प्रधान है। क्योंकि इसका जीतना सबसे अधिक कठिन है। जिसने काम को जीत लिया उसे अन्य विषयों को जीतने में कठिनाई नहीं पड़ती। इसलिये काम की मर्यादा करने वाला एक स्वतन्त्र अणुव्रत कहा गया है। अन्य भोगोपभोग सामग्रियों के व्रत को तो गुणव्रत या शिक्षाव्रत में डाल दिया है। उसका सातिचार पालन करते हुए भी व्रती रह सकता है, परन्तु ब्रह्मचर्याणुव्रत में अतिचार लगने से व्रत प्रतिमा नष्ट हो जाती है। क्या इससे सब विषयों में काम विषय की प्रधानता नहीं मालूम होती? ग्रन्थकारों ने इस शाठ्यमाचरेत्" इस नीति के अनुसार ऐसा ही प्रयोग करना पड़ा है। —सव्यसाची।

प्रधानता का स्पष्ट उल्लेख किया है 'विषयान्-इष्टकामिन्द्रियार्थान्'—सागारधर्मामृत टीका। क्या इससे काम की प्रधानता नहीं मालूम होती? विवाह के प्रकरण में तो यह प्रधानता और भी अधिक माननीय है, क्योंकि काम विषय को सीमित करने (आंशिक निवृत्ति) के लिये ही विवाह की आवश्यकता है। रसनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय आदि के विषयों को सीमित करने के लिये विवाह की ज़रूरत नहीं है। विवाह के बिना अन्य इन्द्रियाँ उच्छृंखल नहीं होतीं, सिर्फ़ यही इन्द्रिय उच्छृंखल होती है। इसलिये सागारधर्मामृत टीका में परविवाहकरण नाम के अतिचार की व्याख्या में पुत्र पुत्री के विवाह की आवश्यकता बतलाते हुए कहा है कि 'यदि स्वकन्याविवाहो न कार्यते तदा स्वच्छन्दचारिणी स्यात् ततश्च कुलसमयलोकविरोधः स्यात् विहितविवाहात्तु पतिनियतस्त्रीत्वेन न तथा स्यात्। एष न्यायः पुत्रेऽपि विकल्पनीयः' अर्थात् 'अगर अपनी पुत्री का विवाह न किया जायगा तो वह स्वच्छन्दचारिणी हो जायगी, परन्तु विवाह कर देने से वह एक पति में नियत हो जायगी। इसलिये स्वच्छन्दचारिणी न होगी। यही बात पुत्र के लिये भी समझ लेना चाहिये अर्थात् विवाह से वह स्वच्छन्दचारी न होगा'। यहाँ पुत्र पुत्री के लिये जो बात कही गई है वह विधवा पुत्री के लिये भी लागू है। आक्षेपक में अगर थोड़ी भी अक्ल होगी तो वह इन प्रमाणों से समझ सकेगा कि विवाह का मुख्य उद्देश्य क्या है, और वह विधवाविवाह से भी पूर्ण रूपमें सिद्ध होता है। सागारधर्मामृत के इस उल्लेख से आक्षेप नम्बर 'क' का भी समाधान होता है।

आक्षेप (च)—समाज की अपेक्षा से सन्तानोत्पत्ति को मुख्य बतलाना भूल है। समाज में १—२ लड़के न हुए न

सही, परन्तु विवाह वाले के न हुए तो उसका तो घर ही चौपट है।

समाधान—त्याग के गीत गाने वालों की यहाँ पोल खुल गई। उनके ढौंगों का भण्डाफोड होगया। अरे भाई! घर, गृहिणी को कहते हैं गृहं हि गृहिणीमाहुः—सागारधर्मामृत। लड़का न होने से न गृहिणी मरेगी, न गृही मरेगा, न दोनों के ब्रह्मचर्याणुव्रत में बाधा आयगी, न महाव्रत धारण करने का अधिकार छिन जायगा। मनुष्य जीवन के जो वास्तविक उद्देश्य हैं उनका एक भी साधन नष्ट न होगा। क्या इसी का नाम चौपट हो जाना है? बनावटी धर्म के वेष में रंगे हुए ढौंगियों! क्या यही तुम्हारा जीवन सर्वस्व है? हाँ, सन्तान के न होने से समाज की हानि है, क्योंकि समाज मोक्ष नहीं जाती न मुनि बनती है। अगर वह मुनि बन जाय तो नष्ट हो जाय। एक एक दो दो मिलकर ही तो समाज है। सन्तान के अभाव में समाज नष्ट हो सकती है, परन्तु सन्तान के अभाव में व्यक्ति तो मोक्ष तक जासकता है। अब समझो कि सन्तान किसके लिये मुख्य फल कहलाया? क्या इतने स्पष्ट प्रमाणों के रहते हुए भी तुम्हारा मुख्य गौण का प्रश्न बना हुआ है?

आक्षेप (छ)—कुमारी और विधवा को स्त्री समान समझकर समान कर्त्तव्य बतलाना भूल है। माता बहिन वधू सभी स्त्री हैं, परन्तु बहिन माता अभोज्य है, वधू भोज्य है।

(श्रीलाल)

समाधान—भोज्य-भोजक सम्बन्ध की नीच और बर्बर कल्पनाका हम समाधानकर चुके हैं। जो हमारी बहिन है वह हमारे बहिनेउ की बहिन नहीं है। जो हमारी माता है वह हमारे पिता की माता नहीं है। हमारी वधू दूसरे की वधू नहीं है। इसलिये यह भोज्याभोज्यता आपेक्षिक है। सर्वथा

अभोज्यता किसी में नहीं है। बहिन माता आदि ये नातेदारी के शब्द हैं, इसलिये नातेदारी की अपेक्षा से इनकी भोज्याभोज्यता की कल्पना की है। कुमारी और विधवा ये अवस्था-विशेष के शब्द हैं, इसलिये इनकी भोज्याभोज्यता अवस्था के ऊपर निर्भर है। जबतक कुमारी या विधवा हैं तब तक अभोज्य हैं जब उस कुमारी या विधवा का विवाह हो जायगा तब वह भोज्य होजायगी। भोज्य तो वधू है, फिर भले ही वह कुमारी रही हो या विधवा। मातृत्व और भगनीत्व सम्बन्ध जन्म से मरण तक स्थायी है। कौमार्य और वैधव्य ऐसे सम्बन्ध नहीं है। उनको बदलकर वधू का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। स्त्री होने से ही कोई भोज्य नहीं होजाती, वधू होने से भोज्य होती है। मातृत्व, भगनीत्व अमिट है, कौमार्य और वैधव्य अमिट नहीं हैं। इसलिये माता और भगिनी के साथ विवाह नहीं किया जासकता किन्तु कुमारी या विधवा के साथ किया जा सकता है। आक्षेपक के आक्षेप को अगर हम विधुर-विवाह के निषेध के लिये लगावें तो आक्षेपक क्या उत्तर देगा? देखिये—आक्षेप—"कुमार और विधुर को पुरुष समान समझकर समान कर्तव्य बतलाना भूल है। पिता, भाई, पति सभी पुरुष हैं, परन्तु भाई और पिता अभोज्य हैं, पति भोज्य है"। आक्षेपक के पास इसका क्या उत्तर है? वही उत्तर उसे विधवाओं के लिये लगा लेना चाहिये।

आक्षेप (अ)—विधवाविवाह के पक्षपाती भी अपने घर की विधवाओं के नाम पर मुँह सकोड़ लेते हैं।

समाधान—यह कोई आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक विधवा का विवाह ज़रूर करना चाहिये। अगर कोई विधवा विवाह नहीं करना चाहती तो सुधारक का यह कर्तव्य नहीं है कि वह ज़बर्दस्ती विवाह करदे। ज़बर्दस्ती विवाह करने का

रिवाज तो नादिरशाह के अवतार क्षितिपालकों के घर में होता है।

अगर वास्तव में किसी सुधारक में अपने घर में आवश्यक होने पर भी विधवाविवाह को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति नहीं है तो उसकी यह कमज़ोरी है। वह नैष्ठिक सुधारक नहीं है, सिर्फ़ पाक्षिक सुधारक है। जिस प्रकार पाक्षिक श्रावकों के होने से नैष्ठिक श्रावकों का अभाव नहीं कहा जा सकता और न वे निंदनीय हो सकते हैं, उसी तरह पाक्षिक सुधारकों के होने से नैष्ठिक सुधारकों का अभाव नहीं कहा जासकता और न उनकी निंदा की जासकती है।

आक्षेप (फ)—विधवाविवाह यूरुपियनों एवं मोहमडनों (मुसलमानों) में भी अनिवार्य नहीं है, क्योंकि यह नीच प्रथा है। (श्रीलाल)

समाधान—योरोप में तो कुमारी और कुमारों का विवाह भी अनिवार्य नहीं है। फ्राँस में तो इस कौमार्य का रिवाज इतना बढ़ गया है कि वहाँ जनसंख्या घट रही है। दूसरे देशों में भी कौमार्य का काफ़ी रिवाज है। इसलिये विवाह भी एक नीच प्रथा कहलाई। आक्षेपक को अभी कुछ मालूम ही नहीं है। विधवाविवाह अनिवार्य न होने के कई कारण हैं। एक कारण यह है कि विधवा और विधुर होते होते किसी का आधा जीवन निकल जाता है व किसी का तीन चतुर्थांश या इससे भी ज़्यादा जीवन निकल जाता है, ऐसे लोगों को इसकी आवश्यक्ता का कम अनुभव होता है। इसलिये वे लोग विवाह नहीं करते। नीचता के डर से वहाँ विधवाविवाह नहीं रुकते। अगर किसी जगह विधुरविवाह नीच प्रथा नहीं कहलाता और विधवाविवाह नीच प्रथा कहलाता है तो इससे सिर्फ़ इतना ही सिद्ध

होता है कि वहाँ के लोग तीव्र मिथ्यात्वी, घोर अत्याचारी, महान् पक्षपाती और अत्यन्त मदांध हैं। इन दुर्गुणों का अनुकरण करके जैनियों को ऐसे मदांध पापी क्यों बनना चाहिये ?

आक्षेप (ञ)—लॉर्ड घरानों में कतई विधवाविवाह नहीं होता। विधवाविवाह से उच्च नीच का भेद न रहेगा।

समाधान—लॉर्ड घराने का मतलब श्रीमन्त घराने से है। लॉर्ड कोई जाति नहीं है। साधारण आदमी भी श्रीमन्त और महर्द्धिक बनकर लॉर्ड बन सकते हैं। इन सब में विधवा विवाह होता है। हाँ, साधारण विधवाओं की अपेक्षा लॉर्ड घराने की विधवाएँ कुछ कम संख्या में विवाह कराती हैं। यह उच्चता नीचता का प्रश्न नहीं, किन्तु साम्पत्तिक प्रश्न है। लॉर्ड घराने की अपार सम्पत्ति छोड़कर विवाह कराना उन्हें उचित नहीं जँचता। जिन्हें जँचता है वे विवाह करा ही लेती हैं। दक्षिण के डेढ़ लाख जैनियों में, आर्यसमाजियों में, ब्रह्मसमाजियों में, विधवाविवाह होता है परन्तु वे भंगी चमार नहीं कहलाते।

आक्षेप (ट)—सूरजभान का जीवदया की पुकार मचाकर विधवाविवाह को कर्तव्य बतलाना अनुचित है। जीवदया धर्म है, न कि शरीर दया। मन्दिर बनवाना धर्म है और प्याऊ लगवाने से अधर्म है। अगर कोई व्यभिचारिणी कामभिक्षा माँगे तो वह नहीं दी जासकती। जो दया धर्मवृद्धि का कारण है, वही वास्तविक दया है। (श्रीलाल)

समाधान—बेचारा आक्षेपक दान के भेदों को भी न समझा। उसे जानना चाहिये कि आत्मगुणों की उन्नति को लक्ष्य में लेकर जो दान दिया जाता है वह पात्रदान है, न कि दयादान। दयादान तो शरीर को लक्ष्य में लेकर ही दिया

जाता है, फिर भले ही उससे धर्म किया जाय या न किया जाय। आक्षेपक प्याऊ लगवाने को अधर्म कहता है, परन्तु सागारधर्मामृत में प्याऊ और सत्र को स्थापित करने का उपदेश दिया गया है—

"सत्रमप्यनुकम्प्यानां सृजेदनुजिघृक्षया।
सत्रमन्नप्रदानस्थानं, अपिशब्दात्प्रपां च"॥

अर्थात्—दीन प्राणियों के उपकार की इच्छा से सत्र (भोजनशाला जहाँ गरीबों को मुफ्त में भोजन कराया जाता है) और प्याऊ खोलें। दान, गृहस्थों का मुख्य कर्तव्य है। जब आक्षेपक दान के विषय का साधारण ज्ञान भी नहीं रखता तो गृहस्थधर्म कैसे निभाता होगा? जो गृहस्थ प्यासों को पानी पिलाने में भी अधर्म समझता है वह निर्दय तथा क्रूर जीव जैनी कैसे कहला सकता है?

व्यभिचारिणि को कामभिक्षा नहीं दी जासकती, परन्तु आक्षेपक के मतानुसार व्यभिचारियों को कामभिक्षा दी जा सकती है, क्योंकि अगर द्वितीय विवाह कराने वाली स्त्री व्यभिचारिणी है, तो द्वितीय विवाह कराने वाला पुरुष भी व्यभिचारी है। क्या पुरुष का दूसरा विवाह धर्मवृद्धि का कारण है? यदि हाँ, तो स्त्री का दूसरा विवाह भी धर्मवृद्धि का कारण है, जिसकी सिद्धि पहिले विस्तार से की जा चुकी है।

जो चार चार स्त्रियों को निगलजाने वाले को तो धर्मात्मा समझता हो, किन्तु पुनर्विवाह करने वाली स्त्रियों को व्यभिचारिणी कहता हो, उसकी घृणतापूर्ण नीचता का कुछ ठिकाना भी है!

आक्षेपक स्वीकार करता है और हम भी कह चुके हैं कि विवाहका लक्ष्य कामशान्ति, स्वदारसन्तोष, स्व-पतिसन्तोष अर्थात् ब्रह्मचर्याणुव्रत है। विवाह कामभिक्षा नहीं है। क्या

आक्षेपक अपनी बहिन बेटियों के विवाह को कामभिक्षा समझता है? यदि नहीं, तो विधवाओं के विवाह को कामभिक्षा नहीं कह सकते। विधवाओं का विवाह धर्मवृद्धि का कारण है, यह बात हम पहिले सिद्ध कर चुके हैं।

आक्षेप (ठ)—विवाह से कामलालसा घटती है, इस का एक भी प्रमाण नहीं दिया। विवाह होने पर भी कामलालसा नष्ट नहीं हुई, उलटी बढ़ी है, जैसे रावणादिक की।

(विद्यानन्द)

समाधान—आबालगोपाल प्रसिद्ध बातको शास्त्र प्रमाणों की ज़रूरत नहीं होती। फिर भी प्रमाण चाहिये तो आशाधर जी के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये कि अगर पुत्र पुत्री का विवाह न किया जायगा तो वे स्वच्छन्दचारी हो जायँगे (देखो आक्षेप 'ङ')। विवाह से अगर कुलसमयलोकविरोधी यह स्वच्छन्दाचार घटता है तो यह क्या कामलालसा का घटना न कहलाया? विवाह होने पर भी अगर किसी की कामलालसा नष्ट नहीं होती तो इसके लिये हम कह चुके हैं कि उपाय १०० में दस जगह असफल भी होता है। तीर्थङ्करों के उपदेश रहने पर भी अगर अभव्य का उद्धार न हो, सूर्य के रहने पर भी अगर उल्लू को न दिखे तो इसमें तीर्थङ्कर की या सूर्य की उपयोगिता नष्ट नहीं होती है। इसी तरह विवाह के होने पर अगर किसी का दुराचार न रुके तो इससे उसकी उपयोगिता का अभाव नहीं कहा जा सकता। आक्षेपक ने यहाँ व्यभिचार दोष दिखलाकर न्यायनभिज्ञता का परिचय दिया है। इस दृष्टि से तो तीर्थङ्कर और सूर्य की उपयोगिता भी व्यभिचरित कहलाई। आक्षेपक को जानना चाहिये कि कारण के सद्भाव में कार्य के अभाव होने पर व्यभिचार नहीं होता, किन्तु कार्य के सद्भावमें कारण के अभाव होने पर व्यभि-

चार होता है। अग्नि कारण है: परन्तु उसके होने पर भी अगर धुआँ न निकले तो अग्नि और धुआँ का कार्य कारणभाव व्यभिचरित नहीं कहलाता। हमने इसी बातके समर्थन में कहा था कि "चिकित्सा करने पर भी लोग मरते हैं, शास्त्री होने पर भी लोग धर्म नहीं समझते"। इस पर आप कहते हैं कि "वह चिकित्सा नहीं, चिकित्साभास है; वह शास्त्री, शास्त्री नहीं है"। बहुत ठीक, हम भी कहते हैं कि जिस विवाह के बाद कामलालसा शान्त नहीं हुई, किन्तु बढ़ी है, वह विवाह नहीं, विवाहाभास है। वास्तविक विवाह तो कामलालसा को अवश्य शांत करेगा। इसलिये विधवाविवाह से भी कामलालसा की शांति होती है।

आक्षेप (ड)—यह कोई नियम नहीं कि विवाहके बिना प्रत्येक व्यक्ति को देखकर पापवासना जागृत हो जाय। वासुपूज्य अकलङ्क आदि के विवाह नहीं हुए। क्या सभी असंयमी थे?

समाधान—कामलालसा की आंशिक शांति के लिए विवाह एक औषधि है। वासुपूज्य आदि ब्रह्मचारी थे। उनमें कामलालसा थी ही नहीं, इसलिये उन्हें विवाह की भी ज़रूरत नहीं थी। "अमुक आदमी सख्त बीमार है। अगर उसकी चिकित्सा न होगी तो मरजायगा"—इस के उत्तर में अगर यह कहा जाय कि—वैद्य के पास तो सौ दोसौ आदमी जाते हैं, बाक़ी क्यों नहीं मरजाते? तो क्या यह उत्तर ठीक होगा? अरे भाई! बीमार को औषधि चाहिये, नीरोगको औषधि नहीं चाहिये। इसी तरह कामलालसा वाले मनुष्य को उस की आंशिक शांति के लिए विवाह की आवश्यकता है, न कि ब्रह्मचारी को। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि विवाह का मुख्य उद्देश्य लड़के बच्चे नहीं हैं। बालब्रह्मचारियों के

सन्तान नहीं होती, फिर भी वे विवाह नहीं कराते। क्योंकि उन्होंने विवाह का मुख्य उद्देश्य विवाह के बिना ही पूर्ण कर लिया है। मुख्य उद्देश्य की पूर्ति होने पर गौण उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य नहीं किया जाता।

आक्षेप (ढ)—कामवासना के शान्त न होने के कारण विधवाविवाहके विरोधी, विधवाविवाहका विरोध नहीं करते, किन्तु उनसे विरोध कराने का कारण है भगवान महावीर का आगम। आप उत्तर दें। आपके प्रमाण हमें जँचे तो हम आप के आन्दोलन में आपका हाथ बटावेंगे।

समाधान—नवमाँ प्रश्न भगवान के आगम के विचार का नहीं था। उसका विचार तो पहिले प्रश्नों में अच्छी तरह होगया। इसमें तो यह पूछागया है कि विवाहसे कामलालसा के परिणामों में न्यूनता आती है या नहीं? यदि आती है तो विधवाविवाह आवश्यक और उचित है। यदि नहीं आती तो विधवाविवाह अनावश्यक है। इसीलिये हमने युक्ति और शास्त्र प्रमाणों से सिद्ध किया है कि विवाह से संक्लेशता कमती होती है। युक्ति और तर्क के बलपर हमारे आन्दोलन में वही शामिल होगा जो सत्यप्रिय होगा, आत्मोद्धार का इच्छुक होगा, देशसमाज का रक्षक होगा। सव्यसाची, टके के गुलामों की पर्वाह नहीं करता। जिस प्रकार प्राचीन सव्य-साची ने कृष्ण का बल पाकर अपने गाण्डीव धनुष से निकले हुए बाणों से कौरव दल का अवसान किया था उसी प्रकार आधुनिक सव्यसाची भगवान महावीर का बल पाकर अपने ज्ञान गाण्डीव से निकले हुए तर्करूपी बाणों से स्थितिपालक दल का अवसान करेगा।

आक्षेप (ण)—सव्यसाची महोदय की दृष्टि में व्यभि-चार को रोकने का उपाय विवाहमार्ग को उड़ाना है। आपको

कुछ होश भी है कि आप ऊपर क्या कुछ लिख आये हैं ? पहिले उसे जलाकर खाक कर डालो तब दूसरी बात कहना।

समाधान—हमने कहा था कि "यदि विवाह होने पर भी किन्हीं लोगों की कामवासना शान्त नहीं होती तो इससे विधवाविवाह का निषेध कैसे हो सकता है। फिर तो विवाह मात्र का निषेध होना चाहिये।" पाठक देखें कि हमारा यह वक्तव्य क्या विवाह मार्ग को उड़ाने का है ? हम तो विधवा-विवाह और कुमारी विवाह दोनों के समर्थक हैं। परन्तु जो लोग जिस कारण से विधवाविवाह अनावश्यक समझते हैं, उन्हें उसी कारण से कुमारीविवाह भी अनावश्यक मानना पड़ेगा। असली बात तो यह है कि अगर किसी जगह विवाह (कुमारीविवाह या विधवाविवाह) का फल न मिले तो क्या विवाहप्रथा उड़ा देना चाहिये ? हमारा कहना है कि नहीं उड़ाना चाहिये। जब कि आक्षेपक का कहना है कि उड़ा देना चाहिये, क्योंकि आक्षेपक ने विधवाविवाह की प्रथा उड़ा देने के लिये उसकी निष्फलता का ज़िकर किया है। ऐसी निष्फलता कुमारीविवाह में भी हो सकती है, इसलिये आक्षेपक के कथनानुसार वह प्रथा भी उड़ा देने लायक ठहरी।

आक्षेप (त)—आदिपुराण, सागारधर्मामृत, पं० मेधावी, पं० उदयलालजी, शीतलप्रसादजी, दयाचन्द गोयलीय आदि ने पुत्रोत्पत्ति के लिये ही, विवाह कामभोग का विधान किया है, कामवासना की पूर्ति को कामुकता बतलाया है।

समाधान—कामलालसा की पूर्ति कामुकता भले ही हो परन्तु कामलालसा की निवृत्ति कामुकता नहीं है। स्वस्त्रीरमण को कामुकता भले ही कहा जाय, परन्तु परस्त्रीत्याग कामुकता नहीं है। यह कामलालसा की निवृत्ति है। हमने शास्त्रप्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने की अस-

मर्थता में ही गृहस्थ धर्म अङ्गीकार करना चाहिये। अमृतचंद्र जी और आशाधरजी के श्लोक हम लिख चुके हैं। फिर भी आक्षेपक का पूछना है कि प्रमाण बताओ! ख़ैर, और भी प्रमाण लीजिये।

सागारधर्मामृत के द्वितीय अध्याय का प्रथम श्लोक—"त्याज्यानजस्र" आदि पहिले ही लिखा जा चुका है। 'यदि कन्या विवाहो न कार्यते' आदि उद्धरण आक्षेप (ङ) में देखो।

'विषयसुखोपभोगेनैव चारित्रमोहोदयोद्रेकस्य शक्य-प्रतीकारत्वात् तद्द्वारेणैव तस्मादवत्यात्मानमिव साधर्मिकमपि विषयेभ्यो व्युपरमयेत्। विषयेषु सुखभ्रान्तिकर्माभिमुखपाक-जाम्। छित्वातदुपभोगेन त्याजयेत्तान्स्ववत्परान्।'

अर्थात्—चारित्रमोह का जब तीव्र उदय होता है तो विषयसुख के उपभोग से ही उसका प्रतीकार (निवृत्ति) हो सकता है, इसलिये उसका उपभोग करके निवृत्त होवे और दूसरे को निवृत्त करे।

सुखभ्रान्ति हटाने का यह वक्तव्य विवाह की आवश्यकता के लिये कहा गया है। खैर, और भी ऐसे प्रमाण दिये जासकते हैं। निवृत्तिमार्गप्रधान जैनधर्ममें निवृत्तिपरक प्रमाणों की कमी नहीं है। यहाँ पर मुख्य बात है समन्वय की, अर्थात् जब विवाह का उद्देश्य कामलालसा की निवृत्ति अर्थात् आंशिक ब्रह्मचर्य है तब पुत्रोत्पत्ति का उल्लेख प्राचीन लेखकों ने क्यों किया? नासमझ लोगों से तो क्या कहा जाय, परन्तु समझदार समझते हैं कि पुत्रोत्पत्तिका उल्लेख भी कामलालसा की निवृत्ति के लिये है। जैनधर्म प्रथम तो कहता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालो। अगर इतना न हो सके तो विवाह करके आंशिक निवृत्ति (परदारनिवृत्ति) करो। परन्तु लक्ष्य तो पूर्ण निवृत्ति है इसलिये धीरे धीरे उसके निवृत्ति-अंश बढ़ाये जाते

हैं और उसमें कहा जाता है कि तुम्हें सन्तान के लिये ही सम्भोग करना चाहिये। जब उसको यह बात समझ में आ-जाती है तब वह ऋतुस्नान के दिन ही काम सेवन करता है। इस तरह प्रति मास २६ दिन उसके ब्रह्मचर्य से बीतने लगते हैं। आचार्यों ने परदारनिवृत्ति के बाद स्वस्त्री सम्भोग-निवृत्ति का भी यथासाध्य विधान बतलाया है। इसलिये कहा है "सन्ता-नार्थमृतावेव"। अर्थात् सन्तान के लिये ऋतुकालमें ही सेवन करे। इससे पाठक समझ गये होंगे कि सन्तान की बात भी कामलालसा की निवृत्ति को बढ़ाने के लिये है।

आचार्यों ने जहां सन्तान के उत्पादन, लालन, पालन आदि की बातें लिखी हैं उसका प्रयोजन यही है कि "जब तुम आंशिक प्रवृत्ति और आंशिक निवृत्ति के मार्ग में आये हो तो परोपकार आदि गौण उद्देशों का भी खयाल रक्खो, क्योंकि ये कामलालसा की निवृत्ति रूप मुख्य उद्देश को बढ़ाने वाले हैं, साथ ही परोपकार रूप भी हैं।" यदि अन्नप्राप्ति का मुख्य उद्देश्य सिद्ध हो गया है तो भी भूसा की प्राप्ति का गौण उद्दे-श्य भी छोड़ने योग्य नहीं है।

आक्षेप (थ)—कामलालसा की निवृत्ति तो वेश्यासेवन, परस्त्रीसेवन से भी हो सकती है, फिर विवाह की आवश्यकता ही क्या ?

समाधान—कामलालसाके जिस अंशकी निवृत्ति करना है, वह वेश्यासेवन और परस्त्रीसेवन ही है। इसी कामलालसा से बचने के लिये तो विवाह होता है। इससे विवाह का लक्ष्य आंशिक ब्रह्मचर्य या स्वदारसन्तोष कैसे सिद्ध हो सकता है ?

इससे पाठक समझेंगे कि हमारे कथनानुसार विवाह मज़े के लिये नहीं है, परन्तु तीव्र चारित्र मोह के उदय को शांत करने के लिये पेयौषधि के समान कुछ भोग भोगने पड़ते हैं जैसा

कि अमृतचन्द्र आचार्य और आशाधरजी ने कहा है, जो कि हम लिख चुके हैं।

स्त्रीपुरुष के अधिकार भेद के विषय में कहा जा चुका है। विधवाविवाह को ज़हर आदि कहना युक्ति से जीतने पर गालियों पर आजाना है।

आक्षेप (द)—यदि विवाह से ही कामलालसा की निवृत्ति मानली जाय तो ब्रह्मचर्य आदि व्रतों की क्या आवश्यकता है, क्योंकि ब्रह्मचर्य का भी तो काम की निवृत्ति के लिये उपदेश है?

समाधान—अभी तक आप कामलालसा की निवृत्ति को बुरा समझते थे। इसके समर्थकों को आपने पागल, मोही, नित्यनिगोदिया (निगोदिया), अज्ञानी, रट्टू तोते आदि लिख मारा था। यहाँ आपने इसे ब्रह्मचर्य का साध्य बना दिया है।

ख़ैर, कुछ तो ठिकाने पर आए। अब इतना और समझ लीजिये कि विवाह, ब्रह्मचर्य अणुव्रत का मुख्य साधक है। इसलिये विवाह और ब्रह्मचर्यव्रत के लक्ष्य में कोई विरोध नहीं है। ब्रह्मचर्यव्रत अन्तरङ्गसाधक है, विवाह बाह्यसाधक, इस लिये कोई निरर्थक नहीं है। एक साध्य के अनेक साधक होते हैं।

आक्षेप (ध)—जिनकी कामलालसा प्रबल है, वे बिना उपदेश के ही स्वयमेव इस पथ को पकड़ लेती हैं। फिर आप क्यों अपना अहित करते हैं?

समाधान—जिनकी कामलालसा प्रबल है, वे अभी स्वयमेव विधवाविवाह के मार्ग को नहीं पकड़तीं, वे व्यभिचार के मार्ग को पकड़ती हैं। उसकी निवृत्ति के लिये विधवाविवाह के आन्दोलन की ज़रूरत है। विवाह न किया जावे तो कुमारियाँ भी अपना मार्ग ढूँढ लेंगी, लेकिन वह व्यभिचार का मार्ग होगा। इसलिये लोग उनका विवाह कर देते हैं। फल यह

होता है कि व्यभिचार मार्ग बहुत कुछ रुक जाता है। ठीक यही बात विधवाओं के लिये है।

दसवाँ प्रश्न

'क्या विधवा हो जाने से ही आजन्म ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति आजाती है?' इसके उत्तर में हमने कहा था कि 'नहीं'। दूसरे आक्षेपक (विद्यानन्द) ने भी हमारी यह बात स्वीकार करली है परन्तु पहिले आक्षेपक कहते हैं कि यह धृष्टता है। इसका मतलब यह निकला कि संसार में जितनी विधवाएँ हुई हैं वे सब व्यभिचारिणी हैं। आक्षेपक की इस मूर्खता के लिये क्या कहा जाय? प्रत्येक विधवा ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकती है-इसका तो यही अर्थ है कि कोई कोई पाल सकती हैं, जिनके परिणाम विरक्तिरूप हों। इसलिये हमने लिखा था कि यह बात परिणामों के ऊपर निर्भर है। परन्तु श्रीलाल, न तो परिणामों की बात समझा, न उस वाक्य का मतलब। श्रीलाल यह भी कहता है—'सरागता से मुनि में भ्रष्टता नहीं आती, न पर पुरुष से रमणरूप भाव से विधवा भ्रष्ट होती है।' हम अपने शब्दों में इसका उत्तर न देकर आक्षेपक के परम सहयोगी पं० मक्खनलाल के वाक्यों में लिखते हैं:—

"सरागता से विधवाएँ शीलभ्रष्ट ज़रूर कहलायँगी। मुनि भी सरागता से भ्रष्ट माना जाता है।" अब ये दोनों दोस्त आपस में निबट लें।

दोनों ही आक्षेपकों ने एक ही बात पर विशेष ज़ोर दिया है। "विधवाविवाह अधर्म है; उसको कोई तीसरा मार्ग नहीं है; विधवा का विवाह नहीं हो सकता, उसे विवाह नहीं, कराव या धरेजा कहते हैं। आप के पास क्या युक्ति प्रमाण है? आप अपनी इच्छा से ही विधवाविवाह का उपदेश क्यों

करते हो ?" आदि। इन सब बातों का उत्तर पहिले अच्छी तरह दिया जा चुका है। अब बारबार उत्तर देने की ज़रूरत नहीं है।

हाँ, अब दो आक्षेप रह जाते हैं जिनका उत्तर देना है। इनमें अन्य आक्षेपों का भी समावेश हो जाता है।

आक्षेप (क)—प्रत्येक मनुष्य में तो शराब के त्यागने की शक्ति का प्रगट होना भी अनिवार्य नहीं है तब क्या शराब पी लेना चाहिये ?

समाधान—विधवाविवाह की जैसी और जितनी उपयोगिता है वैसी यदि शराब की भी हो तो पी लेना चाहिये।

(१) विधवाविवाह परस्त्रीसेवन या परपुरुषसेवन से बचाता है। इसलिये अणुव्रत का साधक है। क्या शराब अणुव्रत का साधक है ?

(२) विधवाविवाह से भ्रूणहत्या रुकती है। क्या शराब से भ्रूण या कोई हत्या रुकती है ?

(३) जैनशास्त्रों में जैसे विधवाविवाह का निषेध नहीं पाया जाता, क्या वैसा शराब का निषेध नहीं पाया जाता ?

(४) पुरुषसमाज अपना पुनर्विवाह करती है और स्त्रियों को नहीं करने देना चाहती। क्या इसी तरह पुरुष समाज शराब पीती है और क्या स्त्रियों को नहीं पीने देना चाहती ?

(५) जिस विधवा के सन्तान न हो और उसे सन्तान की आवश्यकता हो तो उसे विधवाविवाह अनिवार्य है। क्या इसी तरह शराब भी किसी ऐसे कार्य के लिये अनिवार्य है ?

(६) किसी को वैधव्य जीवन में आर्थिक कष्ट है, इसलिये विधवाविवाह करना चाहती है, क्या शराब भी आर्थिक कष्ट को दूर कर सकती है ?

(७) विधवाविवाह से जो सामाजिक और धार्मिक लाभ हमने सिद्ध किये हैं, क्या शराब से भी वे या वैसे लाभ आप सिद्ध कर सकते हैं ?

(८) विधवाएँ जिस तरह हीन दृष्टि से देखी जाती हैं, क्या उसी तरह शराब न पीने वाले देखे जाते हैं ?

यदि मद्यपान में लाभ हो तो जिसमें उसके त्याग करने की शक्ति नहीं है उसको उसका विधान किया जासकता है, अन्यथा नहीं।

पूर्ण ब्रह्मचर्य की शक्ति प्रगट न होना विधवाविवाह का एक कारण है। जब तक अन्य कारण न मिलें तब तक विधवाविवाह का विधान नहीं किया जाता है। उसके अन्य कारण मौजूद नहीं हैं इसीलिये उसका विधान किया गया है।

आक्षेप (ख)—कार्यों की बहुतसी जातियाँ हैं—(१) मुनिधर्मविरुद्ध श्रावकानुरूप (२) गृहस्थविरुद्ध मुनिअनुरूप (३) उभयविरुद्ध (४) उभयअनुरूप। विवाह प्रथम भेद में है।

समाधान—विधवाविवाह भी विवाह है इसलिये वह मुनिधर्म के विरुद्ध होने पर भी श्रावकानुरूप है। आप विधुर-विवाह को विवाह मानते और विधवाविवाह को विवाह नहीं मानते-यह बिलकुल पक्षपात और मिथ्यात्व है। हम पहिले विधवाविवाह को विवाह सिद्ध कर चुके हैं।

बलाद्वैधव्य की शिक्षा जैनधर्म की शिक्षा नहीं हो सकती। आचार्यों ने विधवाविवाहका कहीं निषेध नहीं किया। हाँ, धूर्तता और मूर्खता पुराने ज़माने में भी थी। सम्भव है आजकल के पण्डितों के समान कोई अज्ञानी और धूर्त हुआ हो और उसने जैनधर्म के विरुद्ध, जैनधर्म के नाम पर ही कुछ अंट संट लिख मारा हो। परन्तु ऐसी

कुपुस्तकों को पुराने ज़माने का जैनगज़ट ही समझना चाहिये। वास्तव में कोई जैन ग्रन्थ विधवाविवाह का विरोधी नहीं हो सकता और न कोई प्रसिद्ध जैनग्रन्थ है ही। नाना तरह की दीक्षाएँ जो शास्त्रों में पाई जाती हैं वे विशेष व्रतियों के लिये ही हैं—साधारण अणुव्रतियों के लिये नहीं।

वृद्धों को मुनि बनते न देखकर हम में चलमलिन आदि दोष कैसे पैदा होंगे? इससे तो यही सिद्ध होता है कि जब वृद्ध लोग ब्रह्मचर्य से नहीं रह पाते और उनका ब्रह्मचर्य से न रहना इतना निश्चित है कि भद्रबाहु ने पहिले से ही कह दिया है, तब विधवाएँ ब्रह्मचर्य से कैसे रहेंगी?

भद्रबाहु श्रुतकेवली ने वृद्धों के मुनि न होने की विशेष बात तो कही, परन्तु विधवाओं के विवाह की विशेष बात न कही, इससे मालूम होता है कि विधवाविवाह प्राचीनकाल से चला आता है। यह कोई ऐसी विशेष और अनुचित बात न थी जिसका कि चन्द्रगुप्त को दुःस्वप्न होता और भद्रबाहु श्रुतकेवली उसका फल कहते। जो चाहे, जैसे चाहे, विचार करले, उसे स्वीकार करना पड़ेगा कि गृहस्थों के लिये जैनधर्म में विधवाविवाह विरोध की परमाणु बराबर भी गुञ्जायश नहीं है।

इस प्रश्न में यह पूछा गया है कि धर्मविरुद्ध कार्य किसी हालत में (उससे बढ़कर धर्मविरुद्ध कार्य अनिवार्य होने पर) कर्तव्य हो सकता है या नहीं? इसके उत्तर में हमने कहा था कि हो सकता है। यह बात अनेक उदाहरणों से भी समझाई थी। विधवाविवाह व्यभिचार है आदि बातों का उत्तर हम दे चुके हैं।

आक्षेप (क)—जो कार्य धर्मविरुद्ध है, वह त्रिकाल में भी (कदापि) धर्मानुकूल नहीं हो सकता। पाँच पापों को धर्मानुकूल सिद्ध कीजिये। (श्रीलाल, विद्यानन्द)

समाधान—यदि इस विषय में शास्त्रार्थ की दृष्टि से लिखा जाय तब तो जैसे को तैसा ही उत्तर दिया जा सकता है। जैनशास्त्रों में तो किसी अपेक्षा से गधे के सींग का भी अस्तित्व सिद्ध किया गया है। परन्तु हमें पाठकों की जिज्ञासा का भी ख्याल है इसलिये तदनुकूल ही उत्तर दिया जाता है।

पाँच पापों में हिंसा मुख्य है। परन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से वह धर्मानुकूल अर्थात् कर्तव्य हो जाती है। जैसे—युद्ध में हिंसा होती है, परन्तु सीता की धर्मरक्षा के लिये रामचन्द्र ने अगणित प्राणियों की हिंसा कराई। अणुव्रती युद्ध में जाते हैं, ऐसा शास्त्रों में स्पष्ट कथन है। शूकर ने मुनि की रक्षा करने के लिये सिंह को मार डाला और खुद भी मरा, पुण्यबन्ध किया और स्वर्ग गया। मन्दिर बनवाने में तथा अन्य बहुत से परोपकार के आरम्भ कार्यों में हिंसा होती है परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण कही गई है। जिन अमृतचन्द्र आचार्य की दुहाई आक्षेपक ने दी है, वे ही कहते हैं—

> अविधायापि हि हिंसां हिंसाफलभाजनं भवत्येकः।
> कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसाफलभाजनं न स्यात् ॥
> कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फलकाले।
> अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्यहिंसाफलं विफलम् ॥
> हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे।
> इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत् ॥

एक आदमी हिंसा न करके भी हिंसाभागी होता है, दूसरा हिंसा करके भी हिंसाभागी नहीं होता। किसी की हिंसा, हिंसाफल देती है, किसी की हिंसा, अहिंसाफल देती है। किसी की अहिंसा, हिंसा फल देती है किसी कि अहिंसा अहिंसाफल देती है।

क्या इससे यह बात नहीं सिद्ध होती कि कहीं हिंसा भी

कर्तव्य हो जाती है और कहीं अहिंसा भी अकर्तव्य हो जाती है? अङ्गच्छेदन पाप है परन्तु बालकों के कर्णछेद आदि में पाप नहीं माना जाता। किसी सती के पीछे कुछ बदमाश पड़े हों तो उसके सतीत्व की रक्षा के लिये झूठ बोलना या उसे छिपा लेना (चोरी) भी अनुचित नहीं है। परविवाहकरण अणुव्रत का दूषण है परन्तु अपनी सन्तान का विवाह करना या व्यभिचार की तरफ़ झुकने वालों को विवाह का उपदेश देना दूषण नहीं है। परिग्रह पाप है परन्तु धर्मोपकरणों का रखना पाप नहीं है। इस तरह पाँचों ही पाप अपेक्षा भेद से कर्तव्याकर्तव्य रूप हैं। आक्षेपक एक तरफ़ तो यह कहते हैं कि धर्मविरुद्ध कार्य त्रिकाल में भी धर्मानुकूल नहीं हो सकता परन्तु दूसरी तरफ़, त्रिकाल की बात जाने दीजिये एक ही काल में, कहते हैं कि पुनर्विवाह विधवा के लिये धर्मविरुद्ध है और विधुर के लिये धर्मानुकूल है। क्या यहाँ पर एक ही कार्य द्रव्यादि चतुष्टय में से द्रव्यअपेक्षा विविधरूप नहीं कहा गया है। ये ही लोग कहते हैं कि अष्टद्रव्य से जिनपूजन धर्म है, परन्तु भंगी अगर ऐसा करे तो धर्म डूब जायगा। यदि जिनपूजन किसी भी तरह अधर्म नहीं हो सकता तो भंगी के लिये अधर्म क्यों हो जायगा? मतलब यह है कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा लेकर एक कार्य को विविधरूप में ये खुद मानते हैं। इसीलिये सप्तम प्रतिमा के नीचे विवाह (भले ही वह विधवाविवाह हो) धर्मानुकूल है। ब्रह्मचर्य प्रतिमा से लेकर वह धर्म-विरुद्ध है।

आक्षेप (ख)—विवाह क्रिया स्वयं सदा सर्वदा सर्वथा धार्मिक ही है। हाँ! पात्र अपात्र के भेद से उसे धर्म-विरुद्ध कह दिया जाता है।

समाधान—जहाँ पात्र (द्रव्य) अपात्र की अपेक्षा है वहाँ सर्वथा शब्द का प्रयोग नहीं होता है। सुधारक यही तो कहते हैं कि द्रव्य (पात्र) क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से किसी कार्य की धर्मानुकूलता या धर्मविरुद्धता का निर्णय करना चाहिये। इसलिये एक पात्र के लिये जो धर्मविरुद्ध है दूसरे के लिये वही धर्मानुकूल हो सकता है। ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण करने वाली विधवा का विवाह धर्मविरुद्ध है, अन्य विधवाओं को धर्मानुकूल है। यही तो पात्रादि की अपेक्षा है।

आक्षेप (ग)—सव्यसाची ने विवाह को धर्मानुकूल अर्थात् धार्मिक तो मान लिया। सालभर पहिले तो उसे सामाजिक, सामाजिक चिल्लाते थे।

समाधान—ब्रह्मचर्य प्रतिमा से नीचे कुमार कुमारी और विधवा विधुर के लिये विवाह धर्मानुकूल है—यह मैं सदा से कहता हूँ। परन्तु धर्मानुकूल और धार्मिक एक ही बात नहीं है। व्यापार करना, घूमना, भोजन करना, पेशाब करना आदि कार्य धर्मानुकूल तो हैं परन्तु धार्मिक नहीं हैं। धर्म का अङ्ग होना एक बात है और धर्ममार्ग में बाधक न होना दूसरी बात है।

आक्षेप (घ)—बहुत अनर्थ को रोकने के लिये थोड़ा अनर्थ करने की आज्ञा जैनधर्म नहीं देता।

समाधान—मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि एक अनर्थ को रोकने के लिये दूसरा अनर्थ मत करो परन्तु महान अनर्थ रोकने के लिये अल्प अनर्थ कर सकते हो। व्यभिचार अनर्थ रोकने के लिये ही तो विवाह अनर्थ किया जाता है। जितने प्रवृत्यात्मक कार्य हैं वे सब अनर्थ या पाप के अंश हैं। जब वे कार्य अधिक अनर्थों को रोकने वाले होते हैं तब वे अनर्थ या पाप शब्द से नहीं कहे जाते। परन्तु हैं तो वे पाप

ही। साधारण पाप की तो बात ही क्या है परन्तु अणुव्रत तक पाप कहा जासकता है (अणुव्रत अर्थात् थोड़ा व्रत अर्थात् बाक़ी पाप) जब अणुव्रत की यह बात है तब औरों की तो बात ही क्या है ? प्राणदण्ड सरीखा कार्य भी जैनसम्राटों ने अधिक अनर्थों को रोकने के लिये किया है। निर्विकल्प अवस्था के पहिले जितने कार्य हैं वे सब बहु अनर्थों को रोकने वाले थोड़े अनर्थ ही हैं। प्रकृत बात यह है कि विधवाविवाह से व्यभिचार आदि अनर्थों का निरोध होता है इसलिये वह ग्राह्य है।

आक्षेप (ङ)—जो पुण्य है वह सदा पुण्य है। जो पाप है वह सदा पाप है।

समाधान—तब तो पुनर्विवाह, विधुरों के लिये अगर पुण्य है तो विधवाओं के लिये भी पुण्य कहलाया।

आक्षेप (च)—स्वस्त्रीसेवन पाप नहीं, पुण्य है। इसीलिये यह स्वदारसंतोष अणुव्रत कहलाता है।

समाधान—स्वदारसेवन और स्वदारसंतोष में बड़ा अन्तर है। स्वदारसेवन में अस्वदारनिवृत्ति का भाव है। सेवन में सिर्फ़ प्रवृत्ति है। स्वदारसंतोष, अणुव्रती को ही होगा। स्वदारसेवन तो अविरत और मिथ्यात्वी भी कर सकता है।

आक्षेप (छ)—अपेक्षाभेद लगाकर तो आप सिद्धों की अपेक्षा स्नातकों (अर्हतों) को भी पापी कहेंगे।

समाधान—बकुल आदि की अपेक्षा पुलाक आदि पापी कहे जासकते हैं क्योंकि पुलाक आदि में कषायें हैं। कोई जीव तभी पापी कहला सकता है जब कि उसके कषाय हो। कषायरहित जीव पापी नहीं कहलाता। अर्हन्त कषायातीत है।

आक्षेप (ज)—यदि धर्मविरुद्ध कार्य भी ग्राह्य स्वीकार किये जाँय तब त्याज्य कौन से होंगे ?

समाधान—धर्मविरुद्ध कार्य, जिस अपेक्षा से धर्मानु-

कुल सिद्ध होंगे उसी अपेक्षा से ग्राह्य हैं। बाकी अपेक्षाओं से अग्राह्य। प्रत्येक पदार्थ के साथ सप्तभंगी लगाई जासकती है। अगर नास्तिभंग लगाते समय कोई कहे कि प्रत्येक पदार्थ को यदि नास्तिरूप कहोगे तो अस्तिरूप किसे कहोगे ? तब इसका उत्तर यही होगा कि अपेक्षान्तर से यही पदार्थ अस्तिरूप भी होगा। इसी प्रकार एक कार्य किसी अपेक्षा से ग्राह्य, किसी अपेक्षा से अग्राह्य है। जो लोग पूर्णब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते उनको विधवाविवाह ग्राह्य हैं। पूर्ण ब्रह्मचारियों को अग्राह्य।

बारहवाँ प्रश्न

"छोटे छोटे दुधमुँहे बच्चों का विवाह धर्मविरुद्ध है या नहीं" ? इस प्रश्न के उत्तर में हमने ऐसे विवाह को धर्मविरुद्ध कहा था, क्योंकि उसमें विवाह का लक्षण नहीं जाता। जब वह विवाह ही नहीं तो उससे पैदा हुई सन्तान कर्ण के समान नाजायज़ कहलाई। इसलिये ऐसे नाममात्र के विवाह के हो जाने पर भी वास्तविक विवाह की आवश्यकता है।

आक्षेप (क)—भद्रबाहुसंहितामें लिखा है कि कन्या १२ की और वर सोलह वर्ष का होना चाहिये। इससे कम और अधिक विकार है। (श्रीलाल)

समाधान—भद्रबाहु श्रुतकेवली थे। दिगम्बर सम्प्रदाय में उनका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ नहीं है। उनके दो हज़ार वर्ष बाद एक अज्ञानी धूर्त ने उनके नाम से एक जाली ग्रन्थ बनाया और उसपर भद्रबाहु की छाप लगादी। ख़ैर, पुराणों में शायद ही कोई विवाह १२ वर्ष की उमर में किया हुआ मिलेगा। धर्मशास्त्र तो यह कहता है कि जितनी अधिक उमर तक ब्रह्मचर्य रहे उतना ही अच्छा। दूसरी बात यह है कि ठीक

बारह वर्ष पूरे होने का नियम चल नहीं सकता । ये पण्डित लोग शारदा बिल के विरोध में कहा करते हैं कि १४ वर्ष की उमर रक्खी जायगी तो साइत न मिलने से १७ वर्ष की उमर होजायगी। परन्तु बारह वर्षके नियमके अनुसार भी तो साइत न मिलने पर १५ वर्षकी उमर होजायगी। पुरुषों के लिये १६ वर्ष से ज़्यादा उमर में विवाह न करने का विधान किया जाय तो विधुर विवाह और बहुविवाह बन्द ही होजायँ, जिसके कि ये पण्डित हिमायती हैं।

आक्षेप (ख)—बालविवाह को धर्मविरुद्ध और नाजायज़ क़रार देने से स्त्रियाँ छीनी जायँगी (श्रीलाल)

समाधान—स्त्रियाँ छीनी न जायँगी परन्तु उन दोनों को फिर सच्चा विवाह करना पड़ेगा। इससे कोई नाजायज़ विवाह (बालविवाह) के लिये आयोजन न करेगा।

आक्षेप (ग)—अगर भूल से माता पिता ने बालविवाह कर दिया तो वह टूट नहीं सकता। भूल से विष दे दिया जाय तो भी मरना पड़ेगा, धन चोरी चला जाय तो वह गया ही कहलायगा (श्रीलाल)

समाधान—विष देने पर चिकित्सा के द्वारा उसे हटाने की चेष्टा की जाती है। चोरी होने पर चोर को दण्ड देने की और माल बरामद करने की कोशिश की जाती है। बालविवाह हो जाने पर फिर विवाह करना मानो चोरी का माल बरामद करना है। आक्षेपक के उदाहरण हमारा ही पक्ष समर्थन करते हैं।

आक्षेप (घ)—गांधर्व विवाह का उदाहरण यहां लागू नहीं होता क्योंकि यहाँ ब्राह्मविवाह का प्रकरण है। (श्रीलाल)

समाधान—हमने कहा था कि विवाह में किसी ख़ास विधिकी आवश्यकता नहीं। गांधर्व विवाह में शास्त्रीय विधि

नहीं है फिर भी वह विवाह है। इस दोष का निवारण आक्षेपक न कर सका तो कहता है कि यह ब्राह्मविवाह का प्रकरण है। परन्तु हमारा कहना यह है कि ब्राह्मविवाह के अतिरिक्त बाक़ी विवाह, आक्षेपक के मतानुसार विवाह हैं कि नहीं? यदि वे विवाह हैं और उनमें किसी खास विधिकी आवश्यकता नहीं है तो हमारा यह वक्तव्य सिद्ध हो जाता है कि विवाह में किसी खास विधि की आवश्यकता नहीं है।

आक्षेप (ङ) छोटी आयुवाली विवाहिता स्त्री से उत्पन्न सन्तान को कर्ण के समान कहना उन्मत्त प्रलाप है।
(श्रीलाल)

समाधान—न्यायशास्त्र की वर्णमाला से शून्य आक्षेपक को यहाँ समानता नहीं दीखती। यह उसकी मूर्खता के ही अनुरूप है। कर्ण के जन्म में यदि कोई दोष था तो यही कि वे अविवाहिता की सन्तान थे। बालविवाह जब विवाह ही नहीं है तब उससे पैदा होने वाली सन्तान अविवाहिता की सन्तान कहलाई इसमें विषमता क्या है?

आक्षेप (च)—दुधमुँहे का अर्थ विवाह के विषय में नासमझ करने से तो शङ्कराचार्य भी दुधमुँहे कहलाये क्योंकि इसी चर्चामें वे मण्डन मिश्र की स्त्री से हारे थे। अगर तत्कालीन समाज उनका विवाह कर देता तो आपकी नज़र में नाजायज़ होता। (विद्यानन्द)

समाधान—अगर शङ्कराचार्य विवाह के विषय में कुछ नहीं जानते थे तो उनका विवाह हो ही नहीं सकता था। समाज ज़बर्दस्ती उनका विवाह कराने की चेष्टा करती तो वह विवाह तो नाजायज़ होता ही, साथ ही समाज को भी पाप लगता। विवाह के विषय में शङ्कराचार्य को दुधमुँहा कहना अनुचित नहीं है। न्यायशास्त्र में 'बालानाम् बोधाय' की टीका

में बाल शब्द का यही अर्थ किया जाता है कि जिसने व्याकरण काव्य कोषादि तो पढ़ लिये परन्तु न्याय न पढ़ा हो। इसी तरह विवाह के प्रकरण में भी समझना चाहिये।

इस विषय में आक्षेपक ने शुरू में भी भूल खाई है। वास्तव में शङ्कराचार्य विवाह के विषय में अनभिज्ञ नहीं थे। वे कामशास्त्र में अनभिज्ञ थे और इसी विषय में वे पराजित हुए थे। विवाह में, कामवासना में और कामशास्त्र में बड़ा अंतर है। यह बात आक्षेपक को समझ लेना चाहिये।

आक्षेप (छ)—पहिले गर्भस्थ पुत्रपुत्रियों के भी विवाह होते थे और वे नाजायज़ न माने जाते थे। (विद्यानन्द)

समाधान—इस आक्षेप से तीन बातें ध्वनित होती है—(१) पुराने ज़माने में आजकल की मानी हुई विवाहविधि प्रचलित नहीं थी क्योंकि इस विवाहविधि में कन्या के द्वारा सिद्धमंत्र की स्थापना की जाती है, सप्तपदी होती है, तथा वर कन्या को और भी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं जो गर्भस्थ वर-कन्या नहीं कर सकते। (२) गर्भ में अगर दोनों तरफ़ पुत्र हों और माता पिता के वचन ही विवाह माने जाँय और वे नाजायज़ न हो सकें तो पुत्र पुत्रों में भी विवाह कहलाया। अथवा यही कहना चाहिये कि वह विवाह नहीं था। माता पिता ने सिर्फ़ सम्भव होने पर विवाह होने की बात कही थी। (३) जब गर्भ में विवाह हो जाता था तब गर्भ में ही लड़की सधवा कहलायी। दुर्योधन और कृष्ण में भी ऐसी बात चीत हुई थी। दुर्योधन के पुत्री उदधिकुमारी हुई जो गर्भ में ही प्रद्युम्न की पत्नी कहलायी। परन्तु प्रद्युम्न का हरण हो गया था इसलिये भानुकुमार के साथ विवाह का आयोजन हुआ। गर्भस्थ विवाह को आक्षेपक नाजायज़ मानते नहीं हैं इसलिये यह उदधिकुमारी के पुनर्विवाह का आयोजन कह-

लाया। इसलिये अब आक्षेपक को या तो बालविवाह नाजायज़ मानना चाहिये या श्री पुनर्विवाह जायज़।

बालविवाह को नाजायज़ सिद्ध करने में किसी खास प्रमाण के देने की ज़रूरत नहीं है। विवाह का लक्षण न जाने से ही वह नाजायज़ हो जाता है।

आक्षेप (ज)—आश्चर्य है कि कर्ण को आप बालविवाह की सन्तान कह कर नाजायज़ कह रहे हैं। वह तो गान्धर्व विवाह की सन्तान होने से नाजायज़ माना गया है।

समाधान—कुछ उत्तर न सूझने पर अपनी तरफ़ से झूटी बात लिखकर उसका खण्डन करने लगना आक्षेपक की आदत मालूम होती है, या आक्षेपक में हमारे वाक्य को समझने की योग्यता नहीं है। हमने कर्ण को अविवाहिता की सन्तान कहा है और बालविवाह में विवाह का लक्षण नहीं जाता इसलिये उसकी सन्तान भी अविवाहिता की सन्तान कहलायी। कर्ण में और बालविवाह की सन्तान में अविवाहितजन्यता की अपेक्षा समानता हुई। इससे कर्ण को बालविवाह की सन्तान समझ लेना आक्षेपक की अक्ल की खूबी है। आक्षेपक को उपमा, उपमेय, उपमान समान धर्म का बिलकुल ज्ञान नहीं मालूम होता।

कर्ण अगर गान्धर्व विवाह की सन्तान होते तो उन्हें छिपाकर बहा देने की ज़रूरत न होती, अथवा पाँचों पाँडव भी नाजायज़ होते। अगर यह कहा जाय कि कर्ण जन्म के बाद कुन्ती का विवाह किया गया था तो मानना पड़ेगा कि कर्ण-जन्म के पहिले कुन्ती का गान्धर्वविवाह नहीं हुआ, अथवा कर्ण जन्म के बाद उसका पुनर्विवाह हुआ और एक बच्चा पैदा करने पर भी वह कन्या कहलाई। अगर कन्या नहीं कहलाई तो विवाह कैसे हुआ?

आक्षेप (झ)—विवाह का चारित्र मोहनीय के उदय के साथ न तो अन्वय है न व्यतिरेक।

समाधान—यह वाक्य लिखकर आक्षेपक ने अकलङ्काचार्य का विरोध तो किया ही है साथ ही न्यायशास्त्र में असाधारण अज्ञानता का परिचय भी दिया है। आक्षेपक अन्वय व्यतिरेक का स्वरूप ही नहीं समझता। कार्य कारण का जहाँ अविनाभाव बतलाया जाता है वहाँ कारण के सद्भाव में कार्य का सद्भाव नहीं बताया जाता किन्तु कार्य के सद्भाव में कारण का सद्भाव बतलाया जाता है। कारण के सद्भाव में कार्य का सद्भाव हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। चारित्र मोह के उदय (कारण) रहने पर विवाह (कार्य) हो सकता है और नहीं भी हो सकता। अर्थात् व्यभिचार वग़ैरह भी हो सकता है। परन्तु विवाह (कार्य) के सद्भाव में चारित्र मोह का उदय (कारण) तो अनिवार्य है। अगर वह न हो तो विवाह नहीं हो सकता। यह व्यतिरेक भी स्पष्ट है।

चारित्रमोह के उदय का फल संभोग क्रिया का ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो ज्ञानावरण के क्षयोपशम का फल है। चारित्र मोहोदय तो कामलालसा पैदा करता है। अगर उसे परिमित करने के निमित्त मिल जाते हैं तो विवाह हो जाता है, अन्यथा व्यभिचार होता है। आक्षेपक ने यहाँ अपनी आदत के अनुसार अपनी तरफ़ से 'ही' जोड़ दिया है। अर्थात् 'चारित्र मोह का उदय ही' कहकर खण्डन किया है, जब कि हमने 'ही' का प्रयोग ही नहीं किया है। जब चारित्रमोह के उदय के साथ सद्वेद्य की बात भी कही है तब 'ही' शब्द का ज़बर्दस्ती घुसेड़ना बड़ी भारी धूर्तता है।

अकलङ्कदेव ने सद्वेद्य और चारित्रमोह लिखा है। आक्षेपक ने उसका अभिप्राय निकाला है 'उपभोगान्तराय'।

क्या गज़ब का अभिप्राय है! आक्षेपक के ये शब्द बिलकुल उन्मत्त प्रलाप हैं "विवाह साता-वेदनीय और उपभोगान्तराय के क्षयोपशम से होता है—चारित्रमोह के उदय से नहीं, इसीलिये उन्होंने चारित्रमोहोदयात् के पहिले सद्वेद्य पद डाल दिया है।" चारित्रमोह के पहिले सद्वेद्य पद डाल दिया, इससे एक के बदले में दो कारण होगये परन्तु चारित्रमोह का निषेध कैसे हो गया और उसका अर्थ उपभोगान्तराय कैसे बन गया?

आक्षेप (अ)—विवाह का उपादान कारण चारित्रमोह का उदय नहीं है किन्तु वर वधु है।

समाधान—हमने वहाँ "चारित्रमोह के उदय से होने वाले रागपरिणाम" कहा है। यह परिणाम ही तो विवाह की पूर्व अवस्था है और पूर्व अवस्था को आप स्वयं उपादान कारण मानते हैं। विस्तृत कामवासना का परिमित कामवासना हो जाना ही विवाह है। आपने उपचार से परिणामी (वर कन्या) को उपादान कारण कह दिया है, परन्तु परिणाम के बिना परिणामी वर कन्या नहीं हो सकते। बालविवाह में वर कन्या होते ही नहीं, दो बच्चे होते हैं। जब परिणाम नहीं तब परिणामी कैसे? यहाँ आक्षेपक अनिग्रह में अप्रतिभा नामक निग्रह कहकर निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रहस्थान में जागिरा है।

आक्षेप (ट)—जब आप विवाह के लिये नियत विधि मानते हैं तब उसके बिना विवाह कैसा? नियत विधि शब्दका कुछ ख़याल भी है या नहीं?

समाधान—गांधर्वविवाह को आप विवाह मानते हो। आपकी दृष्टि में भले ही वह अधर्म विवाह हो, परन्तु है तो विवाह ही। इस विवाह में आप भी नियत विधि नहीं मानते फिर भी विवाह कहते हैं। दूसरी बात यह है कि किसी नियत

विधि का उपयोग करना न करना इच्छा के ऊपर निर्भर है। किसी एक नगर से दूसरे नगर को यात्रा करने के लिये रेलगाड़ी चलती है। इस तरह यात्रियों के लिये रेलगाड़ी नियत करदी गई है परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वहाँ मोटर से, घोड़े से या अपने पैरों से यात्रा नहीं हो सकती। रेलगाड़ी को यात्रा के साधनों में मुख्यता भले ही देदी जाय परन्तु उसे अनिवार्य नहीं कह सकते। इसी तरह नियत शास्त्रविधिको भले ही कोई मुख्य समझे परन्तु अनिवार्य नहीं कह सकते। अनिवार्य तो चारित्रमोह आदि ही हैं। रेलगाड़ी के अभाव में यात्रा के समान विवाह विधि के अभाव में भी विवाह हो सकता है।

आक्षेप (ठ)—प्रद्युम्न को गांधर्वविवाह से पैदा हुआ कहना धृष्टता है। गांधर्वविवाहजात है कर्ण, इस से वे नाजायज़ हैं।

समाधान—कर्ण के विषय में हम पहिले लिख चुके हैं और इस प्रश्न के आक्षेप 'छ' के समाधानमें भी लिख चुके हैं। कर्ण व्यभिचारजात है गांधर्वविवाहोत्पन्न नहीं। रुक्मिणी का अगर गांधर्वविवाह नहीं था तो बतलाना चाहिये कि कौन सा विवाह था। प्रारम्भ के चार विवाहों में आप लोग कन्यादान मानते हैं। रैवतकगिरि के ऊपर कन्यादान किसने किया था? वहाँ तो रुक्मणी, कृष्ण और बलदेव के सिवाय और कोई नहीं था। गांधर्वविवाह में "स्वेच्छया अन्यान्यसम्बन्ध" होता है। रुक्मणी ने भी माता पिता आदि की इच्छा के विरुद्ध अपनी इच्छा से सम्बन्ध किया था। गांधर्वविवाह व्यभिचार नहीं है जिससे प्रद्युम्न व्यभिचारजात कहला सके।

यहाँ पर आक्षेपक अपने साथी आक्षेपक के साथ भी भिड़ गया है। विद्यानन्द कहते हैं—गांधर्वविवाह, विवाहविधि

शून्य अधर्म्म विवाह है इस से उत्पन्न संतान मोक्ष नहीं जा-सकती। जबकि श्रीलाल जी कहते हैं—"गांधर्वविवाह भी शास्त्रीय है अतः उससे उत्पन्न संतान क्यों न मोक्ष जाय"। जब दो झूठे मिलते हैं तब इसी तरह परस्पर विरुद्ध बकते हैं।

तेरहवाँ प्रश्न

क्या सुधारक और क्या बिगाड़क आजतक सभी बाल-विवाह को गुड्डा गुड्डी का खेल कहते रहे हैं। हमने ऐसे वर वधू को नाटकीय कहा है। ऐसी हालत में उसका वैधव्य भी नाटकीय रहेगा। वास्तव में तो वह कुमारी ही रहेगी। इस-लिये पत्नीत्व का जबतक अनुभव न हो तब तक वह पत्नी या विधवा नहीं कहला सकती। आक्षेपकों में इतनी अक्ल कहाँ कि वे पत्नीत्व के अनुभव में और सम्भोग के अनुभव में भेद समझ सकें। पहिला आक्षेपक (श्रीलाल) कहता है कि सप्त-पदी हो जाने से ही विवाह हो जाता है। परन्तु किसी बालिका से तोते की तरह सप्तपदी रटवा कर कहला देना या उस की तरफ़ से बोल देना ही तो सप्तपदी नहीं है। सप्तपदी का क्या मतलब है और उससे क्या ज़िम्मेदारी आ रही है इसका अनु-भव तो होना चाहिये। यही तो पत्नीत्व का अनुभव है। बाल-विवाह में यह बात (यही सप्तपदी) नहीं हो सकती इसलिये उसके हो जाने पर भी न कोई पति पत्नी बनता है न विधवा विधुर। उपर्युक्त पत्नीत्व के अनुभव के बाद और सम्भोग के पहिले वर मर जाय तो वधू विधवा हो जायगी, और उसका विवाह पुनर्विवाह ही कहा जायगा। परन्तु नासमझ अवस्था में जो विवाह-नाटक होता है उससे कोई पत्नी नहीं बनती।

आक्षेप (क)—विवाह को स्थापना निक्षेपका विषय कहना सचमुच विद्वत्ता का नङ्गा नाच है। तब तो व्यभिचार भी विवाह कहलायगा। (विद्यानन्द)

समाधान—जहाँ विवाह का लक्षण नहीं जाता और फिर भी लोग विवाह की कल्पना करते हैं तो कहना ही पड़ेगा कि वह विवाह स्थापना निक्षेप से है, जैसे कि नाटक में स्थापना की जाती है। आक्षेपक का कहना है कि व्यभिचार में भी स्थापनानिक्षेप से परस्त्री में स्वस्त्री की स्थापना करली जायगी। परन्तु यही बात तो हमारा पक्ष है। स्थापना तो व्यभिचार में भी हो सकती है परन्तु व्यभिचारी वर वधू नहीं कहला सकते। इस तरह नासमझ बालक बालिकाओं में भी वर वधू की स्थापना हो सकती है परन्तु वे वास्तव में वर वधू नहीं कहला सकते।

चौदहवाँ प्रश्न

इस प्रश्न में यह पूछा गया है कि पत्नी बनने के पहिले क्या कोई विधवा हो सकती है और व्रत ग्रहण करने में व्रती के भावों की ज़रूरत है या नहीं? इसका मतलब यह है कि आजकल विवाह-नाटक के द्वारा बहुतसी बालिकाएँ पत्नी बना दी जाती हैं परन्तु वास्तव में वे पत्नी नहीं होतीं। उनको (उस नाटकीय पति के मर जाने पर) विधवा न कहना चाहिये। व्रत ग्रहण करने में भावों की ज़रूरत है। बालविवाह में विवाहानुकूल भाव ही नहीं होते। इसलिये उस विवाह से कोई किसी तरह की प्रतिज्ञा में नहीं बँधता।

श्रीलाल ने वे ही पुरानी बातें कही हैं, जिसका धव (पति) मर गया है वह विधवा अवश्य कही जायगी आदि। परन्तु यहाँ तो यह कहा गया है कि वह नाटकीय पति वास्तविक पति ही नहीं है। फिर उसका मरना क्या और जीना क्या? उसका पति क्या और पत्यन्तर क्या?

आक्षेप (क)—आठ वर्ष की उमर में जब व्रत लिया

जा सकता है तब ८॥ या ६ वर्ष की उमर में भावपूर्वक विवाह क्यों न माना जावे ? (श्रीलाल)

समाधान—इससे मालूम होता है कि आक्षेपक आठ वर्ष से कम उमर के विवाह को अवश्य ही नाजायज़ समझता है। ख़ैर, अब हम पूछते हैं कि जब आठ वर्ष में व्रत ग्रहण किया जा सकता है तब आक्षेपक के मनगढ़न्त शास्त्रकारों ने विवाह के लिये बारह वर्ष की उमर क्यों रक्खी ? आठ वर्ष की क्यों नहीं रक्खी ? इससे मालूम होता है कि साधारण व्रत ग्रहण करने की अपेक्षा वैवाहिक व्रत ग्रहण करने में विशेष योग्यता की आवश्यकता है। अर्थात् परिपुष्ट शरीर, गार्हस्थ्य जीवन के भार सम्हालने की योग्यता और हृदय में उठती हुई वह कामवासना जिसके नियमित करने के लिये विवाह आवश्यक है, अवश्य होना चाहिये। अगर किसी असाधारण व्यक्ति में आठवर्ष की उमर में ही ये बातें पाई जाँय तो वह बालविवाह न कहलायगा, और इन बातों के न होने पर कितनी भी उमर में वह विवाह हो, वह नाजायज़ कहलायगा। भले ही तुम्हारे मनगढ़न्त शास्त्रकार १२ वर्ष का राग अलापते रहें।

एक बात यह भी है कि शास्त्रों में आठ वर्ष की उमर में व्रत ग्रहण करने की योग्यता का निर्देश है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि प्रत्येक आठ वर्ष का बालक, मुनि या श्रावक के व्रत ग्रहण कर सकता है, या आठ वर्ष से अधिक उमर में व्रत ग्रहण करने वाला मनुष्य पापी हो जायगा। आठ वर्ष की उमर में केवलज्ञान तक बतलाया है परन्तु क्या इसी लिए हरएक आदमी का इस उमर में केवलज्ञानोत्सव मनाया जाने लगे ? कहा जायगा कि अकेली उमर हो जाने से क्या होता है ? अन्य अन्तरङ्ग बहिरङ्ग निमित्त तो मिलना चाहिये। बस ! विवाह के विषय में भी हमारा यही कहना

है कि अकेली उमर हो जाने से क्या होता है, उसके लिये अन्य अन्तरङ्ग बहिरङ्ग निमित्त तो मिलना चाहिये। यदि विवाह के लिये वे निमित्त १४ वर्ष की उमर के पहिले नहीं मिलते तो उसके पहिले होने वाले विवाह (नाटक) नाजायज़ हैं। इसलिये उन विवाहों के निमित्त से सधवा विधवा शब्द का प्रयोग न करना चाहिये।

आक्षेप (ख)—अमरकोषकार ने पाणिगृहीती को पत्नी कहा है, इसलिये पाणिगृहीता बालिका चाहे वह १ वर्ष की क्यों न हो अवश्य ही पतिवियोग होने पर विधवा कहलायगी। (विद्यानन्द)

समाधान—पाणिगृहीती का अगर शब्दार्थ ही लिया जाय तब तो विवाह नाटक के पहिले ही वे सधवा विधवा कहलाने लगेंगी क्योंकि छोटी २ बालिकाओं के हाथ बाप, भाई और पड़ौसियों के द्वारा पकड़े ही जाया करते हैं। अगर पाणिगृहीती का मतलब विवाहिता है तो माता पिता के द्वारा किसी से हाथ पकड़ा देने ही से बालविवाहिता नहीं कही जासकती है। इसीलिये एक वर्ष की बालिका किसी भी हालत में विधवा या सधवा नहीं कहला सकती। विधवा-विवाह, धार्मिक दृष्टि से व्यभिचार है—इस बात का उत्तर पहिले अच्छी तरह अनेक बार दिया जा चुका है।

आक्षेप (ग)—व्रतग्रहण करने में व्रतीके भावोंकी ज़रूरत है भी और नहीं भी है। छः वर्ष के बच्चे को पानी छानकर पीने का व्रत दिला दिया और तीस वर्ष के आदमी ने व्रत नहीं लिया। इनमें कौन अच्छा है ? क्या उस बच्चे को पुण्य-बन्ध न होगा ?

समाधान—आक्षेपक ने 'व्रतग्रहण करने में भावों की

ज़रूरत नहीं है' इसके लिये कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिया। छः वर्ष का बच्चा अगर कोई अच्छी क्रिया करता है तो क्या आक्षेपक के मतानुसार वह व्रती है? क्या आचार्यों का यह लिखना कि आठ वर्ष से कम उम्र में व्रत नहीं हो सकता झूठ है? या आक्षेपक ही जैनधर्म से अनभिज्ञ है? छोटे बच्चे में भी कुछ भाव तो होते ही हैं जिससे वह पुण्यबन्ध या पापबन्ध करता है। जब एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि जीव भाव-रहित नहीं हैं तब यह तो मनुष्य है। परन्तु यहाँ प्रश्न तो यह है कि उसके भाव, व्रतग्रहण करने के लायक होते हैं या नहीं? अर्थात् उसके वे कार्य व्रतरूप हैं या नहीं? हो सकता है कि वह तीस वर्ष के आदमी से भी अच्छा हो, परन्तु इससे वह व्रती नहीं कहला सकता। कल्याणमन्दिर का जो वाक्य (यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः) हमने उद्धृत किया है उसके पीछे समस्त जैनशास्त्रों का बल है। वह हर तरह की परीक्षा से सौ टञ्च का उतरता है। आक्षेपक हमें सिद्धसेन के सदभिप्राय से अनभिज्ञ बतलाते हैं परन्तु वास्तव में आक्षेपक ने स्वयं कल्याणमन्दिर और विषापहार के श्लोकों का भाव नहीं समझा है। दोनों श्लोकों के मार्मिक विवेचन से एक स्वतन्त्र लेख हो जायगा। वास्तव में सिद्ध-सेन का श्लोक भक्तिमार्ग की तरफ़ प्रेरणा नहीं करता किन्तु पण्डित धनञ्जय का श्लोक भक्तिमार्ग की तरफ़ प्रेरणा करता है। उनका मतलब है कि बिना भाव के भी अगर लोग भगवान को नमस्कार करेंगे तो सुधर जायँगे। सिद्धसेन का श्लोक ऐसी भक्ति को निरर्थक बतलाता है। सिद्धसेन कहते हैं ऐसी भावशून्य भक्ति तो हज़ारों बार की है परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। सिद्धसेन के श्लोक में तथ्य है, वह समझदारों के लिये है और धनञ्जय के श्लोक में फुसलाना है। वह

बच्चों (अज्ञानी) के लिये है। बच्चों को फुसलाने की बातों को जैनसिद्धान्त के समझने की कुञ्जी समझना मूर्खता है।

आजकल शायद ही किसी ने भावशून्य क्रिया को व्रत कहने की धृष्टता की हो। जो धर्म शुक्कलेश्याधारी नवमग्रैवेयक जाने वाले मुनि को भी (भावशून्य होने से) मिथ्यादृष्टि कहता है, उसमें भावशून्य क्रिया से व्रत बतलाना अक्षन्तव्य अपराध है।

आक्षेप (घ)—यद्यपि समन्तभद्र स्वामी ने अभिप्रायपूर्वक त्याग करना व्रत कहा है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि बाल्यावस्था में दिलाए गये नियम उपनियम सब शास्त्रविरुद्ध हैं। बाल्यावस्था में दिये गये व्रत को अकलङ्क ने जीवन भर पाला। (विद्यानन्द)

समाधान—समन्तभद्र के द्वारा कहे गये व्रत का लक्षण जानते हुए भी आक्षेपक समझते हैं कि बिना भाव के व्रत ग्रहण हो सकता है। इसका मतलब यह है कि वे जाति स्वभाव के अनुसार जैनधर्म और समन्तभद्र के विद्रोही हैं या अपना काम बनाने के लिये जैनी वेष धारण किया है। ख़ैर, बाल्यावस्था के नियम शास्त्रविरुद्ध भले ही न हों परन्तु वे व्रतरूप अवश्य ही नहीं हैं। अकलङ्क के उदाहरण पर तो आक्षेपक ने ज़रा भी विचार नहीं किया। अकलङ्क अपने पिता से कहते हैं कि जब आपने व्रत लेने की बात कही थी तब वह व्रत आठ दिन के लिये थोड़े ही लिया था, हमने तो जन्मभर के लिये लिया था। इससे साफ़ मालूम होता है कि व्रत लेते समय अकलङ्क की उमर इतनी छोटी नहीं थी कि व्रत न लिया जासके। उनने भावपूर्वक व्रत लिया था और उसके महत्व को और उत्तरदायित्व को समझा था। क्या यही भावशून्य व्रत का उदाहरण है ?

आक्षेप (ङ)—व्रत दो प्रकार के हैं—निवृत्तिरूप, प्रवृत्तिरूप। शुभकर्म में प्रवृत्ति करना भी व्रत है। यद्यपि बच्चों की शुभकर्म की प्रवृत्ति में कोई भाव नहीं रहता, फिर भी वे व्रती कहे जा सकते हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—जब कि व्रत भावपूर्वक होते हैं तब व्रतों के भेद भावशून्य नहीं हो सकते। जीव का लक्षण चेतना, उसके सब भेद प्रभेदों में अवश्य जायगा। जीव के प्रभेद यदि जलचर, थलचर, नभचर हैं तो इससे नौका, रेलगाड़ी या वायुयान, जीव नहीं कहला सकते, क्योंकि उनमें जीव का लक्षण नहीं जाता। इसलिये भावशून्य कोई कार्य व्रत का भेद नहीं कहला सकता। जो फल फूल या जल भगवान को चढ़ाया जाता है क्या वह व्रती कहलाता है? यदि नहीं, तो इसका कारण क्या भावशून्यता नहीं है? क्या भावशून्य जिनदर्शनादि कार्यों को व्रत कहने वाला एकाध प्रमाण भी आप दे सकते हैं?

आक्षेप (च)—संस्कारों को अनावश्यक कहना जैन सिद्धान्त के मर्म को नहीं समझना है। इधर आप संस्कारों से योग्यता पैदा करने की बात भी कहते हैं। ऐसा परस्परविरुद्ध क्यों कहते हैं? (विद्यानन्द)

समाधान—व्रत और संस्कारों को एक समझ कर आक्षेपक के गुरु ने घोर मूर्खता का परिचय दिया था। हमने दोनों का भेद समझाया था जो कि अब शिष्य ने स्वीकार कर लिया है। व्रत और संस्कार जुदे जुदे हैं इसलिये वे 'संस्कार अनावश्यक हैं' यह अर्थ कहाँ से निकल आया, जिससे परस्परविरोध कहा जासके? आक्षेपक या उसके गुरु का कहना तो यह है कि "कि बाल्यावस्था में भी संस्कार होते हैं इसलिये व्रत कहलाया"। इसी मूर्खता को हटाने के लिये हमने

कहा था कि "संस्कार से हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है और वह प्रभाव प्रायः दूसरों के द्वारा डाला जाता है, परन्तु व्रत दूसरों के द्वारा नहीं लिया जा सकता। संस्कार तो पात्र में श्रद्धा, समझ और त्याग के बिना भी डाले जासकते हैं परन्तु व्रत में इन तीनों की अत्यन्त आवश्यकता रहती है"। जब व्रत और संस्कार का भेद इतना स्पष्ट है तब बाल्यावस्था में संस्कारों का अस्तित्व बतलाकर व्रत का अस्तित्व बतलाना मूर्खता और धोखा नहीं तो क्या है? संस्कार आवश्यक भले ही हों परन्तु वे व्रत के भेद नहीं हैं।

आक्षेप (छ)—शुभ कार्य दूसरों के द्वारा भी कराये जा सकते हैं, और उनका फल भी पूरा पूरा होता है। शुभ कार्य में जबरन प्रवृत्ति कराना अधर्म नहीं है। हाँ, यदि कोई विधवा कहे कि मैं तो वैधव्य नहीं लूँगी तब उस पर ज़बर्दस्ती वैधव्य का 'टीका' मढ़ना भी उचित नहीं है। यदि कोई विधवा कहे कि मेरा विवाह करा दो तो वह भी आगमविरुद्ध है।

समाधान—शुभ कार्य कराये जा सकते हैं। जो करायगा उसे कदाचित् पुण्यबन्ध भी हो सकता है। परन्तु इससे यह कहाँ सिद्ध हुआ कि जिससे क्रिया कराई जा रही है वह भावपूर्वक नहीं कर रहा है। यदि कोई कराता है और कोई भावपूर्वक करता है तो उसे पुण्यबन्ध क्यों न होगा? परन्तु यह पुण्यबन्ध भावपूर्वकता का है। ऊपर भी इस प्रश्नका उत्तर दिया जा चुका है।

आप स्वीकार करते हैं कि अनिच्छापूर्वक वैधव्य का टीका न मढ़ना चाहिये। सुधारक भी इससे ज़्यादा और क्या कहते हैं? जब उसे वैधव्य का टीका नहीं लगा तो वह आगमविरुद्ध क्यों?

पन्द्रहवाँ प्रश्न ।

१२, १३, १४ और १५ वें प्रश्न बालविवाहविषयक हैं। इस में बालविवाह को नाजायज़ विवाह सिद्ध किया गया है। जो लोग सम्यग्दृष्टि हैं वे तो विधवाविवाह के विरोधी क्यों होंगे, परन्तु जो लोग मिथ्यात्व के कारण से विधवाविवाहको ठीक नहीं समझते उन्हें चाहिये कि बालविधवा कहलाती हुई स्त्रियों के विवाह को स्वीकार करें क्योंकि बालविधवाएँ वास्तविक विधवाएँ नहीं हैं। एकबार न्यायशास्त्रके एक सुप्रसिद्ध आचार्य ने (जो कि दिगम्बर जैन कहलाने पर भी तीव्र मिथ्यात्व के उदयसे या अन्य किसी लौकिक कारणसे विधवाविवाह के विरोधी बन गये हैं) कहा था—कि तुम बड़े मूर्ख हो जो बालविधवाओं को भी विधवा कहते हो। इसी तरह एकबार गोपालदास जी के मुख्य शिष्य और धर्मशास्त्र के बड़े भारी विद्वान् कहलाने वाले पण्डित जी ने भी कहा था—कि 'अक्षतयोनि विधवाओं के विवाह में तो कोई दोष नहीं है'। यहाँ पर भी बालविवाह के विषय में चम्पतराय जी साहब ने जो तनकियाँ उठाई हैं उनके उत्तरों से यही बात साबित होती है। विवाह का सम्बन्ध ब्रह्मचर्याणुव्रत से है। जिनका बाल्यावस्था में विवाह होगया वे ब्रह्मचर्याणुव्रत वाली कैसे कहला सकती हैं? इसलिये उनका विवाहाधिकार तो कुमारी के समान ही रक्षित है। अगर वे महाव्रत या सप्तम प्रतिमा धारण करें तब तो ठीक, नहीं तो उन्हें विवाह करलेना चाहिये। यद्यपि हम कह चुके हैं कि बालविधवाएँ विधवा नहीं हैं परन्तु कोई विधवा हो या विधुर, कुमार हो या कुमारी, अगर वह ब्रह्मचर्य प्रतिमा या महाव्रत ग्रहण नहीं करता तो विवाह की इच्छा करने पर विवाह कर लेना अधर्म नहीं है।

आक्षेप (क)—प्रश्नकर्त्ता का प्रश्न समझ कर तो उत्तर देते। जो मनुष्य ब्रह्मचर्याणुव्रत धारण नहीं करता उस का विवाह करके क्या करोगे ? वह तो माता बहिन को स्त्री समझता है। (श्रीलाल)

समाधान—हमारे उपर्युक्त वक्तव्यको पढ़कर पाठक ही विचारें कि प्रश्न कौन नहीं समझा है। जिसने ब्रह्मचर्यअणुव्रत नहीं लिया है, उसे ब्रह्मचर्यअणुव्रत देने के लिये ही तो विवाह है। इस आक्षेपक ने विवाह को ब्रह्मचर्यव्रत रूप माना है। यहाँ कहता है कि ब्रह्मचर्यव्रतरहित का विवाह क्यों करना अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत क्यों देना ? मतलब यह कि अव्रतोको व्रत देना निरर्थक है ! कैसा पागलपन है !

आक्षेप (ख)—क्या दीक्षा और विवाह यही दो अवस्थाएँ हो सकती हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—जो दीक्षा नहीं लेना और विवाह भी नहीं करना उससे कोई ज़बर्दस्ती नहीं करना। परन्तु उसे विवाह करने का अधिकार है। अधिकार का उपयोग करना न करना उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर है। उपयोग करने से वह पापी न कहा जायगा।

आक्षेप (ग)—जब आप विधुर विधवा आदि जिस किसी को विवाह करने का अधिकार देते हैं तब तो एक वर्ष की अबोध बच्ची भी विवाह करावें। आपने तो बाल, वृद्ध, अनमेल विवाह की भी पीठ ठोकी। (विद्यानन्द)

समाधान—इससे तो यह बात कही गई है कि वैधव्य, विवाहमें बाधक नहीं है। १ वर्ष की बच्ची का विवाह तो हो ही नहीं सकता यह हम अनेक बार कह चुके हैं। बालविवाह को जैनधर्म और हम विवाह ही नहीं मानते हैं। विवाह के अन्य अन्तरङ्ग बहिरङ्ग निमित्त मिल जाने पर कोई भी विवाह कर

सकता है। हमारा कहना तो यह है कि वैधव्य उसका बाधक नहीं है।

सोलहवाँ प्रश्न

"जिसका गर्भाशय गर्भधारण के योग्य नहीं हुआ उस को गर्भ रह जाने से प्रायः मृत्यु का कारण होजाता है या नहीं ?" इस प्रश्न के उत्तर में वैद्यक शास्त्र के अनुसार उत्तर दिया गया था। आक्षेपकों को भी यह बात मंजूर है। परन्तु उसके लिये १६ वर्ष की अवस्था की बात नहीं कहते। आक्षेपकों ने इसपर ज़ोर नहीं दिया। हम अपने मूल लेखमें जो कुछ लिख चुके हैं उससे ज़्यादा लिखने की ज़रूरत नहीं है।

आक्षेप (क)—सन्तानोत्पादन के लिये हृष्टपुष्टता की आवश्यकता है, उमर की नहीं। (श्रीलाल, विद्यानन्द)

समाधान—सन्तानोत्पादन के लिये हृष्टपुष्टताकी आवश्यकता है और हृष्टपुष्टता के लिये उमर की आवश्यकता है। हाँ, यह बात ठीक है कि उमर के साथ अन्य कारण भी चाहियें। जिनके अन्य कारण बहुत प्रबल हो जाते हैं उनके एक दो वर्ष पहिले भी गर्भ रह जाता है, परन्तु इससे उमर का बन्धन अनावश्यक नहीं होता, क्योंकि ऐसी घटनाएँ लाख में एकाध ही होती हैं। श्रीलाल स्वीकार करते हैं कि कई लोग २०-२४ वर्ष तक भी सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं होते। यदि यह ठीक है तो श्रीलाल को स्वीकार करना चाहिये कि १२ वर्ष की उमर में विवाह का नियम बनाना या रजस्वला होने के पहिले विवाह कर देना अनुचित है। यदि विवाह और सन्तानोत्पादन के लिये हृष्टपुष्टता का नियम रक्खा जाय तब १२ वर्ष का नियम टूट जाता है और बालविवाह मृत्यु का कारण है—यह बात सिद्ध हो जाती है।

सत्रहवाँ प्रश्न

"पाँच लाख औरतों में एक लाख तैंतालीस हज़ार विधवाएँ क्या शोभा का कारण हैं ?" इसके उत्तर में हमने कहा था कि--"वैधव्य में जहाँ त्याग है वहाँ शोभा है अन्यथा नहीं। जहाँ पुनर्विवाहका अधिकार नहीं, वहाँ उसका त्याग ही क्या ?" इस प्रश्न का उत्तर आक्षेपक नहीं दे सके हैं। श्री लालजी तो तलाक़ की बात उठा कर यूरोप के तलाक़दान सूँघने लग गये हैं। 'विधवाविवाह वाली ऊँची नहीं हो सकती' उसे आर्यिका बनने का अधिकार नहीं, आदि वाक्यों में कोई प्रमाण नहीं है। हम इसका पहिले विवेचन कर चुके हैं। आगे भी करेंगे।

आक्षेप (क)—विधवा गृहस्थ है, इसलिये वह सौभाग्यवतियों से पूज्य नहीं हो पाती।

समाधान—गृहस्थ तो ब्रह्मचर्यप्रतिमाधारी भी है। फिर भी साधारण लोगों की अपेक्षा उसका विशेष सन्मान होता है। इसी प्रकार विधवाओं का भी होना चाहिये, परन्तु नहीं होता। इसका कारण यही है कि उनका वैधव्य त्यागरूप नहीं है। अगर कोई विधुर विवाहयोग्य होने और विवाह के निमित्त मिलने पर भी विवाह नहीं कराता तो वह प्रशंसनीय होता है। इसी प्रकार पुनर्विवाह न कराने वाली विधवाएँ भी प्रशंसापात्र हो सकती हैं अगर उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार हो और वे विवाह योग्य हों तो। हाँ, उन विधुरों की प्रशंसा नहीं होती जो चार पाँच बार तक विवाह करा चुके हैं अथवा विवाह की कोशिश करते २ अन्तमें 'अंगूर खट्टे हैं' की कहावत चरितार्थ करते हुए, अन्तमें ब्रह्मचारी परिग्रहत्यागी आदि बन गये हैं। विवाह की पूर्ण सामग्री मिल जाने पर भी जो

विवाह नहीं कराते वे ही प्रशंसनीय हैं चाहे वे विधुर हों या विधवा।

आक्षेप (ख)—पुनर्विवाह वाली जातियों में वैधव्य शोभा का कारण है। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि पुनर्विवाह न करने वाली शोभा का कारण और करने वाली अशोभा का कारण है? (विद्यानन्द)

समाधान—उपवास और भूखे मरने का बाह्यरूप एकसा मालूम होता है, परन्तु दोनों में महान् अन्तर है। उपवास स्वेच्छापूर्वक है, इसलिये त्याग है, तप है। भूखों मरना, विवशता से है इसलिये वह नारकी सरीखा सक्लेश है। एक समाज ऐसी है जहाँ खाने की स्वतन्त्रता है। एक ऐसी है जहाँ सभी को भूखों मरना पड़ता है। पहिली समाज में जो उपवास करते हैं वे प्रशंसनीय होते हैं, परन्तु इसीलिये भूखों मरने वाली समाज प्रशंसनीय नहीं कही जासकती; फिर ऐसी हालत में जब कि भूखों मरने वाले चुरा चुरा कर खाते हों। पुनर्विवाह करने वाली जातिमें वैधव्य प्रशंसनीय है क्योंकि उस में प्राप्य भोगों का त्याग किया जाता है, पुनर्विवाहशून्य समाज में ऐसी चीज़ों का त्याग कहा जाता है जो अप्राप्य हैं। तब तो गधे के सींग का त्यागी भी बड़ा त्यागी कहा जायगा। जिन जातियों में पुनर्विवाह नहीं होता उनकी सभी स्त्रियाँ (भले ही वे विधवा हों) पुनर्विवाह कराने वाली स्त्रियों से नीची हैं क्योंकि नपुंसक के बाह्य ब्रह्मचर्य के समान उनके वैधव्य का कोई मूल्य नहीं है। सारांश यह कि पुनर्विवाह वाली जातियों की विधवाओं का स्थान पहिला है (उपवासी के समान); पुनर्विवाहिताओं का स्थान दूसरा है (संयताहारी के समान) पुनर्विवाहशून्य जाति की विधवाओं का स्थान तीसरा है (भूखों मरने वालों के समान)।

आक्षेप (ग)—विधुर और विधवाओं का अगर एकसा इलाज हो तो दोनों को शास्त्रकारों ने समान आज्ञा क्यों नहीं दी ? (विद्यानन्द)

समाधान—जैनधर्म ने दोनों को समान आज्ञा दी है। इस विषयमें पहिले विस्तारसे लिखा जा चुका है। देखो '७ घ'।

आक्षेप (घ)—स्त्रीपर्याय पुरुषपर्याय से निद्य है। इस लिये जो विधवाएँ पुरुषों के समान पुनर्विवाह का अधिकार चाहती हैं, वे पहिले पुरुष बनने के कार्य संयमादिक पालकर पुरुष बनलें। बाद में पुरुषों के समान पुनर्विवाह की अधिकारी बनें। (विद्यानन्द)

समाधान—अगर यह कहा जाय कि "भारतवासी निंद्य हैं इसलिये अगर वे स्वराज्य चाहते हैं तो अंग्रेज़ों की निस्वार्थ सेवा करके पुण्य कमावें और मरकर अंग्रेज़ों के घर जन्म लेवें" तो यह जैसी मूर्खता कहलायगी इसी तरह की मूर्खता आक्षेपक के वक्तव्य में है। वर्तमान विधवाएँ अगर मर के पुरुष बन जायँगी तो क्या परलोक में विधवा बनने के लिये पण्डित लोग अवतार लेंगे? क्या फिर विधवाएँ न रहेंगी? क्या इससे विधवाओं की समस्या हल हो जायेगी? क्या भ्रूणहत्याएँ न होंगी? क्या विपत्तिग्रस्त लोगों की विपत्ति दूर करने का यही उपाय है कि पारलौकिक सम्पत्ति की झूठी आशा से उन्हें मरने दिया जाय? खैर, जिन विधवाओं में ब्रह्मचर्य के परिणाम हैं वे तो पुण्योपार्जन करेंगी परन्तु जो विधवाएँ सदा मानसिक और शारीरिक व्यभिचार करती रहती हैं, भोगों के अभाव में दिनरात रोती हैं और हाय हाय करती हैं, वे क्या पुण्योपार्जन करेंगी? दुःखी जीवन व्यतीत करने से ही क्या पुण्यबन्ध हो जाता है? यदि हाँ, तब सातवें नरक के नारकी को सब से बड़ा तपस्वी कहना चाहिये। यदि

नहीं, तो वर्तमान का वैधव्य जीवन पुरुषार्थोपार्जक नहीं कहला सकता।

अठारहवाँ प्रश्न

इस प्रश्न में यह पूछा गया था कि जैनसमाज की संख्या घटने से समाज की हानि है या लाभ? हमने संख्याघटी की बात का समर्थन करके समाज की हानि बतलाई थी। श्रीलाल तो गवर्नमेन्ट की रिपोर्ट का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते। किम्वदन्ती के अनुसार कुम्भकर्ण ६ महीने सोता था, परन्तु हमारा यह आक्षेपक कुम्भकर्ण का भी कुम्भकर्ण निकला। यह जन्म से लेकर बुढ़ापे तक सो ही रहा है। खैर, विद्यानन्द ने संख्याघटी की बात स्वीकार करली है। दोनों आक्षेपकों का कहना है कि संख्या घटती है घटने दो, जाति रसातल जाती है जाने दो, परन्तु धर्म को बचाओ! विधवाविवाह धर्म है कि अधर्म—इस बात की यहाँ चर्चा नहीं है। प्रश्न यह है कि संख्या घटने से हानि है या नहीं? यदि है तो उसे हटाना चाहिये या नहीं? हरएक विचारशील आदमी कहेगा कि संख्याघटी रोकना चाहिये। जब विधवाविवाह धर्मानुकूल है और उससे संख्या बढ़ सकती है तो उस उपाय को काम में लाना चाहिये।

आक्षेप (क)—जैनी लोग पापी होगये इसलिये उनकी संख्या घट रही है।

समाधान—बात बिलकुल ठीक है। सैकड़ों वर्षों से जैनियों में पुरुषत्व का मद बढ़ रहा है। इस समाज के पुरुष स्वयं तो पुनर्विवाह करते हैं, और स्त्रियों को रोकते हैं, यह अन्याचार, पक्षपात क्या कम पाप है? इसी पाप के फल से इनकी संख्या घट रही है। पूजा न करने आदि से संख्या घटती तो म्लेच्छों की संख्या न बढ़ना चाहिये थी।

आक्षेप (ख)—मुसलमान लोग तो इसलिये बढ़ रहे हैं कि उन्हें नरक जाना है। और इस निकृष्ट काल में नरक जाने वालों की अधिकता होगी। (श्रीलाल)

समाधान—आप कह चुके हैं कि जैनियों में पापी हो गये इसलिये संख्या घटी। परन्तु इस वक्तव्य से तो यह मालूम होता है कि जैनियों की संख्या पाप से बढ़ना चाहिये जिसमें नरकगामी आदमी मिल सकें। इस नरक के दूत ने यह भी स्वीकार किया है कि "नीच काम करने से नीच को जितना पाप लगता है उससे कई गुणा पाप उच्च को लगता है", अर्थात् जैनियों को ज़्यादा पाप लगता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी जैनियों की संख्या बढ़ना चाहिये क्योंकि इस समाज में पैदा होने से खूब पाप लगेगा और नरक जल्दी भरेगा। एक तरफ़ पाप से संख्या की घटी बतलाना और दूसरी तरफ़ पाप से संख्या की वृद्धि बतलाना विचित्र पागलपन है।

आक्षेप (ग)—विधवाविवाह आदि से, प्लेग हैज़ा आदि से समाज का सफ़ाचट हो जायगा। (श्रीलाल)

समाधान—विधवाविवाह से सफ़ाचट होगा इसका उत्तर तो योरोप अमेरिका आदि की परिस्थिति देगी। परन्तु विधवाविवाह न होने से जैनसमाज सफ़ाचट हो रही है यह तो प्रगट ही है।

आक्षेप (घ)—समाज न रहने का डर वृथा है। जैनधर्म तो पंचमकाल के अन्त तक रहेगा। (श्रीलाल)

समाधान—विधवाविवाह के न होने से संख्या घट रही है। जैनियों की जिन जातियों में पुनर्विवाह है उनमें संख्या नहीं घट रही है। अगर पुनर्विवाह का रिवाज चालू न होगा तो संख्या नष्ट हो जायगी। परन्तु जैनधर्म का इतना ह्रास तो

नहीं हो सकता इससे सिद्ध है कि विधवाविवाह का प्रचार ज़रूर होकर रहेगा। अथवा जिन जातियों में विधवाविवाह का रिवाज है वे ही जातियाँ अन्त तक रहेंगी। रही चिन्ता की बात सो जो पुरुष है उसे तो पुरुषार्थ पर ही नज़र रखना चाहिये। कोरी भवितव्यता के भरोसे पर बैठकर प्रयत्न से उदासीन न होना चाहिये। तीर्थंकर अवश्य मोक्षगामी होते हैं फिर भी उन्हें मोक्ष के लिये प्रयत्न करना पड़ता है। इसी तरह जैनधर्म पंचमकाल के अन्त तक अवश्य रहेगा परन्तु उसे तब तक रहने के लिये विधवाविवाह का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

यह छूनाछूतविचार का प्रकरण नहीं है। इसका विवेचन कुछ हो चुका है। बहुत कुछ आगे भी होगा।

आक्षेप (ङ)—विधवाविवाह से तो बचे खुचे जैनी नास्तिक हो जावेंगे, कौड़ी के तीन तीन बिकेंगे। जैनधर्म यह नहीं चाहता कि उसमें संख्यावृद्धि के नाम पर कूड़ाकचरा भर जाय। (विद्यानन्द)

समाधान—आक्षेपक कूड़ाकचरा का विरोधी है परन्तु विधवाविवाह वालों को कूड़ाकचरा तभी कहा जासकता है जब विधवाविवाह धर्मविरुद्ध सिद्ध हो। पूर्वोक्त प्रमाणों से विधवाविवाह धर्मानुकूल सिद्ध है इसलिये आक्षेपक की ये गालियाँ निरर्थक हैं। विधवाविवाहोत्पन्न तो व्यभिचारजात है ही नहीं, परन्तु व्यभिचारजातता से भी कोई हानि नहीं है। व्यभिचार पाप है (विधवाविवाह व्यभिचार नहीं है) व्यभिचारजातता पाप नहीं है अन्यथा रविषेणाचार्य ऐसा क्यों लिखते—

> चिन्हानि विटजातस्य सन्ति नांगेषु कानिचित्।
> अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः॥

व्यभिचारजातता के कोई चिन्ह नहीं होते। दुराचार से ही मनुष्य नीच कहलाता है।

यदि व्यभिचारजात शूद्र ही कहलाता है तो रुद्र भी शूद्र कहलाये। जब रुद्र मुनि बनते हैं तब आपको शूद्र मुनि का विधान भी मानना पड़ेगा। तद्भवमोक्षगामी व्यभिचार जात सुदृष्टि सुनार पर विवेचन तो आगे होगा ही।

आक्षेप (च)—जैनधर्म नहीं चाहता कि उसमें संख्या-वृद्धि के नाम पर कूड़ा कचरा भर जाय। यदि ६०८ बढ़ते हैं तो ६०८ मुक्ति भी प्राप्त कर लेते हैं। जैनधर्म स्वयं अपने में बढ़ी हुई संख्या ६०८ को सिद्धशिला पर सदा के लिये स्थापन कर देता है। (विद्यानन्द)

समाधान——उदाहरण देने के लिये जिस बुद्धिकी आवश्यकता है उस तरह को साधारण बुद्धि भी आक्षेपक में नहीं मालूम होती। आक्षेपक संख्यावृद्धि के नाम पर कूड़ा कचरा न भरने की बात कहते हैं और उदाहरण कूड़ा कचरा भरने का दे रहे हैं। व्यवहारराशि में से छः महीने आठ समय में ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं और नित्यनिगोद से इतने ही जीव बाहर निकलते हैं। जैनधर्म अगर ६०८ जीव सिद्धालय को भेजता है तो उसकी पूर्ति निगोदियों से कर लेता है। अगर जैनधर्म को संख्या घटने की पर्वाह न होती तो वह सिद्धालय जाने वाले जीवों की संख्यापूर्ति निगोदियों सरीखे तुच्छ जीवों से करने को उतारू न हो जाता।

इस उदाहरण से यह बात भी सिद्ध होती है कि जैनधर्म में कूड़े कचरे को भी फलफूल बनाने की शक्ति है। वह कूड़े कचरे के समान जीवों को भी मुक्त बनाने की हिम्मत रखता है। जैनधर्म उस चतुर किसान के समान है जो गाँव भर के कूड़े कचरे का खाद बनाता है और उससे सफल खेती करता

है। वह मोक्ष भेजने के लिये देवलोक में से प्राणियों को नहीं चुनता बल्कि उस समूह में से चुनता है जिस का अधिक भाग कूड़े कचरे के समान है। खेत में जितनी मिट्टी है उतना अनाज पैदा नहीं होता परन्तु इसीलिये यदि कोई मूर्ख किसान यह कहे कि जितना अनाज पैदा होता है उतनी ही मिट्टी रक्खो बाकी फेंक दो तो वह पागल विफल प्रयत्न करेगा। अगर हम चाहते हैं कि दस लाख सच्चे जैनी हों तो हमें जैन समाज में १०-१२ करोड़ भले बुरे जैनी तैयार रखना पड़ेंगे। उनमें से १० लाख सच्चे जैनी तैयार हो सकेंगे। जैनधर्म तो सिद्धालय भेजने पर भी संख्या की त्रुटि नहीं सहता और हम कुगति और कुधर्म में भेज करके भी संख्यात्रुटि का विचार न करें तो कितनी मूर्खता होगी।

उन्नीसवाँ प्रश्न

जैन समाज में अविवाहितों की काफ़ी संख्या है। इसका कारण बलाद्वैधव्य की कुप्रथा है। जैन समाज में कुमारियों की संख्या १ लाख ८५ हज़ार ५१४ है जब कि कुमारों की संख्या ३ लाख ६ हज़ार २६५ है। इनमें से ६३२४६ कुमार तो ऐसे हैं जिनकी उमर बीस वर्ष से ज़्यादा है। इस उमर के इने गिने कुमारों को छोड़ कर बाकी कुमार अविवाहित रहने वाले ही हैं। एक तो कुमारियों की सख्या यों ही कम है परन्तु तीन चार वर्ष तक के लड़कों के लिये विवाहयोग्य लड़कियाँ आगे पैदा होंगी इस आशा से कुमारियों की संख्या सन्तोषप्रद मानली जाय तो ६१३७१ विधुर मौजूद हैं। ये भी अपना विवाह कुमारियों से ही करते हैं। फल इसका यह होता है कि ६३२४६ पुरुष बीस वर्ष की उमर के बाद भी कुमार रहते हैं। यदि ये ६१३७१ विधुर विधवाओं से शादी करें तो २० वर्ष से

अधिक उमर के कुमारों की संख्या ६३ हज़ार से अधिक के स्थान में दो हज़ार से भी कम रह जाय। जब तक विधवाविवाह की सुप्रथा का प्रचार न होगा तब तक यह विषमता दूर नहीं हो सकती।

अन्तर्जातीय विवाह से भी कुछ सुभीता हो सकता है क्योंकि क़रीब ४२०० कुमारियाँ ऐसी हैं जिनकी उमर २० वर्ष से ज्यादा होगई है परन्तु उनका विवाह नहीं हुआ। छोटी जातियों में योग्य वर न मिलने से यह परिस्थिति पैदा हो गई है। बड़ी जातियों को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करने के साथ विधवा विवाह के प्रचार की भी ज़रूरत है क्योंकि विधवाविवाह के बिना अविवाहितों की समस्या हल नहीं होसकती।

श्रीलालजी यह स्वीकार करते हैं कि 'लड़का लड़की समान होते हैं परन्तु लोग अविवाहित इसलिये रहते हैं कि वे ग़रीब हैं'। इस भले आदमी को यह नहीं सूझता कि जब लड़का लड़की समान हैं तो ग़रीबों को मिलने वाली लड़कियाँ कहाँ चली जाती हैं? भले आदमी के लड़के भी तो एक स्त्री रखते हैं। हाँ, इसका कारण यह स्पष्ट है कि विधुर लोग कुमारियों को हज़म कर जाते हैं। ऐसे अविवाहित कुमारों की संख्या बहुत ज़्यादा है जिनके पास पचीस पचास हज़ार रुपये की जायदाद भले ही न हो या जो हज़ार दो हज़ार रुपये देकर कन्या खरीदने की हिम्मत न रखते हों फिर भी जो चार आदमियों की गुज़र लायक़ पैदा कर लेते हैं। लड़कियों को लखपति लेजाँय या करोड़पति ले जाँय परन्तु यह स्पष्ट है कि विवाहयोग्य उमर के ६३ हज़ार कुमारों को लड़कियाँ नहीं मिल रही हैं। जब इनके लिये लड़कियाँ हैं ही नहीं तब ये लखपति भले ही बन जाँय परन्तु इन्हें अविवाहित रहना

ही पड़ेगा। अगर इनमें से कोई विवाहित हो जायगा तो इसके बदले में किसी दूसरे को अविवाहित रहना पड़ेगा। धन से लड़कियाँ मिल सकती हैं परन्तु धन से लड़कियाँ बन तो नहीं सकतीं। इसलिये जब तक विधवाविवाह की सुप्रथा का प्रचार नहीं होता तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती।

आक्षेप (क)—अविवाहित रहने का कारण तो हमने कर्मोदय समझ रक्खा है। यह (बलाढ्यता) नया कारण तो आपने खूब ही निकाला। (विद्यानन्द)

समाधान—कर्मोदय तो अन्तरङ्ग कारण है और वह तो ऐसे हर एक कार्य का निमित्त है। परन्तु यहाँ तो बाह्य कारणों पर विचार करना है। विधवाविवाह का प्रचार भी अपने अपने कर्मोदय के कारण है फिर आप लोग क्यों उसके विरोध में हो हल्ला मचाते हैं? चोरी करना, खून करना, बलात्कार करना आदि अनेक अन्याय और अत्याचारों का निमित्त कर्मोदय है फिर शासनव्यवस्था की क्या आवश्यकता? कर्मोदय से बीमारी हुआ करती है फिर चिकित्सा और सेवा की कुछ ज़रूरत है कि नहीं? कर्मोदय से लक्ष्मी मिलती है फिर व्यापारादि की आवश्यकता है कि नहीं? मनुष्यतत्व दैव की गुलामी के लिये नहीं है प्रयत्न के लिये है। इसलिये भले ही कर्म अपनी शक्ति आज़मावे परन्तु हमें तो अपने प्रयत्न से काम लेना चाहिये।

'विधवाविवाह कर लेने पर भी कोई विवाहित न कहलायगा क्योंकि विधवाविवाह में विवाह का लक्षण नहीं जाता' इसका उत्तर हम दे चुके हैं, और विधवाविवाह को विवाह सिद्ध कर चुके हैं।

बीसवाँ प्रश्न

यहाँ यह पूछा गया है कि ये विधवाएँ न होतीं तो संख्यावृद्धि होती या नहीं। बहुत जातियों में विधवाविवाह होता है और सन्तान भी पैदा होती है इसलिये संख्यावृद्धि की बात तो निश्चित है। जहाँ विधवाविवाह नहीं होता वहाँ भ्रूणहत्या आदि से तथा दस्सा विनैकया आदि कहलाने वाली सन्तान पैदा होने से विधवाओं के जननीत्व का पता लगता है। विद्यानन्द जी का यह कहना निरर्थक प्रलाप है कि अगर वे बन्ध्या होतीं तो? बन्ध्या होतीं तो सन्तान न बढ़ती सिर्फ ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन होता। परन्तु जैनसमाज की सब विधवाएँ बन्ध्या हैं इसका कोई प्रमाण नहीं है बल्कि उनके अबन्ध्यापन के बहुत से प्रमाण हैं। श्रीलाल का यह कोरा भ्रम है कि विधवाविवाह वाली जातियों की संख्या घट रही है। कोई भी आदमी—जिसके आँखें हैं—विधवाविवाह और सन्तानवृद्धि की कार्यकारणव्याप्ति का विरोध नहीं कर सकता। रोग से, भूखों मर कर या अन्य किसी कारण से कहीं की मृत्युसंख्या अगर बढ़ जाय तो इस में विधवाविवाह का कोई अपराध नहीं है। उससे तो यथासाध्य संख्या की पूर्ति ही होगी। परन्तु बलाद्वैधव्य से तो संख्या हानि ही होगी।

विधवाविवाह से व्यभिचारनिवृत्ति नहीं होती, इसका खण्डन हम पहिले कई बार कर चुके हैं। शुद्धि की चर्चा के लिये अलग प्रश्न है। वहीं विचार किया जायगा।

आक्षेप (क)—माता बहिन आदि से भोग करने में भी सन्तान हो सकती है। (श्रीलाल)

समाधान—जिस दिन माताओं और बहिनों को पुत्र

और भाई को छोड़ कर दुनियाँ में और कोई पुरुष न मिलेगा और पुरुषों को माँ बहिन छोड़कर और कोई स्त्री न मिलेगी, भाई बहिन में और माँ बेटे में गुप्त व्यभिचार की मात्रा बढ़ जावेगी, भ्रूणहत्याएँ होने लगेंगी, उनकी कामवासना को सीमित करने के लिये और कोई स्थान न रहेगा, उस दिन माँ बेटे और बहिन भाई के विवाह की समस्या पर विचार किया जा सकता है। आक्षेपक विधवाविवाह से बढ़ने वाली संख्या के ऊपर माँ बहिन के साथ शादी करने की बात कह कर जिस घोर निर्लज्जता का परिचय दे रहा है, क्या यह परिचय विधुरविवाह के विषय में नहीं दिया जा सकता ? सन्तान के बहाने से अपना पुनर्विवाह करने वाले विधुर, अपनी माँ बहिन से शादियाँ क्यों नहीं करते ? जो उत्तर विधुरविवाह के लिये है वही उत्तर विधवाविवाह के लिये है।

इस प्रश्न में यह आक्षेपक अन्य प्रश्नों से अधिक लड़खड़ाया है, इसलिये कुछ भी न लिखकर यह असभ्य कथन तथा लेंडगा आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

आक्षेप—(ख) अठारहवें प्रश्न में आपने कहा था कि प्रतिवर्ष जैनियों की संख्या ७ हज़ार घट रही है। अब कहते हैं कि बढ़ रही है। ऐसे हरजाई (रिपोर्ट) का हम विचार नहीं करते। (विद्यानन्द)

समाधान—आपके विश्वास न करने से रिपोर्ट की उपयोगिता नष्ट नहीं होती, न वस्तुस्थिति बदल जाती है। पशु के आँख मीचने से शिकारी का अस्तित्व नहीं मिट जाता। जैनियों की जनसंख्या प्रतिवर्ष सात हज़ार घट रही है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि जैनियों के किसी घर में जनसंख्या बढ़ती नहीं है। ऐसे भी घर हैं जिनमें दो से दस आदमी हो गये होंगे परन्तु वे घर कई गुणे हैं जिनमें दस से

दो आदमी ही रह गये हैं। कहीं वृद्धि और कहीं हानि तो होती ही है परन्तु औसतन सात हज़ार हानि का है। किसी किसी जातिमें संख्या बढ़ने से जैन समाज की संख्याहानि का निषेध नहीं किया जा सकता। जिन जातियों में विधवाविवाह का रिवाज है उनमें संख्या नहीं घटती है, या बढ़ती है। साथ ही जिन जातियों में विधवाविवाह का रिवाज नहीं है उनमें इतनी संख्या घटती है कि विधवाविवाह वाली जातियों की संख्या-वृद्धि उस घटी को पूरा नहीं कर पाती।

आक्षेप (ग)—हमारी दृष्टि में तो विधवाविवाह से बढ़ने वाली संख्या निर्जीव है। (विद्यानन्द)

समाधान—इसका उत्तर तो यूरोप अमेरिका आदि देशों के नागरिकों की अवस्था से मिल जाता है। प्राचीनकाल के व्यभिचारजात सुदृष्टि आदि महापुरुष भी ऐसे आक्षेपकों का मुँहतोड़ उत्तर देते रहे हैं। विशेष के लिये देखो (१८ ङ)

आक्षेप (घ)—विधुरत्व के दूर करने का उपाय शास्त्रों में है। साध्य के लिये औषध विधान है असाध्य के लिए नहीं। एक ही कार्य कहीं कर्तव्य और सफल होता है, कहीं अकर्तव्य और निष्फल।

समाधान—विधुरत्व और वैधव्य के लिये एक ही विधान है, इस विषय में इस लेख में अनेकबार लिखा जा चुका है। असाध्य के लिये औषध का विधान नहीं है परन्तु असाध्य उसे कहते हैं जो चिकित्सा करने पर भी दूर न हो सके। वैधव्य तो विधुरत्व के समान पुनर्विवाह से दूर हो सकता है, इसलिये वह असाध्य नहीं कहा जा सकता। एक ही कार्य कहीं कर्तव्य और कहीं अकर्तव्य हो जाता है इसलिये कुमार कुमारियों के लिये विवाह कर्तव्य और विधुर विधवाओं के लिये अकर्तव्य होना चाहिये। पुनर्विवाह यदि विधुरों के लिये अकर्तव्य नहीं है

तो विधवाओं के लिये भी अकर्तव्य नहीं कहा जा सकता।

आक्षेप (ङ)—मोक्ष जाने वाले ६०८ जीवों की संख्या में कमी न आजाय इसलिये हम विधवाविवाह का विरोध करते हैं। (विद्यानन्द)

समाधान—जैनधर्मानुसार छः महीने आठ समय में ६०८ जीव मोक्ष जाने का नियम अटल है। उसकी रक्षा के लिये आक्षेपक का प्रयत्न हास्यास्पद है। फिर आक्षेपक जहाँ (भरत-क्षेत्र में) प्रयत्न करता है वहाँ तो मोक्षका द्वार अभी बन्द ही है। तीसरी बात यह है कि विधवाविवाह से मोक्ष का मार्ग बन्द नहीं होता। शास्त्रों की आज्ञाएँ जो पहिले लिखी जा चुकी हैं और सुदृष्टि का जीवन इस बात के प्रबल प्रमाण हैं।

आक्षेप (च)—सव्यसाची, तुम औरतों की भाँति बिलख बिलख कर क्यों रो रहे हो ? तुम्हें औरत कौन कहता है ? तुम अपने आप औरत बनना चाहो तो १। डबल के बताशे भेजदो। यहाँ से एक तावीज़ भेजदिया जायगा। तुम तो न औरत हो न मर्द। सव्यसाची (अर्जुन) नपुंसक हो। (विद्यानन्द)

समाधान—आक्षेपकों को जहाँ अपनी अज्ञानता का मात्राधिक परिचय होगया है वहाँ उनने इसी प्रकार गालियाँ दी हैं। ये गालियाँ हमने इनके भंडपन की पोल खोलने के लिये नहीं लिखी हैं परन्तु इनके टुकड़खोरपन को दिखाने के लिये लिखी हैं। आक्षेपक १। पैसे के बताशों में मुझे स्त्री बना देने को या दुनिया में प्रसिद्ध कर देने को तैयार हैं। जो लोग १। पैसे में मर्द को स्त्री बनाने के लिये तयार हैं वे भरपेट रोटियाँ मिलने पर धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म कहने के लिये तयार हो जायँ तो इसमें क्या आश्चर्य है ! जो लोग इन पंडितों को टुकड़ों का गुलाम कहते हैं वे लोग कुछ नरम शब्दों का

ही प्रयोग करते हैं। आक्षेपक ने तावीज़ बाँधने की बात कह-कर अपने गुप्त जीवन का परिचय दिया है। तावीज़ बाँधने वाले बगुलाभक्त ठगों से पाठक अपरिचित न होंगे। रही नपुं-सकता की बात सो यदि कौरवदल को पाप का फल चखाने वाला और उसी भव से मोक्ष जाने वाला अर्जुन नपुंसक है तो ऐसी नपुंसकता गौरव की वस्तु है। उस पर अनन्तपोंगा-पंथियों का पुरुषत्व न्योछावर किया जा सकता है।

हमने एक जगह लिखा है कि "हमने विधवाविवाह का विरोध करके स्त्रियों के मनुष्योचित अधिकारों को हड़पा इसलिये आज हमें दुनियाँ के सामने औरत बनके रहना पड़ता है। कभी २ एक आदमी के द्वारा 'हम' शब्द का प्रयोग समाज के लिये किया जाता है। यहाँ 'हम' शब्द का अर्थ 'जैनसमाज' स्पष्ट है। परन्तु जब कुछ न बना तो आक्षेपक ने इसी पर गालियाँ देना शुरू कर दीं।

इस तरह के वाक्य तो हम भी आक्षेपक के वक्तव्य में से उद्धृत कर सकते हैं। १८ वें प्रश्न में आक्षेपक ने एक जगह लिखा है कि "हम विधवाओं के लिये तड़प रहे हैं, उन्हें अपनी बनाने के लिये छटपटा रहे हैं।" अब इस आक्षेपक से कोई पूछे कि 'जनाब! आप ऐसी बदमाशी क्यों कर रहे हैं।'

आक्षेप (छ)—यदि जैनधर्म का सम्बन्ध रक्त मांस से नहीं है तो उसके भक्षण करने में क्या हानि? (विद्यानन्द)

समाधान—हानि तो मलमूत्र मधुमद्य आदि के भक्षण करने में भी है तो क्या जैनधर्म के लिये इन सब चीज़ों के उपयोग की भी आवश्यकता होगी? जिसके भक्षण करने में भी हानि है उसको जैनधर्म का आधार स्तम्भ कहना ग़ज़ब का पाण्डित्य है। यहाँ तो आक्षेपक के ऊपर ही एक प्रश्न

खड़ा होता है कि जब आप रक्त मांस में शुद्धि समझते हैं तो उसके भक्षण करने में क्या दोष ?

आक्षेप (ज)—द्रव्यवेद (स्त्री) पाँचवें तक क्यों ? भाववेद नवमें तक क्यों ? क्या यह सब विचार रक्त माँस का नहीं है । (विद्यानन्द)

समाधान—वेद को रक्तमांस समझना भी अद्भुत पाण्डित्य है । खैर, यह प्रश्न भी आक्षेपक के ऊपर पड़ता है कि एक ही माता पिता से पैदा होने वाले भाई बहिन की रक्त-शुद्धि तो समान है फिर स्त्री पाँचवें गुणस्थान तक ही क्यों ? यदि स्त्रियों में रक्त माँस की शुद्धि का अभाव माना जाय तो क्या उनके सहोदर भाइयों से उनकी कुल जाति जुदी मानी जायगी ? और क्या सभी स्त्रियाँ जारज मानी जायँगी ?

आक्षेप (झ)—बिना वज्र वृषभनाराच संहनन के मुक्ति प्राप्त नहीं होती । कहिये शरीर शुद्धि में धर्म है या नहीं ?

समाधान—संहनन को भी रक्त मांस शुद्धि समझना विचित्र पाण्डित्य है । क्या व्यभिचारजातों के वज्र वृषभनाराच संहनन नहीं होता ? क्या मच्छों के वज्र वृषभनाराच संहनन नहीं होता ? यदि होता है तो इन जीवों का शरीर ब्राह्मी सुन्दरी सीता आदि देवियों और पञ्चमकाल के श्रुतकेवली तथा अनेक आचार्यों के शरीर से भी शुद्ध कहलाया क्योंकि इनके वज्रवृषभनाराच संहनन नहीं था । कहीं रक्त शुद्धि का अर्थ कुलशुद्धि जातिशुद्धि करना, कहीं संहनन करना विक्षिप्तता नहीं तो क्या ?

आक्षेप (ञ)—सुभग आदि प्रकृतियों के उदय से पुण्यात्मा जीवों के संहनन संस्थान आदि इतने प्रिय होते हैं कि उन्हें छाती से चिपटाने की लालसा होती है ।

(विद्यानन्द)

समाधान—इसीलिये तो शरीर के साथ जैनधर्म का कुछ सम्बन्ध नहीं है। शरीर के अच्छे होने से उसे छाती से चिपटाने की लालसा होती है परन्तु किसी को छाती से चिपटाने से मोक्ष नहीं मिलता, मोक्ष दूर भागता है। धर्म और मोक्ष के लिये तो यह विचार करना पड़ता है कि "पल रुधिर राधमल थैली, कीकस बसादि तें मैली। नवद्वार बहें घिनकारी, अस देह करें किम यारी॥"

आक्षेप (ट)—जहाँ रक्त मांस की शुद्धि नहीं है, वहाँ धर्मसाधन भी नहीं है, यथा स्वर्ग आदि। (विद्यानन्द)

समाधान—देवों के शरीर में रक्तमांस की शुद्धि नहीं है परन्तु अशुद्धि भी तो नहीं है। यदि शरीर का धर्म से सम्बन्ध होता तो देवों को मोक्ष बहुत जल्दी मिलता। समन्तभद्र स्वामी ने आप्तमीमांसा में, तीर्थंकर भगवान को लक्ष्य करके कहा है कि "भगवन्! शारीरिक महत्व तो आपके समान देवों में भी है इसलिये आप महान * नहीं हैं"। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। पहिली तो यह है कि परमात्मा बनने के लिये या परमात्मा कहलाने के लिये शरीर शुद्धि की बात कहना मूर्खता है। दूसरी यह कि देवों का शरीर भी शुद्ध होता है फिर भी वे धर्म नहीं कर पाते। अगर 'रक्त मांस की शुद्धि' शब्द को ही पकड़ा जाय तो भोगभूमिजों के यह शुद्धि होती है, फिर भी वे धर्म नहीं कर पाते हैं। पशुओं के यह शुद्धि नहीं होती किन्तु फिर भी वे इन सबसे अधिक धर्म पंचमगुणस्थान और शुक्ल लेश्या धारण कर लेते हैं। शरीरशुद्धिधारी भोगभूमिज तो सिर्फ़ चौथा गुणस्थान और पीत लेश्या तक ही धारण करपाते हैं।

* अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः। दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः।

म्लेच्छ और सुदृष्टि के मोक्षगमन तथा पूज्यपाद और रविषेण आदि आचार्यों के प्रमाणों से व्यभिचारजात आदि भी मोक्ष जा सकते हैं यह बात लिखी जा चुकी है।

इक्कीसवाँ प्रश्न।

अल्पसंख्या होने से मुनियों को आहार में कठिनाई होती है। यद्यपि आजकल मुनि नहीं हैं, फिर भी अगर मुनि हों तो वे सब जगह विहार नहीं कर सकते क्योंकि अनेक प्रान्तों में जैनी हैं ही नहीं और जहां हैं भी वहां प्रायः नगरों में ही हैं। मुनियों में अगर इतनी शक्ति हो कि वे जहाँ चाहें जाकर नये जैनी बनावें और समाज के ऊपर प्रभाव डालकर उन नये जैनियों को समाज का अङ्ग स्वीकार करावें तो यह समस्या हल हो सकती है। परन्तु हर जगह तुरन्त ही नये जैनी बनाना और उद्दिष्टत्यागपूर्वक उनसे आहार लेना मुश्किल है, इसलिये जैन समाज का बहुसंख्यक होने की आवश्यकता है। विधवाविवाह संख्यावृद्धि में कारण है, इसलिये विधवाविवाह मुनिधर्म के अस्तित्व के लिये भी अन्यतम साधन है।

आक्षेप (क)—जब मार्ग में जैन जनता नहीं तब जो भक्त गृहस्थ अपना काम धन्धा छोड़कर मुनिसेवामें लगे उस के समान दूसरा पुण्य नहीं। मुनियों को हाथ से रोटी बनाकर खाने की सलाह देना धृष्टता है।

समाधान——मुनियों को ऐसी सलाह देना धृष्टता होगी परन्तु ढोंगियों को ऐसी सलाह देना परम पुण्य है। जैनशास्त्रों के अनुसार उद्दिष्टत्याग के बिना कोई मुनि नहीं हो सकता और उद्दिष्टत्याग इसलिये कराया जाता है कि वे आरम्भजन्य हिंसा के पाप से बचें। निमन्त्रण करने में विशेषारम्भ करना पड़ता है। उद्दिष्टत्याग में सामान्य आरम्भ ही रहता है

सामान्य आरम्भ के अतिरिक्त जितना आरम्भ होता था उससे बचने के लिये उद्दिष्टत्याग का विधान है। इस ज़रासे आरम्भ के बचाने के लिये अगर श्रावकों को घर बटोर कर मुनियों के पीछे चलना पड़े और नये नये स्थानों में नये तरह से नया आरम्भ करना पड़े तो यह कीड़ी की रक्षा के नाम पर हाथी की हत्या करना है। दर्जनों कुटुम्बी परदेश में जाकर मुनियों के लिये इतना ज़्यादा आरम्भ करें तो इस कार्य को कोई महामूढ़ मिथ्यादृष्टि ही पुण्य समझ सकता है। इसकी अपेक्षा तो मुनि कहलाने वाला व्यक्ति हाथ से पकाके खाले तो ही अच्छा है।

आक्षेप (ख)—अछूतों के हाथ लगने से जल अपेय हो यह अन्धेर नहीं है। ·········उपदेश शक्यानुष्ठान का ही होता है। गेहूँ खाद्य है और खात अखाद्य।············जिनके हृदय में भङ्गी चमार ब्राह्मण सब एक हों उस मुए की दृष्टि में सब अन्धेर ही रहेगा। (श्रीलाल)

समाधान—पण्डितदल की मूढ़तापूर्ण मिथ्यात्ववर्धक मान्यता के अनुसार शूद्र के स्पर्श से जलाशय का जल भी अपेय होजाता है। इसपर हमने कहा था कि जलाशयों में तो स्वयं शूद्रों से भी नीच जलचर रहते हैं। इसपर आक्षेपक का कहना है कि वह अशक्यानुष्ठान है। खैर! जलाशयों को जलचरों के स्पर्श से बचाना अशक्यानुष्ठान सही परन्तु स्थलचर पशुओं के स्पर्श से बचाना तो शक्य है। फिर स्थलचर पशुओं के स्पर्श से जलाशयों का जल अपेय क्यों नहीं मानते? पशुओं के स्पर्श से अपेय न मानना और मनुष्यों के स्पर्श से अपेय मानना घोर धृष्टता नहीं तो क्या है? इसका स्पष्ट कारण तो यही है कि जिनके आगे तुम जातिमद का नङ्गा नाच कराना चाहते हो उन्हीं के विषय में अस्पृश्यता की बात निकालते हो।

खान का स्पर्श रस गन्ध वर्ण सभी घृणित हैं। उसमें कृमि आदि भी रहते हैं इसलिये वह अखाद्य है। गेहूँ में ये बुराइयाँ नहीं हैं इसलिये खाद्य है। क्या आक्षेपक बतलायगा कि जीवित प्राणियों को निगल जाने वाले मगर मच्छों में तथा अन्य अशुचिभोजी पशुओं में ऐसी कौनसी विशेषता है जिससे वे शूद्रों से भी अच्छे समझे जाते हैं।

हमारे सामने तो ब्राह्मण और शूद्र दोनों बराबर हैं। जो सदाचारी है वही उच्च है। तुम सरीखे सदाचारशत्रुओं और धर्मध्वंसियों में ही सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है। तुम लोग शैतान के पुजारी हो इसलिये दुराचारी को इतना घृणित नहीं समझते जितना शूद्र को। हम लोग भगवान महावीर के उपासक हैं इसलिये हमारी दृष्टि में शूद्र भी भाई के समान है। सिर्फ दुराचारी निंद्य है।

आक्षेप (ग)—जब तक शरीर में जीव है तब तक वह हाड़ मांस नहीं गिना जाता। (श्रीलाल)

समाधान—तब तो शूद्र का शरीर भी हाड़ मांस न गिना जायगा। फिर उसके हाथ के जल से और उससे छुए हुए जलाशय के जल तक से इतनी घृणा क्यों ?

विद्यानन्द ने हमारे लेख में भाषा की गल्तियाँ निकालने की असफल चेष्टा की है। हिन्दी में विभक्ति चिन्ह कहाँ लगाना चाहिये, कहाँ नहीं, इसके समझने के लिये आक्षेपक को कुछ अध्ययन करना पड़ेगा। 'खाने नहीं मिलता'—यहाँ 'को' लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर 'को' लगाना ऐसा अनिवार्य हो तो 'मैं जाने भी न पाया कि उसने पकड़ लिया' इस वाक्य में 'जाने' के साथ 'को' लगाना चाहिये और 'जाने को भी न पाया' लिखना चाहिये। 'ज़्यादा' 'ज़्यादह' 'ज़्यादह्' 'ज़्याद:' इनमें से कौनसा प्रयोग ठीक है इस की मीमांसा

का यह स्थल नहीं है। ऐसी अप्रस्तुत बातों को उठाकर आक्षेपक, अर्थान्तर नामक निग्रहस्थान में गिर गया है।

आक्षेप (घ)—नोटिसबाज़ी करते करते किसका दम निकला जाता है। गर्मी की बीमारी मुम्बई में हो सकती है। यहाँ तो नबाबी ठाठ है। (विद्यानन्द)

समाधान—नोटिसबाज़ी का गर्मी की बीमारी से क्या सम्बन्ध? और गर्मी की बीमारी के अभाव का नवाबीठाठ से क्या सम्बन्ध? ये बीमारियाँ तो नवाबी ठाठ वालों को ही हुआ करती हैं। हाँ, इस वक्तव्य से यह बात ज़रूर सिद्ध हो जाती है कि आक्षेपक, समाजसेवा की ओट में नवाबी ठाठ से खूब मौज उड़ा रहा है सो जब तक समाज अन्धी और मूढ़ है तब तक कोई भी उसके माल से मौज उड़ा सकता है।

आक्षेप (ङ)—दुनियाँ दूसरों के दोष देखती है परन्तु दिल खोजा जाय तो अपने से बुरा कोई नहीं है।

(विद्यानन्द)

समाधान—क्या इस बात का ख़याल आक्षेपक ने सुधारकों को कोसते समय भी किया है? मुनिवेषियों के विरुद्ध जो हमने लिखा है वह इसलिये नहीं कि हमें कुछ उन ग़रीब दीन जन्तुओं से द्वेष है। वे बेचारे तो भूख और मान कषाय के सताये हुए अपना पेट पाल रहे हैं और कषाय की पूर्ति कर रहे हैं। ऐसे निकृष्ट जीव दुनियाँ में अगणित हैं। हमारा तो उन सब से माध्यस्थ्य भाव है। यहाँ जो इन ढोंगियों की समालोचना की है वह सिर्फ़ इसलिये कि इन ढोंगियों के पीछे सच्चा मुनिधर्म बदनाम न हो जाय। अनाद्यविद्या की बीमारी से लोग यों ही मर रहे हैं। इस अपथ्य सेवन से उनकी बीमारी और न बढ़ जाय।

आक्षेप (च)—मुनियों के साथ श्रावक समूह का चलना नाजायज़ मजमा नहीं है।

समाधान—केवली को छोड़कर और किसी के साथ श्रावकसमूह नहीं चलता। हाँ, जब भट्टारकों की सृष्टि हुई और उनमें से जब पिछले भट्टारकों ने धर्मसेवा के स्थान में समाज से पूजा कराना और नवाबी ठाठ से रहना ही जीवन का ध्येय बनाया तब अवश्य ही उनने ऐसी आज्ञाएँ गढ़ डालीं जिससे उन्हें नाववी ठाठ से रहने में सुभीता हो। प्राचीन लोगों के महत्व बढ़ाने के बहाने उनने अपने स्वार्थ की पुष्टि की। पीछे भोले मनुष्यों ने उसे अपना लिया।

आक्षेप (छ)—रोटी तो आठवी प्रतिमा धारी भी नहीं बनाता। फिर मुनियों से ऐसी बात कहना तो असभ्य जोश की चरम सीमा है। (विद्यानन्द)

समाधान—जिन असभ्य ढोंगियों के लिये रोटी बनाने की बात कही गई है वे मुनि, आठवीं प्रतिमाधारी या पहिली प्रतिमाधारी तो दूर, जैनी भी नहीं हैं, निकृष्ट मिथ्यादृष्टि हैं। दूसरी बात यह है कि आरम्भ त्याग में आरम्भत्याग तो होना चाहिये। परन्तु ये लोग पेटपूजा के लिये जैसा घोर आरम्भ कराते हैं उसे देखकर एक उद्दिष्टत्यागी तो क्या आरम्भत्यागी भी शरमिन्दा हो जायगा। विशेष के लिये देखो २१-क। अछूत के विषय में २१-ख में विचार किया गया है।

आक्षेप (ज)—मुनियों के लिये अगर केवल अप्रासुक भोजन का ही विचार किया जाता तो मूलाचार आदि में १६ उद्गम दोष और ४६ अन्तराय टालने का विधान क्यों है ?
(विद्यानन्द)

समाधान—दोष और अन्तराय के भेद प्रभेद जो मूला-धार आदि में गिनाये गये हैं वे तीन बातों को लक्ष्य करके।

१ भोजन अप्रासुक तो नहीं है, २ मुनि को कोई कषाय भोगाकांक्षा आदि तो उत्पन्न नहीं होती है, ३ दाता में दाता के योग्य गुण हैं कि नहीं। भोजन के विषय में तो प्रासुकता के सिवाय और कोई विशेषण डालने की ज़रूरत नहीं है। शूद्र जल से प्रासुकता का भङ्ग होजाता है या कोई और दोष उपस्थित हो जाता है, इस बात का विधान भी मूलाचार में नहीं है। भोज्य के विषय में जितने दोष लिखे गये हैं वे सिर्फ़ इसीलिये कि किसी तरह से वह अप्रासुक तो नहीं है। जातिमद का नङ्गा नाच दिखाने के लिये जल के विषय में अविचारशून्य शर्तें तो इन मदान्ध ढोंगियों की ही हैं। जैनधर्म का इनके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

बाईसवाँ प्रश्न।

इस प्रश्नका सम्बन्ध भी बालविवाह से है। इस विषयमें पहिले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस विषयमें आक्षेपकों का लिखना बिलकुल हास्यास्पद है। अस्तु

आक्षेप (क)—विवाह करके जो ब्रह्मचर्य पालन करे वह अवश्य पुण्य का हेतु है। (श्रीलाल)

समाधान—क्या विवाह के पहिले ब्रह्मचर्य पाप का हेतु है? ब्रह्मचर्य को किसी समय पाप कहना कामकीटता का परिचय देना है।

आक्षेप (ख)—जिनेन्द्र की आज्ञाका भङ्ग करना पाप है। बारहवर्ष में विवाह करने की जिनेन्द्राज्ञा है। (श्रीलाल)

समाधान—जिनेन्द्र, विवाह के लिये कम से कम उमर का विधान कर सकते हैं, परन्तु ज्यादा से ज्यादा उमर का नहीं। १२ वर्ष का विधान जिनेन्द्र की आज्ञा नहीं है। कुछ लेखकों ने समय देखकर ऐसे नियम बनाये हैं, और ये कम से

कम उमर के विधान हैं। अन्यथा १६ वर्ष से अधिक उमर के कुमार का विवाह भी पाप होना चाहिये। ऐसी तुच्छ और ब्रह्मचर्यविरुद्ध आज्ञाओं को जिनेन्द्र की आज्ञा बतलाना जिनेन्द्र का अवर्णवाद करना है।

आक्षेप (ग)—जो ब्रह्मचर्य भी न ले और संस्कार भी समय पर न करे वह अवश्य पापी है। ब्राह्मी आदि ने तो जीवन भर विवाह नहीं किया इसलिये उन का ब्रह्मचर्य पाप नहीं है।
(श्रीलाल)

समाधान—संस्कार, व्रतादि की योग्यता प्राप्त कराने के लिये है। जब मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता तब आंशिक ब्रह्मचर्य के पालन कराने के लिये विवाह की आवश्यकता होती है। विवाह संस्कार पूर्णब्रह्मचर्य की योग्यता प्राप्त नहीं कराता इसलिये जबतक कोई पूर्णब्रह्मचर्य पालन करना चाहता है तबतक उसे विवाह संस्कार की आवश्यकता नहीं है। शास्त्रों में ऐसी सैकड़ों कुमारियों के उल्लेख हैं जिनने बड़ी उमर में, युवती हो जाने पर विवाह किया है।

विशल्या—विवाह के समय 'शातोदरी दिग्गजकुम्भशोभिस्तनद्वयानूतनयौवनस्था' अर्थात् गजकुम्भके समान स्तनवाली थी। पद्मपुराण ६५—७४।

जयचन्द्रा—सूर्यपुरके राजा शक्रधनुकी पुत्री जयचन्द्रा को अपने रूप और गुणों का बड़ा घमण्ड था। इसलिये पिता के कहने पर भी उस ने किसी के साथ शादी न कराई। अन्त में वह हरिषेण के ऊपर रीझी और अपनी सखीके द्वारा सोते समय हरिषेण का हरण करा लिया। फिर हरिषेण से विवाह कराया। वैवाहिक स्वातंत्र्य और उमर के बन्धन को न मानने का यह अच्छा उदाहरण है। पद्मपुराण ८ पर्व।

पद्मा—गाना, बजाना सीख रही थी। श्रीकण्ठको देखा तो मोहित होगई और माता पितादि की चोरी से श्रीकण्ठ के साथ चल दी। पिता ने श्रीकण्ठका पीछा किया किन्तु लड़ाई के अवसर पर पद्मा ने कहला दिया कि मैं अपनी इच्छा से आई हूँ, मैं इन्हीं के साथ विवाह करूँगी। अन्तमें पिता चला गया और इसने श्रीकण्ठसे विवाह कर लिया। ६पर्व पद्मपुराण।

अञ्जना—विवाह के समय 'कुंभिकुम्भनिभस्तनी' गजकुम्भके समान स्तन वाली अर्थात् पूर्ण युवती थी। पद्मपुराण १५—१७।

कैकया—गाना नाचना आदि अनेक कलाओं में प्रवीण, दशरथ को युद्ध में सहायता देनेवाली कैकया का वर्णन जैसा पद्मपुराण २४ वें पर्व में विस्तार से मिलता है वह १२ वर्ष की लड़की के लिए असम्भव है।

आठकुमारियाँ—चन्द्रवर्धन विद्याधरकी आठ लड़कियाँ। सीता स्वयम्बर के समय इनने लक्ष्मण को मन ही मन वर लिया था परन्तु विवाह उस समय न हो पाया। जब लक्ष्मण रावण से युद्ध कर रहे थे उस समय भी ये लक्ष्मण को देखने पहुंची। युद्ध के बाद विवाह हुआ। ये एक ही माता से पैदा हुई थीं इसलिये अगर छोटी की उमर १२ वर्ष की हो तो बड़ी की उमर १६ की ज़रूर होगी। फिर सीता स्वयम्बर के समय जिनने मन ही मन लक्ष्मण का वरण किया उनका उस समय विवाह न हुआ, कई वर्ष बाद लंकाविजय के बाद विवाह हुआ, उस समय तक उनकी उमर और भी ज़्यादा बढ़ गई।

आठ गन्धर्व कन्याएँ—एक ही माता से पैदा हुईं इसलिये इनकी उमर में अन्तर था। परन्तु ये एक साथ रामचन्द्र

से विवाह हो गई। विवाह के योग्य उमर हो जाने पर इच्छित वर के न मिलने से इन्हें बाट देखते रुकना पड़ा।

लङ्कासुन्दरी—हनुमान् के साथ इसने घोर युद्ध किया। पद्मपुराण के ५३वें पर्व में इसका चरित्र पढ़ने से इसकी प्रौढ़ता का पता लगता है।

पुराणों में ऐसे सैकड़ों उल्लेख मिलते हैं जिनसे युवती-विवाह का पूर्ण समर्थन होता है। कन्याएँ कोई प्रतिज्ञा कर लेतीं या किसी खास पुरुष को चुन लेतीं जिसके कारण उन्हें वर्षों बाट देखनी पड़ती थी। ऐसी अवस्था में १२ वर्ष की उमर का नियम नहीं हो सकता। कन्याओं के जैसे वर्णन मिलते हैं उनसे भी उनके यौवन और परिपक्वबुद्धिता का परिचय मिलता है जो १२ वर्ष की उमर में असम्भव है।

इन उदाहरणों से यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि पुराने समय में कन्या को स्वतन्त्रता थी और उन्हें पति पसंद करने का अधिकार था। इस स्वतन्त्रता और पसन्दगी का विरोध करने वाले शास्त्रविरोधी और धर्मलोपी हैं।

आक्षेप (घ)—यदि ब्रह्मचर्य की इतनी हिमायत करना है तो विधवा के लिये ब्रह्मचर्य का ही विधान क्यों नहीं बनाया जाता?

समाधान—चाहे कुमारियाँ हों या विधवाएँ हों हम दोनों के लिये बलाद् ब्रह्मचर्य और बलाद्विवाह बुरा समझते हैं। जो विधवाएँ ब्रह्मचर्य से रहना चाहें, रहें। जो विवाह करना चाहें, विवाह करें। कुमारियों के लिये भी हमारा यही कहना है। कुमारी और विधवा जब तक ब्रह्मचर्य से रहेंगी तब तक पुण्यबन्ध होगा।

आक्षेप (ङ)—जो लोग यह कहते हैं कि जितना ब्रह्मचर्य पल सके उतना ही अच्छा है वे ब्रह्मचर्य का अर्थ ही

नहीं समझते । ब्रह्मचर्य का अर्थ मजबूरी से मैथुन का अभाव नहीं है किन्तु आत्मा की ओर ऋजु होने को ब्रह्मचर्य कहते हैं । कोई कन्या मनमें किसी सुन्दर व्यक्ति का चिंतवन कर रही है । क्या आप उसे ब्रह्मचारिणी समझते हैं ?

(विद्यानन्द

समाधान—कितनी अच्छी बात है ! मालूम होता है छिपी हुई सुधारकता असावधानी से छलक पड़ी है । यही बात तो सुधारक कहते हैं कि विधवाओं के मैथुनाभाव को वे ब्रह्मचर्य नहीं मानते क्योंकि यह विधवाओं को मजबूरी से करना पड़ता है और यह मजबूरी निरुपाय है । कुमारियों के लिये यह बात नहीं है । उन्हें मजबूरी से ब्रह्मचर्य पालन नहीं करना पड़ता । फिर उनके लिये विवाह का मार्ग खुला हुआ है । विवाहसामग्री रहने पर भी अगर कोई कुमारी विवाह नहीं करती तो उसका कारण ब्रह्मचर्य ही कहा जासकता है । विधवाओं को अगर विवाह का पूर्ण अधिकार हो और फिर भी अगर वे विवाह न करें तो उनका वैधव्य ब्रह्मचर्य कहलायगा ।

आक्षेप (च)—सबको एक घाट पानी पिलाना—एक डंडे से हाँकना नीतिविरुद्ध है ।

समाधान—एक घाट से पानी पिलाया जाता है और एक डण्डे से बहुत से पशु हांके जाते हैं । जब एक घाट और एक डण्डे से काम चलता है तब उसका विरोध करना फ़िज़ूल है । कुमार कुमारी और विधुरों को जिन परिस्थितियों के कारण विवाह करना पड़ता है वे परिस्थितियाँ यदि विधवा के लिये भी मौजूद हैं तो वे भी विवाहघाट से पानी पी सकती हैं ।

तेईसवाँ प्रश्न ।

इस प्रश्न का सम्बन्ध विजातीय विवाह से अधिक है। विजातीय विवाह के विषय में इतना लिखा जा चुका है कि अब जो कुछ लिखा जाय वह सब पिष्टपेषण ही होगा।

आक्षेप (क)—वामदेव कहते हैं कि जातियाँ अनादि हैं। (श्रीलाल विद्यानन्द)

समाधान—जातियाँ दो तरह की हैं—कल्पित, अकल्पित। एकेन्द्रिय आदि अकल्पित जातियाँ हैं। बाकी ब्राह्मण क्षत्रियादि कल्पित जातियाँ हैं। एकेन्द्रिय आदि अकल्पित जातियाँ अनादि हैं। कल्पित जातियाँ अनादि नहीं हैं अन्यथा इनकी रचना ऋषभदेव ने की या भरत ने की—यह बात शास्त्रों में क्यों लिखी होती?

आक्षेप (ख)—नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने १२ लाख जातियाँ कही हैं। (श्रीलाल)

समाधान—आक्षेपक अगर किसी पाठशाला में जाकर गोम्मटसार पढ़ले तो वह नेमिचन्द्र को समझने लगेगा। नेमिचन्द्र ने सिर्फ़ पाँच ही जातियों का उल्लेख किया। १२ लाख जातियों का उल्लेख बताने के लिये हम आक्षेपक को चुनौती देते हैं। १२ लक्ष कोटी कुलों का उल्लेख नेमिचन्द्र ने ज़रूर किया है परन्तु उन कुलों को जाति समझ लेना घोर मूर्खता का परिचय देना है। गोम्मटसार टीका में ही कुल भेदों का अर्थ शरीरोत्पादक वर्गणाप्रकार किया गया है। अर्थात् शरीर बनने के लिये जितनी तरह की वर्गणाएँ लगती हैं उतने ही कुल हैं। एक ही योनिसे पैदा होने वाले शरीरोंके कुल लाखों होते हैं क्योंकि योनिभेदसे कुलके भेद लाखों गुणे हैं और एक ही जाति—में चाहे वह कल्पित हो या अकल्पित—लाखों

तरह की योनियाँ होती हैं। इसलिये योनि या कुल को जातियाँ कह देना बिलकुल मूर्खता है। शास्त्रकारों ने भी योनिभेद और कुलभेदों को जाति नहीं कहा। नारकियों में जातिभेद नहीं है फिर भी लाखों योनियाँ और मनुष्यों की अपेक्षा दुगुने से भी अधिक कुल हैं।

आक्षेप (ग)—कालकी पलटनाके अनुसार जातियोंकी संज्ञाएँ भी बदल गईं। (विद्यानन्द)

समाधान—तो पुराने नाम मिलना चाहियें या अन्य किसी रूप में इनका उल्लेख होना चाहिये।

आक्षेप (घ)—जाति एक शब्द है, उसका वाच्य अगर गुणरूप है तो अनादि अनन्त है। अगर पर्यायरूप है तो ध्रौव्य क्या है। जो ध्रौव्य है वही जातियों का जीवन है।

(विद्यानन्द)

समाधान—सदृशता को जाति कहते हैं। सदृशता गुण पर्याय आदि सभी में हो सकती है। द्रव्य गुण की सदृशता अनादि है और पर्याय की सदृशता सादि है। वर्तमान जातियाँ (जिनमें विवाह की चर्चा है) तो न गुणरूप हैं न पर्यायरूप। वे तो बिलकुल कल्पित हैं। नामनिक्षेप से अधिक इनका महत्त्व नहीं है। यदि इनको पर्यायरूप माना जाय तो इनका मूल जीव मानना पड़ेगा। इसलिये आक्षेपक के शब्दानुसार 'जीवत्व' जाति कहलायगी। जीव को एक जाति मान कर उसका पुद्गल धर्म अधर्म से विवाह करने का निषेध किया जाय तो कोई आपत्ति नहीं है।

जिस प्रकार कलकतिया, बंगाली, बिहारी, लखनवी, कानपुरी आदि में अनादित्व नहीं है उसी प्रकार ये जातियाँ हैं।

यदि आक्षेपक का दल इन उपजातियों को अनादि

अनन्त मानता है, छठे काल में भी ये जातियाँ बनी रहती हैं तो यह मानना ही पड़ेगा कि विजातीय विवाह आदि से इन जातियों का नाश नहीं हो सकता। जब जाति का नाश करना असम्भव है तो उसकी रक्षा करने की चिन्ता मूर्खता है।

आक्षेप (ङ)—अनुमानतः इन जातियों का नवीनत्व असिद्ध है। (विद्यानन्द)

समाधान—भोगभूमियों में जातिभेद नहीं था। ऋषभदेव ने तीन जातियाँ बनाईं। भरत ने चौथी। इससे इतना तो सिद्ध हो गया कि ये भरत के पीछे की हैं। इसके बाद किसी अन्य तीर्थंकरादि ने इनकी रचना की हो ऐसा उल्लेख कहीं नहीं है। हाँ, ऐतिहासिक प्रमाण इतना अवश्य मिलता है कि ह्युएनसंग के ज़माने में भारत में सिर्फ़ ३६ जातियाँ थीं और आज क़रीब ४ हज़ार हैं।

इससे मालूम होता है कि पिछले डेढ़ दो हज़ार वर्षों में जातियों का उभार आता रहा है उसी से ये जातियाँ बनी हैं। जब तक जैनियों का सामाजिक बल रहा तब तक इन जातियों की सृष्टि करने की ज़रूरत हो ही नहीं सकती थी। बाद में इनकी सृष्टि हुई है।

चौबीसवाँ प्रश्न।

इस प्रश्न में यह पूछा गया था कि विधवाविवाह से इनके कौन कौन अधिकार छिनते हैं। यह बात हमने अनेक प्रमाणों से सिद्ध की है कि इनके कोई अधिकार नहीं छिनते। परन्तु श्रीलाल ने तो बिलकुल पागलपन का परिचय दिया है। यह बात उसके आक्षेपों से मालूम हो जायगी।

आक्षेप (क)—जो अधिकारी होकर अधिकार सम्बन्धी क्रिया नहीं करता वह धिक्कारी बन जाता है।

समाधान—कोई इस आक्षेपक से पूछे कि तुझे मुनि बनने का अधिकार है या नहीं? यदि है, तो तू मुनि क्यों नहीं बनता? अब तुझे धिक्कारी कहना चाहिये? क्या आक्षेपक इतना भी नहीं समझता कि मनुष्य को धर्म करने का पूर्ण अधिकार है परन्तु धर्म उतना ही किया जासकता है कि जितनी शक्ति होती है। (विशेष के लिये जैनजगत् वर्ष ४ अङ्क ७ में 'योग्यता और अधिकार' शीर्षक लेख देखना चाहिये।)

"योरुपवाले मांसभक्षी हैं इसलिये जो हिन्दुस्थानी योरुप जाते हैं उनका वे अपमान करते हैं क्योंकि योरुप जाने वाले भारतीय धर्मकर्मशून्य हैं"। श्रीलाल के इन शब्दों के विषय में कुछ कहना वृथा है। भारतीय छूताछूत छोड़ देते हैं या पोप पण्डितों की आज्ञा में नहीं चलते इसलिये उनका विलायत के लोग अपमान करते हैं, ऐसा कहना ज़बर्दस्त पागलपन के सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

आक्षेप (ख)—सुमुख आदि के दृष्टान्त से व्यभिचार की पुष्टि नहीं होती। वे तो त्याग करके उत्तम गति गये। दानादि करके उत्तमगति पाई। इसमें कौनसा आश्चर्य है?

(श्रीलाल)

समाधान—धर्म से ही उत्तम गति मिलती है, परन्तु इस सिद्धान्त को तुम लोग कहाँ मानते हो। तुम्हारा तो कहना है कि ऐसा आदमी मुनि नहीं बन सकता, दान नहीं दे सकता, यह नहीं कर सकता, वह नहीं कर सकता। अब तुम यह स्वीकार करते हो कि व्यभिचारी भी दान दे सकता है, मुनि या आर्यिका के व्रत ले सकता है। यही तो हम कहते हैं। विवाह से या व्यभिचार से मोक्ष कोई नहीं मानता। तुम्हारे कहने से भी यह सिद्ध हो जाता है। जैनधर्म के अनु-

सार भी उन जातियों के कोई अधिकार नहीं छिन सकते। सुदृष्टि के लिये अलग प्रश्न है।

विद्यानन्दजी की बहुतसी बातों की आलोचना प्रथम प्रश्न में हो चुकी है।

आक्षेप (ग) विधवाविवाह की सन्तान कभी मोक्षाधिकारिणी नहीं हो सकती। विष का बीज इसलिये भयङ्कर नहीं है कि वह विष बीज है परन्तु विषबीजोत्पादक होने से भयङ्कर है। (विद्यानन्द)

समाधान—यह विचित्र बात है। विषबीज अगर स्वतः भयङ्कर नहीं है तो उस के खाने में कोई हानि न होनी चाहिये, क्योंकि पेट में जाकर वह विषबीज पैदा नहीं कर सकता। व्यभिचारी तो वास्तविक अपराधी है। उस के तो अधिकार छिने नहीं और उस की निरपराध सन्तान का अधिकार छिन जाय यह अन्धेर नगरी का न्याय नहीं तो क्या है? खैर।

रविषेण आचार्य के कथनानुसार व्यभिचारजात में कोई दूषण नहीं होता। यह हम पहिले लिख चुके हैं। सुदृष्टि के उदाहरण से भी यह बात सिद्ध होती है।

आक्षेप (घ)—सव्यसाची का यह कहना कि "विधवाविवाह तो व्यभिचार नहीं है। उससे किसी के अधिकार कैसे छिन सकते हैं"? यह बात सिद्ध करती है कि व्यभिचार से अधिकार छिनते हैं।

समाधान—हमारी पूरी बात उद्धृत न करके आक्षेपक ने पूरी धूर्तता की है। समाज की आँखों में धूल झोंकना चाहा है। पूरी बात यह है 'व्यभिचारजात सुदृष्टि सुनार ने मुनि दीक्षा ली और मोक्ष गया। यह बात प्रसिद्ध ही है। इससे मालूम होता है कि व्यभिचार से या व्यभिचारजात होने से

किसी के अधिकार नहीं छिनते। विधवाविवाह तो व्यभिचार नहीं है। उससे किसी के अधिकार कैसे छिन सकते हैं ?'

पच्चीसवाँ प्रश्न।

जिन जातियों में विधवाविवाह होता है उन में कोई मुनि बन सकता है या नहीं ? इसके उत्तरमें दक्षिण की जातियाँ प्रसिद्ध हैं। शांतिसागर की जाति में विधवाविवाह का आम-तौर पर रिवाज है।

आक्षेप (क)—जिन घरानों में विधवाविवाह होता है उन घरानेके पुरुष दीक्षा नहीं लेते। पटैल घरानोंमें विधवाविवाह बिलकुल नहीं होता। कोई खंडेलवाल अगर विधवा-विवाह करले तो समग्र खंडेलवाल जाति दूषित नहीं हो सकती।

समाधान—शांतिसागरका भूठापन अच्छी तरह सिद्ध किया जाचुका है। सामना हो जाने पर जैसा वे मुँह छिपाते हैं उससे उनकी कलई बिलकुल खुल जाती है। पटैल घरानेके विषय में लिखा जा चुका है। खुद शान्तिसागर के भतीजे ने विधवाविवाह किया है। यह बात जैनजगत् में सप्रमाण निकल चुकी है।

यह ठीक है कि एक खगडेलवालके कार्यसे वह जातीय रिवाज नहीं बन जाता है। परन्तु अगर सैकड़ों वर्षोंसे हज़ारों खगडेलवाल विधवा-विवाह कराते हों, वे जाति में भी शामिल रहते हों, उनका रोटी बेटी व्यवहार सब जगह होता हो, तब वह रिवाज ही माना जायगा। शान्तिसागर जी की जाति में विधवाविवाह ऐसा ही प्रचलित है।

आक्षेप (ख)—यदि अनधिकारी होकर भी कोई दस्सामुनि बनजाय तो मुनिमार्ग का वह विकृत रूप उपादेय कदापि नहीं हो सकता। (विद्यानन्द)

समाधान—शान्तिसागर का मुनि बनना अगर विकृत रूप है तो दस्सों को मुनि न बनने देने वाले शान्तिसागर को मुनि क्यों मानते हैं ? अगर मुनि मानते हैं तो किसी का मुनि बनने का अधिकार नहीं छिन सकता।

होना और सकना में कार्य कारण भाव है। जहाँ होना है वहाँ सकना अवश्य है। अगर कोई स्वर्ग जाता है तो इससे यह बात आप ही सिद्ध हो जाती है कि वह स्वर्ग जा सकता है। जब शास्त्रों में ऐसे मुनियों के बनने का उल्लेख है, उन्हें मोक्ष तक प्राप्त हुआ है तब उन्हें मुनि बनने का अधिकार नहीं है ऐसा कहना मूर्खता है।

सच्चे शास्त्रोंमें कहीं किसीका कोई अधिकार नहीं छीना गया। अच्छे काम करने का अधिकार कभी नहीं छीना जा सकता। अथवा नरपिशाच राक्षस ही ऐसे अधिकारों को छीनने की गुस्ताखी कर सकते हैं।

छब्बीसवाँ प्रश्न ।

विधवाविवाह के विरोधियों का यह कहना है कि उससे पैदा हुई सन्तान मोक्षाधिकारिणी नहीं होती। हमारा कथन यह है कि विधवाविवाह से पैदा हुई सन्तान व्यभिचार-जात नहीं है और मोक्षाधिकारी तो व्यभिचारजात भी होते हैं। आराधना कथा कोष में व्यभिचारजात सुदृष्टि का चरित्र इसका ज़बर्दस्त प्रमाण है।

आक्षेप (क)—सुदृष्टि स्वयं अपने वीर्य से पैदा हुये थे। (श्रीलाल) विवाहित पुरुष से भिन्नवीर्य द्वारा जो सन्तान हो वह व्यभिचारजात सन्तति है।...ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीन वर्णों की कोई स्त्री यदि परपुरुषगामिनी हो जाय तो परपुरुषोत्पन्न सन्तान मोक्ष की अधिकारिणी नहीं

है क्योंकि वहाँ कुलशुद्धि का अभाव है। यदि उसी स्त्री के व्यभिचारिणी होने के पहिले स्वपति से कोई सन्तान हो तो वह सन्तति त्रिविध कर्मों का क्षय करने पर मुक्ति प्राप्त कर सकती है। (विद्यानन्द)

समाधान—कोई अपने वीर्य से पैदा हो जाय तो उसकी व्यभिचारजातता नष्ट नहीं हो जाती। कोई मनुष्य वेश्या के साथ व्यभिचार करे और शीघ्र ही मर कर अपने ही वीर्य से उसी वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हो जाय तो क्या वह व्यभिचारजात न कहलायगा। विद्यानन्द का कहना है कि पर-पुरुषगामिनी होने के पहिले उत्पन्न हुई सन्तति को मोक्षाधिकार है परन्तु सुदृष्टि की पत्नी तो उसके मरने के पहिले ही परपुरुषगामिनी हो चुकी थी। तब वह मोक्ष क्यों गया? निम्नलिखित श्लोकों से यह बात बिलकुल सिद्ध है कि वह पहिले ही व्यभिचारिणी हो गई थी—

वक्राख्यो दुष्टधीस्तस्या गृहे छात्रः प्रवर्तते।
तेन सार्द्धं दुराचारं सा करोति स्म पापिना॥ ५॥
एकदा विमलायाश्च वाक्यतः सोऽपि वक्रकः।
सुदृष्टिं मारयामास कुर्वन्तं कामसेवनम्॥ ६॥

अर्थात् विमला के घर में वक्र नाम का एक बदमाश छात्र रहता था, उस पापी के साथ वह व्यभिचार करती थी। एक दिन विमला के कहने से कामसेवन करते समय उस वक्र ने सुदृष्टि को मार डाला।

इससे मालूम होता है कि सुदृष्टि के मरने के पहिले उसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो चुकी थी, सुदृष्टि अपनी व्यभिचारिणी स्त्री के गर्भ से पैदा होकर मोक्ष गया था। उनके लिये लज्जा आना चाहिये जो हाड़ मांस में शुद्धि अशुद्धि का विचार करते हैं और जब उन विचारों की पुष्टि शास्त्रों से

नहीं होती तो शास्त्रों की बातों को छिपाकर लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं।

आक्षेप (ख)—सुदृष्टि सुनार नहीं था। (श्रीलाल, विद्यानन्द)।

समाधान—पुराने समय में प्रायः जाति के अनुसार ही लोग आजीविका करते थे, इसलिये आजीविका के उल्लेख से उसकी जाति का पता लग जाता है। अगर किसी को चर्मकार न लिखा गया हो परन्तु जूते बनाने की बात लिखी हो, साथ ही ऐसी कोई बात न लिखी हो जिससे वह चमार सिद्ध न हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि वह चमार था। यही बात सुदृष्टि की है। उसने रानी का हार बनाया था और मरने के बाद दूसरे जन्म में भी उसने हार बनाया। अगर वह सुनार नहीं था तो (१) पहिले जन्म में वह हार क्यों बनाता था? (२) ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने यह क्यों न लिखा कि वह था तो वैश्य परन्तु सुनार का धन्धा करता था? (३) दूसरे जन्म में जब राजकर्मचारी सब सुनारों के यहाँ चक्कर लगा रहे थे तब अगर वह सुनार नहीं था तो उसके यहाँ क्यों आये?

सुदृष्टि के सुनार होने के काफ़ी प्रमाण हैं। आज से १६ वर्ष पहिले जो इस कथा का अनुवाद प्रकाशित हुआ था और जो स्थितिपालकों के गुरु पं० धन्नालालजी को समर्पित किया गया था उसमें भी सुदृष्टि को सुनार लिखा है। उसकी व्यभिचारजातता पर तो किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता। हाँ, धोखा देने वालों की बात दूसरी है।

सत्ताईसवाँ प्रश्न।

सोमसेन त्रिवर्णाचार को हम प्रमाण नहीं मानते परन्तु

विधवाविवाह के विरोधी पण्डित इसको पूर्ण प्रमाण मानते हैं, यहाँ तक कि उस पक्ष के मुनिवेषी लोग भी उसे पूर्ण प्रमाण मानते हैं। जिस प्रकार कुरान पर अपनी श्रद्धा न होने पर भी किसी मुसलमान को समझाने के लिये कुरान के प्रमाण देना अनुचित नहीं है उसी प्रकार त्रिवर्णाचार को न मानते हुये भी स्थितिपालकों को समझाने के लिये उसके प्रमाण देना अनुचित नहीं है।

त्रिवर्णाचार में दो जगह विधवाविवाह का विधान है और दोनों ही स्पष्ट हैं—

गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा।
वधुप्रवेशने रण्डापुनर्विवाहमंडने ॥ ८-११६ ॥
पूजने कुलदेव्याश्च कन्यादाने तथैव च।
कर्मस्वेतेषु वै भार्या दक्षिणे तूपवेशयेत् ॥ ८-११७ ॥

गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन वधूप्रवेश, विधवा-विवाह, कुलदेवीपूजा और कन्यादान के समय स्त्री को दाहिनी ओर बैठावे।

इस प्रकरण से यह बात बिलकुल सिद्ध हो जाती है कि सोमसेनजी को स्त्री पुनर्विवाह स्वीकृत था। पीछे के लिपि-कारों या लिपिकारकों को यह बात पसन्द नहीं आई इसलिये उनने 'रण्डा' की जगह 'शूद्रा' पाठ कर दिया है। पं० पन्ना-लालजी सोनी ने दोनों पाठों का उल्लेख अपने अनुवाद में किया था परन्तु पीछे से किसी के बहकाने में आकर छपा हुआ पत्र फड़वा डाला और उसके बदले दूसरा पत्र लगवा दिया। अब वह फटा हुआ पत्र मिल गया है जिससे वास्त-विक बात प्रकट हो गई है। दूसरी बात यह है कि इन श्लोकों में मुनिदान, पूजन, अभिषेक, प्रतिष्ठा तथा गर्भाधानादि संस्कारों की बात आई है इसलिये यहाँ शूद्र की बात नहीं

आसकती क्योंकि ग्रन्थकार के मतानुसार शूद्रों को इन कार्यों का अधिकार नहीं है। इसलिये वास्तव में यहाँ 'शूद्रा पुनर्विवाह' पाठ ही है जैसा कि प्राचीन प्रतियों से सिद्ध है।

अब ग्यारहवें अध्याय के पुनर्विवाह विधायक श्लोकों को भी देख लेना चाहिये। १७१ वें श्लोक में साधारण विवाहविधि समाप्त हो गई है परन्तु ग्रन्थकार को कुछ विशेष कहना था सो उसने १७२ वें श्लोक से लगाकर १७७ वें श्लोक तक कहा है। परन्तु दूसरी आवृत्ति में पण्डितों ने १७४ वें श्लोकमें "अथ परमतस्मृतिवचनम्" ऐसा वाक्य और जोड़ दिया जो कि प्रथमावृत्ति में नहीं था। खैर, वे कहीं के हों परन्तु सोमसेनजी उन्हें जैनधर्म के अनुकूल समझते हैं इसलिये उन को उद्धृत करके भी उनका खण्डन नहीं करते। इसीलिये पन्नालाल जी ने १७२ वें श्लोक की उत्थानिका में लिखा है कि— "परमतके अनुसार उस विषयका विशेष कथन करते हैं जिस का जैनमत के साथ कोई विरोध नहीं है।" इसलिये यहाँ जो पाँच श्लोक उद्धृत किये जाते हैं उनके विषयमें कोई यह नहीं कह सकता कि ये तो यहाँ वहाँ के हैं इनसे हमें क्या सम्बन्ध? दूसरी बात यह है कि सोमसेन जी ने यहाँ वहाँ के श्लोकों से यों तो ग्रन्थका आधा कलेवर भर रक्खा है, इसलिये यहाँ वहाँ के श्लोकों के विषय में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि यह रचना दूसरों की है परन्तु मत तो उन्हीं का कहलायगा। खैर, उन श्लोकों को देखिये—

विवाहे दम्पती स्यातां त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणौ।
अलंकृता वधूश्चैव सह शय्यासनाशनौ ॥ ११—१७२ ॥

विवाह होजाने के बाद पति पत्नी तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य से रहें। इस के बाद बधू अलकृत की जाय और वे दोनों साथ सोवें साथ बैठें और साथ भोजन करें।

वध्वा सहैव कुर्वीत निवासं श्वशुरालये।
चतुर्थदिनमत्रैव केचिदेवं वदन्ति हि॥

वर, वधू के साथ ससुराल में ही निवास करे परन्तु कोई कोई कहते हैं कि चौथे दिन तक ही निवास करे।

चतुर्थीमध्ये ज्ञायन्ते दोषा यदि वरस्य चेत्।
दत्तामपि पुनर्दद्यात् पितान्यस्मै विदुर्बुधाः॥ ११-१७४

चौथी रात्रि को यदि वरके दोष (नपुंसकत्वादि) मालूम हो जायँ तो पिता को चाहिये कि दी हुई-विवाही हुई-कन्या फिर से किसी दूसरे वर को दे दे अर्थात् उस का पुनर्विवाह करदे ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

प्रवरैक्यादिदोषाः स्युः पतिसङ्गादधो यदि।
दत्तामपि हरेद्दद्यादन्यस्मा इति केचन॥ ११-१७५

अगर पतिसङ्गम के बाद मालूम पड़े कि पति पत्नि के प्रवर गोत्रादि की एकता है तो पिता अपनी दी हुई कन्या किसी दूसरे को देदे।

कलौ तु पुनरुद्वाहं वर्जयेदिति गालवः।
कस्मिंश्चिद्देश इच्छन्ति न तु सर्वत्र केचन॥ ११-१७६

परन्तु गालव ऋषि कहते हैं कि कलिकालमें पुनर्विवाह न करे और कोई कोई यह चाहते हैं कि कहीं कहीं पुनर्विवाह किया जाय सब जगह न किया जाय।

दक्षिण प्रांतमें पुनर्विवाहका रिवाज होने से भट्टारक जी ने उस प्रान्त के लिये यह छूट चाही है। यों तो उनने पुनर्विवाह को आवश्यक माना है परन्तु यदि दूसरे प्रांत के लोग पुनर्विवाह न चलाना चाहें तो भट्टारक जी किसी किसी प्रान्त के लिये खासकर दक्षिण प्रान्तके लिये आवश्यक समझते हैं। पाठक देखें इन श्लोकों में स्त्रीपुनर्विवाह का कैसा ज़बर्दस्त समर्थन है। यहाँ पर यह कहना कि वह पुरुषों के पुनर्विवाह

का निषेधक है घोर अज्ञानता है। १७४–१७५ वें श्लोकों में कन्या के पुनर्दान या पुनर्विवाह का प्रकरण है। १७६ वें श्लोक में पुनर्विवाह के विषय में कुछ विशेष विधि बतलाई गई है। विशेष-विधि सामान्यविधि की अपेक्षा रखती है इसलिये उसका सम्बन्ध ऊपर के दोनों श्लोकों से हो जाता है जिनमें कि स्त्रीपुनर्विवाह का विधान है।

'कलौ तु पुनरुद्वाह' 'कलिकाल में तो पुनर्विवाह' यहाँ पर जो 'तु' शब्द पड़ा है वह भी बतलाता है कि इसके ऊपर पुनर्विवाह का प्रकरण रहा है जिसका आंशिक निषेध गालव करते हैं। यह 'तु' शब्द भी इतना जबर्दस्त है कि १७६ वें श्लोक का सम्बन्ध १७५ वें श्लोक से कर देता है और ऐसी हालतमें पुरुष के पुनर्विवाह की बात ही नहीं आती।

दूसरी बात यह है कि पुरुषों के पुनर्विवाह का निषेध किसी काल के लिये किसी प्राचीन ऋषि ने नहीं किया। हाँ एक पत्नीके रहते हुए दूसरी पत्नीका निषेध किया है। परन्तु विधुर होजाने पर दूसरी पत्नीका निषेध नहीं किया है न ऐसी पत्नी को भोगपत्नी कहा है। इसलिये भोगपत्नी के निषेध को पुनर्विवाहका निषेध समझ लेना अक्षन्तव्य शाब्दिक अज्ञान है। मतलब यह कि न तो पुरुषों का पुनर्विवाह निषिद्ध है न यहाँ उस का प्रकरण है, जिससे १७६ वें श्लोकका अर्थ बदला जा सके। यह कहना कि हिन्दू ग्रन्थकारों ने विधवाविवाह का कहीं विधान नहीं किया है बिलकुल भूल है। नियोग और विधवाविवाह के विधानोंसे हिन्दू स्मृतियाँ भरी पड़ी हैं। इस का उल्लेख अमितगति आदि जैन ग्रन्थकारों ने भी किया है।

स्थितिपालक पण्डित १७५ वें श्लोक के 'पतिसङ्गादधो' शब्दों का भी मिथ्या अर्थ करते हैं। पतिसङ्ग शब्द का पाणि-पीडन अर्थ करना हद दर्जे की धोखेबाज़ी है। पतिसङ्ग = पति-

"सम्भोग" यह सीधा सच्चा अर्थ हरेक आदमी समझता है। १७४ वें श्लोक के चतुर्थी शब्द का भी पाणिपीड़न अर्थ किया है और इधर पतिसङ्ग शब्द का भी पाणिपीड़न अर्थ किया जाय तो १७५ वाँ श्लोक बिलकुल निरर्थक होजाता है; इसलिये यहाँ पर पाणिपीड़न अर्थ लोक, शास्त्र और प्रकरण की दृष्टि से बिलकुल झूठा है।

अधः शब्द का अर्थ है 'पीछे', परन्तु ये पण्डित करते हैं 'पहिले'; परन्तु न तो किसी कोष का प्रमाण देते हैं और न साहित्यिक प्रयोग बतलाते हैं। परन्तु अधः शब्द का अर्थ पीछे या बाद होता है; इसके उदाहरण तो जितने चाहे मिलेंगे। जैसे अधोभक्त अर्थात् भोजनान्ते पीयमानं जलादिकम्–भोजन के अन्त में पिया गया जलादिक। इसी तरह "अधोलिखित श्लोक" शब्द का अर्थ है 'इसके बाद लिखा गया श्लोक' न कि 'इसके पहिले लिखा गया श्लोक'। इसलिये 'पतिसङ्गादधः' शब्द का अर्थ हुआ 'सम्भोग के बाद'। जब सम्भोग के बाद कन्या दूसरे को दी जासकती है तब स्त्रीपुनर्विवाह के विधान की स्पष्टता और क्या होगी ?

अगर 'अधः' शब्द का अर्थ 'पहिले' भी कर लिया जाय तो भी १७५ वें श्लोक से स्त्रीपुनर्विवाह का समर्थन हो होता है। 'सम्भोग के पहिले' शब्द का मतलब हुआ 'सप्तपदी के बाद' क्योंकि सम्भोग सप्तपदी के बाद होता है। यदि सप्तपदी के पहिले तक ही पुनर्दान की बात उन्हें स्वीकृत होती तो वे पतिसङ्ग शब्द क्यों डालते ? सप्तपदी शब्द ही डालते। सप्तपदी के होजाने पर विवाह पूर्ण हो जाता है और जब सप्तपदी के बाद पुनर्दान किया जा सकता है तो स्त्रीपुनर्विवाह सिद्ध हो गया।

त्रिवर्णाचार में यदि एकाध शब्द ही स्त्रीपुनर्विवाह-

साधक होता तो बात दूसरी थी, परन्तु उसने तो अनेक प्रकरणों में अनेक तरह से स्त्रीपुनर्विवाह का समर्थन किया है। इस त्रिवर्णाचार में ऐसी बहुत कम बातें हैं जो जैनधर्म के अनुकूल हों। उन बहुत थोड़ी बातों में एक बात यह भी है। इसलिये त्रिवर्णाचार के भक्तों का कम से कम विधवाविवाह का तो पूर्ण समर्थक होना चाहिये।

इतना लिखने के बाद जो कुछ आक्षेपकों के आक्षेप रह गये हैं उनका समाधान किया जाता है।

आक्षेप (क)—गालव ऋषि तो पुनर्विवाह का निषेध कर रहे हैं। आप विधान क्यों समझ बैठे? (श्रीलाल, विद्यानन्द)

समाधान—गालव ऋषि ने सिर्फ़ कलिकाल के लिये पुनर्विवाह का निषेध किया है। इसलिये उनके शब्दों से ही पहिले के युगों में पुनर्विवाह का विधान सिद्ध हुआ। तथा इसी श्लोक के उत्तरार्ध से यह भी सिद्ध होता है कि कोई आचार्य किसी किसी देश के लिये कलिकाल में भी पुनर्विवाह चाहते हैं। इसलिये यह श्लोक विधवाविवाह का समर्थक है।

भोगपत्नी आदि की बातों का खण्डन किया जा चुका है। श्रीलालजी ने जो १७२ वें आदि श्लोकों का अर्थ किया है वह बिलकुल बेबुनियाद तथा उनकी ही पार्टी के पंडित पन्नालाल जी सोनी के भी विरुद्ध है। इन श्लोकों में रजस्वला होने की बात तो एक बच्चा भी न कहेगा।

आक्षेप (ख)—मनुस्मृति में भी विधवाविवाह का निषेध है।

समाधान—आक्षेपक यह बात तो मानते ही हैं कि हिन्दु शास्त्रों में परस्पर विरोधी कथन बहुत है। इसलिये वहां विधवाविवाह और नियोग का एक जगह जोरदार समर्थन

पाया जाता है तो दूसरी जगह ब्रह्मचर्य की महत्ता के लिये दोनों का निषेध भी पाया जाता है। अगर परिस्थिति की दृष्टि से विचार किया जाय तो इन सबका समन्वय हो जाता है। खैर, मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में विधवाविवाह या स्त्री पुनर्विवाह के काफ़ी प्रमाण पाये जाते हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥
मनुस्मृति ९–१७५॥

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ ९–१७६॥

पति के द्वारा छोड़ी गई या विधवा, अपनी इच्छा से दूसरे की भार्या हो जाय और जो पुत्र पैदा करे वह पौनर्भव कहलायगा। यदि वह स्त्री अक्षतयोनि हो और दूसरे पति के साथ विवाह करे तो उसका पुनर्विवाह संस्कार होगा। (पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति) अथवा अपने कौमार पति को छोड़कर दूसरे पति के साथ चली जाय और फिर लौटकर उसी कौमार पति के साथ आजाय तो उसका पुनर्विवाह संस्कार होगा। (यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्य पुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण भर्त्रापुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति)। यहां पुनर्विवाह को संस्कार कहा है इसलिये यह सिद्ध है कि वह व्यभिचाररूप या निंद्यनीय नहीं है।

हिन्दुशास्त्रों के अनुसार कलिकाल में पाराशरस्मृति मुख्य है। 'कलौ पाराशराः स्मृताः'। पाराशरस्मृति में तो पुनर्विवाह बिलकुल स्पष्ट है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। ४–३०॥

पति के खो जाने पर, मर जाने, संन्यासी होजाने, नपुंसक होने तथा पतित हाजाने पर स्त्रियों का दूसरा पति कर लेने का विधान है।

पति शब्द का 'पतौ' रूप नहीं होता—यह बहाना निकाल कर श्रीलालजी तथा अन्य लोग 'अपतौ' शब्द निकालते हैं और अपति का अर्थ करते हैं—जिसकी सिर्फ सगाई हुई हो। परन्तु यह कोरा भ्रम है। क्योंकि इस श्लोक को जैनाचार्य श्रीअमितगति ने विधवाविवाह के समर्थन में ही उद्धृत किया है। देखिये धर्मपरीक्षा—

पत्यौ प्रव्रजिते क्लीवे प्रनष्टे पतिते मृते।

पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ११-१२ ॥

दूसरी बात यह है कि अगर यहाँ 'अपतौ' निकलता होता तो 'अपतिरन्यो विधीयते' ऐसा पाठ रखना पड़ता जो कि यहाँ नहीं है और न छन्दोभङ्ग के कारण यहाँ अकार निकाला जा सकता है।

तीसरी बात यह है कि अपति शब्द का अर्थ 'जिसकी सिर्फ सगाई हुई हो ऐसा पति' नहीं होता। अपति शब्द के इस अर्थ के लिये कोई नमूना पेश करना चाहिये।

चौथी बात यह है कि पति शब्द के रूप हरि सरीखे भी चलते हैं। क्योंकि पति का अर्थ जहाँ साधारणतः स्वामी, मालिक यह होता है वहाँ समास में ही घि संज्ञा होती है इसलिये वहाँ 'पतौ' ऐसा रूप नहीं बन सकता। परन्तु जहाँ पति शब्द का लाक्षणिक अर्थ पति अर्थात् 'विवाहित पुरुष' अर्थ लिया जाय वहाँ असमास में भी घि संज्ञा हो जाती है जिससे पतौ यह रूप भी बनता है। 'पति समास एव' इस सूत्र की तत्त्वबोधिनी टीका में खुलासा तौर पर यह बात लिख दी गई है और उसमें पाराशरस्मृति का "पतिते पतौ"

वाला श्लोक भी उद्धृत किया गया है जिससे भी मालूम होता है कि यहाँ 'अपतौ' नहीं है 'पतौ' है । "अथ कथं सीतायाः पतये नमः" इति, 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' इति पाराशरश्च । अत्राहुः पतिरिति आख्यातः पतिः तत्करोति तदाचष्टे इति णिचि टिलोपे अच इः इत्यौणादिकप्रत्यये णेरनिटि इति णिलोपे च निष्पन्नोऽयं पतिः "पति समासः एव इत्यत्र न गृह्यते, लाक्षणिकत्वादिति" ।

पति शब्द के घिसंज्ञिक रूपों के और भी नमूने मिलते हैं तथा वैदिक संस्कृत में ऐसे प्रयोग बहुलता से पाये जाते हैं । पहिले हम यजुर्वेद के उदाहरण देते हैं—

नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमः, नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः । १६ । १८ ।

इसी तरह 'कक्षाणां पतये नमः' 'पत्तीनां पतये नमः' आदि बहुत से प्रयोग पाये जाते हैं ।

स्वयं पाराशर ने—जिनके श्लोक पर यह विवाद चल रहा है—अन्यत्र भी 'पतौ' प्रयोग किया है । यथा—

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ १०-३१ ॥

अर्थात् पति के मर जाने पर या पति से छोड़ी जाने पर जो स्त्री व्यभिचार से गर्भ धारण करे उस पापिनी को देश से निकाल देना चाहिये । अर्थात् पाराशरजी यह नहीं चाहते कि कोई स्त्री व्यभिचार करे । विधवा या पतिहीन स्त्री का कर्तव्य है कि वह पुनर्विवाह करले या ब्रह्मचर्य से रहे, परन्तु व्यभिचार कभी न करे । जो स्त्रियाँ ऊपर से तो विधवाविवाहको या उसके प्रचारकों को गालियाँ देती हैं और भीतर ही भीतर व्यभिचार करती हैं वे सचमुच महापापिनी हैं ।

हेमकोष में भी पतौ शब्द का प्रयोग हुआ है । 'धवो धूर्ते नरे पतौ' । यहाँ पर धव और पति शब्द को पर्यायवाची कहा है और पति शब्दका पतौ रूप लिखा है ।

व्यास स्मृति में भी पतये प्रयोग है । 'दासीवादिष्ट-कार्येषु भार्या भर्त्तुः सदा भवेत् । ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत् ॥ २-२७ ॥

यहाँ पतिके प्रति भार्याके कर्त्तव्य बतलाये हैं । यहाँ भी सगाई वाला पति अर्थ नहीं किया जा सकता है ।

शशिनीव हिमार्तानां घर्मार्तानां रवाविव ।
मनो न रमते स्त्रीणां जरा जीर्णेन्द्रिये पतौ ॥
मित्रलाभ—हितोपदेश ।

इस श्लोक के अर्थ में अपतौ निकालने की चेष्टा करके श्रीलालजी ने धोखा देने की चेष्टा की है । इतना ही नहीं यहाँ पर भी अपनी आदत के अनुसार उलटा चोर कोतवाल को डाँटे की कहावत चारतार्थ की है । आप कहते हैं कि 'यहाँ भी सगाई वाले (अपति) बूढ़े दूल्हे की बात है' । ताज्जुब यह है कि यहीं पर यह बात भी कहते जाते हैं कि विवाह तो १२-१६ की उम्र में हुआ होगा । जब विवाह के समय वर की उम्र आप १६ बतलाते हैं तब क्या वह जन्म भर तो पति बना रहा और बुढ़ापे में अपति बन गया ? बलिहारी है इस कल्पना की ! ख़ैर, ज़रा यह भी देखिये कि श्लोक किस प्रकरण का है ।

कौशाम्बी में चन्दनदास सेठ रहता था । उसने बुढ़ापे में धनके बलसे लीलावती नामकी एक वणिक्पुत्री से शादी करली, परन्तु लीलावती को उस बूढ़े से सन्तोष न हुआ; इस-लिये वह व्यभिचारिणी होकर गुप्त पाप करने लगी । इसी मौक़े पर यह श्लोक कहा गया है जिसमें 'पतौ' रूप का प्रयोग

है। अब पाठक ही सोचें कि क्या वह बुड्ढा सगाई वाला दूल्हा था? श्रीलालजी धोखा तो देते ही है परन्तु उसके भीतर कुछ मर्यादा रहे तो अच्छा है।

खैर, ये सब प्रमाण इतने ज्यादा ज़बर्दस्त हैं कि 'पतौ' रूप में किसी को सन्देह नहीं रह सकता। इसलिये पाराशर ने विधवाविवाह का विधान किया है, यह स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति के प्रमाण दिये गये हैं। आवश्यकता होने पर और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। जैन विद्वान यह कह सकते हैं कि हम हिन्दू स्मृतियाँ नहीं मानते परन्तु उन्हें यह कभी भूलकर भी न कहना चाहिये कि उनमें विधवाविवाहका विधान नहीं है। हिन्दू पुराण और हिन्दू स्मृतियाँ विधवा-विवाह की पूर्ण समर्थक है।

आक्षेप (ग)—

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुंजाना धर्मं हन्युः सनातनः॥
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥

मनुस्मृतिके ये दोनों श्लोक विधवाविवाहके विरुद्ध हैं।
(श्रीलाल)

समाधान—हम कह चुके हैं परिस्थिति के अनुसार अनेक तरह की आज्ञाएँ एक ही स्मृतिमें पाई जाती हैं। इसलिये अगर एक पुस्तक में एक विषय में विधि निषेध है तो उसका समन्वय करने के लिये अपेक्षा ढूँढ़ना चाहिये। अन्यथा जिस मनुस्मृति में स्त्री पुनर्विवाह की आज्ञा है और उसे संस्कार कहा है उसी में उसका विरोध कैसा? स्मृतियों में समन्वय और मुख्यगौणताका बड़ा मूल्य है। खैर, परन्तु इन श्लोकों को तो श्रीलालजीने ठीक ठीक नहीं समझा है अन्यथा ये श्लोक

कभी उद्धृत न किये जाते। पाठक इनके अर्थ पर विचार करें, पूर्वापर सम्बन्ध देखें और नियोग तथा विधवाविवाह के भेद को समझें। ये श्लोक नियोगप्रकरण के हैं।

नियोग में सन्तानोत्पत्ति के लिये सिर्फ एक बार सम्भोग करने की आज्ञा है। नियोग के समय दोनों में सम्भोग क्रिया बिलकुल निर्लिप्त होकर करना पड़ती है तथा किसी भी तरह की रसिकता से दूर रहना पड़ता है। देखिये—

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यो यवीमान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥९-५८॥

अगर विधवा के सन्तान हो (अनापदि=सन्तानाभाव बिना) तो उसका ज्येष्ठ या देवर नियोग करें तो पतित हो जाते हैं।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ ९-५९ ॥

सन्तान के नाश होजाने पर गुरुजनों की आज्ञा से विधि-पूर्वक देवर से या और सपिंड से (कुटुम्बी से) इच्छित सतान पैदा करना चाहिये। (आवश्यकता होने पर एक से अधिक सन्तान पैदा की जाती है। हिन्दू पुराणों के अनुसार धृतराष्ट्र पांडु और विदुर नियोगज सन्तान हैं)।

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथचन ॥ ९-६० ॥

विधवा में (आवश्यकता होने पर सधवामें भी) सतान के लिये नियुक्त पुरुष, सारे शरीर में घी का लेप करे मौन रक्खे और एक ही पुत्र पैदा करे।

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥ ९-६२ ॥

नियोग कार्य पूरा हो जाने पर फिर भौजाई या बहू के समान पवित्र सम्बन्ध रक्खे।

नियुक्तौ तौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥९-६३॥

यदि नियोग के समय कामवासना से वह सम्भोग करे तो उसे भौजाई या भ्रातृवधू के साथ सम्भोग करने का पाप लगता है, वह पतित हो जाता है।

पाठक देखें कि यह नियोग कितना कठिन है। साधारण मनुष्य इस विधिका पालन नहीं कर सकते। इसलिये आगे चलकर मनुस्मृति में इस नियोगका निषेध भी किया गया है। वही निषेधपरक श्लोक पंडित लोग उद्धृत करते हैं और विधिपरक श्लोकों को साफ़ छोड़ जाते हैं।

हिन्दू शास्त्र न तो नियोगके विरोधी हैं, न विधवाविवाह के। उनमें सिर्फ़ नियोग का निषेध, कलिकाल के लिये किया है क्योंकि कलियुग में नियोग के योग्य पुरुषों का मिलना दुर्लभ है। यही बात टीकाकारने कही है—"अयं च स्वोक्तनियोग-निषेधः कलिकालविषयः"। बृहस्पति ने तीन श्लोकों में तो और भी अधिक खुलासा कर दिया है। इसलिये हिन्दूशास्त्रोंसे विधवाविवाह का निषेध करना सर्वथा भूल है।

आक्षेप (घ)—चाणिक्यने पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी परन्तु पति के पास जाने की आज्ञा दी है। विद्वत् लाभे का अर्थ छोड़कर दूसरा पति करने का अर्थ तो इस अन्धेरी दर-बार को ही सूझा।

समाधान—श्रीलालजी जान बूझकर बात को छिपाते हैं अन्यथा "यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः" आदि वाक्यों से पूर्व-विवाह सम्बन्ध के टूट जानेका साफ़ विधान है। ख़ैर, पहिली बात तो यह है कि उन वाक्योंका अनुवाद छपी हुई पुस्तक में

से लिया गया है। हमारे विषय में अर्थ बदलने की कुकल्पना आप भले ही करें, परन्तु अनुवादक के विषय में इस कल्पना की कोई ज़रूरत नहीं है। इसके अनुवादक वेदरत्न विद्याभास्कर, न्यायतीर्थ, सांख्यतीर्थ और वेदान्त विशारद हैं।

दूसरी बात यह है कि 'विद्लृ लाभे' धातु का प्रयोग विवाह अर्थ में होता है। मनुस्मृति में विन्देत देवरः का पर्याय वाक्य भर्तुः सोदर भ्राता परिणयेत् किया है। इसी तरह श्लोक ६–६० में 'विन्देत सदृशं पति' का 'वरं स्वयं वृणीत' पर्याय वाक्य दिया है। खुद कौटिलीय अर्थशास्त्र में विद्लृ धातु का प्रयोग वरण के अर्थ में हुआ है। जैसे—ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत अर्थात् पहिली स्त्री से अगर १२ वर्ष तक पुत्र पैदा न हो तो पुत्रार्थी दूसरी शादी करले। यहाँ विन्देत का अर्थ शादी करे ही है। इसी तरह और भी बहुत से प्रयोग हैं। पहिले हमने थोड़े से प्रमाण दिये थे, अब हम ज़रा अधिक देंगे। उन में ऐसे प्रमाण भी होंगे जिनमें विद्लृ का अर्थ पास जाना न हो सकेगा।

"मृते भर्त्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्क शेषं च लभेत ॥ २५ ॥ लब्ध्वा वा विन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २६ ॥ अर्थात् पति के मरने पर ब्रह्मचर्य से रहने वाली स्त्री, अपना स्त्री धन और अवशिष्ट शुल्क (विवाह के समय प्राप्त धन) ले ले। अगर इस धन को प्राप्त कर वह (विधवा) विवाह करे तो उससे ब्याज सहित वापिस ले लिया जाय।

पाठक विचारें कि यहाँ "विन्दमाना" का अर्थ विवाह करने वाली है न कि पति के पास जाने वाली क्योंकि पति तो मर चुका है। और भी देखिये—

'कुटुम्बकामा तु श्वसुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत ॥२७॥

निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः ॥२८॥ यदि विधवा दूसरा घर बसाना चाहे अर्थात् पुनर्विवाह करना चाहे तो श्वसुर और पति द्वारा दी हुई सम्पत्ति को वह विवाह समय में ही पा सकती है। विवाह का समय हम दीर्घ प्रवास के प्रकरण में कहेंगे।

इसी दीर्घप्रवास प्रकरण के वाक्य हमने प्रथम लेख में उद्धृत किये थे। इससे मालूम होता है कि वहाँ पुनर्विवाह का ही ज़िकर है न कि पति के पास जाने का।

"श्वसुर प्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वसुर पतिदत्तं जीयेत" ॥ २९ ॥ श्वसुरकी इच्छाके विरुद्ध विवाह करने वाली वधू से, श्वसुर और पति से दिया गया धन ले लिया जाय।

इससे मालूम होता है कि महाराजा चन्द्रगुप्त के राज्य में श्वसुर अपनी विधवा वधू का पुनर्विवाह कर देता था। अगर श्वसुर उसका पुनर्विवाह नहीं करता था तो वह वधू ही अपना स्त्रीधन छोड़कर पुनर्विवाह कर लेती थी।

ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः ॥ ३० ॥ न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत् ॥३१॥ अगर उसके पीहर वाले (पिता भ्राता आदि) उसके पुनर्विवाह का प्रबन्ध करें तो वे उसके लिये हुए धन को दे दें, क्योंकि न्यायपूर्वक रक्षार्थ प्राप्त हुई स्त्री की रक्षा करने वाला पुरुष उसके धन की भी रक्षा करे।

पतिदायं विन्दमाना जीयेत ॥ ३२ ॥ धर्मकामाभुञ्जीत ॥ ३३ ॥ दूसरे पतिकी कामना वाली स्त्री पतिका हिस्सा नहीं पा सकती और ब्रह्मचर्य से रहने वाली पासकती है।

पुत्रवती विन्दमानास्त्रीधनं जीयेत ॥ ३४ ॥ तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयुः ॥ ३५ ॥ पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फातीं कुर्यात् ॥३६॥ कोई स्त्री पुत्र वाली होकरके भी अगर पुनर्विवाह

करे तो वह स्त्री धन नहीं पा सकती। उसका स्त्री धन उसके पुत्र ले लें। अगर पुत्रोंके भरण पोषण के लिये ही वह पुनर्विवाह करे तो वह अपनी सम्पत्ति पुत्रोंके नाम लिख दे।

हम नहीं समझते कि इन प्रकरणों में कोई पुनर्विवाहका विधान न देखकर पति के पास जाने का विधान देख सकेगा। इस ग्रन्थ में परदेश में गये हुए दीर्घप्रवासी पति को तो छोड़ देने का विधान है, उसके पास जाने की तो बात दूसरी है।

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषी।

प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपिवा पतिः।

नीच, दीर्घप्रवासी, राजद्रोही, घातक, पतित और नपुंसक पतिको स्त्री छोड़ सकती है। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि श्रीलालजी या उनके साथी किसी भी विषय का न तो गहरा अध्ययन करते हैं न पूर्वापर सम्बन्ध देखते हैं और मनमाना बिलकुल बेबुनियाद लिख मारते हैं। खैर, अब हम ह्रस्वप्रवास और दीर्घप्रवास के उद्धरण देते हैं जिनके कुछ अंश पहिले लेख में दिये जा चुके हैं।

'ह्रस्वप्रवासिनां शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तर कालमाकांक्षेरन्नप्रजाता, संवत्सराधिकंप्रजाताः ॥२६॥ प्रतिविहिताद्विगुणं कालं ॥२७॥ अप्रतिविहिता सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारिवर्षाण्यष्टौ वाज्ञातय। ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः ॥ २८ ॥

थोड़े समय के लिये बाहर जाने वाले शूद्र वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मणों की स्त्रियाँ अगर पुत्रहीन हों तो एक वर्ष और पुत्रवती इससे अधिक समय तक प्रतीक्षा करें। यदि पति आजीविका का प्रबन्ध कर गया हो तो इससे दूने समय तक प्रतीक्षा करें। जिनकी आजीविका का प्रबन्ध नहीं है, उनके बंधु बाँधव चार वर्ष या आठ वर्ष तक उनका भरण पोषण करें।

इसके बाद प्रथम विवाह के समय में दिया हुआ धन वापिस लेकर दूसरी शादीके लिये आज्ञा देदें।

पाठक देखें कि यहाँ 'प्रमुञ्चेयुः' क्रिया है। इसका अर्थ 'छोड़ दें' ऐसा होता है। पति के पास भेज दें ऐसा अर्थ नहीं होता। पति के पास से पिता के पास, या पिता के पास से पति के पास आने जाने में मुञ्च या छोड़ देने का व्यवहार नहीं होता। इसलिये सम्बन्ध विच्छेद के लिये ही इस शब्द का व्यवहार हुआ है।

ब्राह्मणमधीयानं दश वर्षाण्यप्रजाता, द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुः क्षयादाकाङ्क्षेत ॥३०॥ सवर्णतश्च प्रजाता नाप वादं लभेत ॥ ३१ ॥

पढ़ने के लिये विदेश गये ब्राह्मण की सन्तानहीन स्त्री दशवर्ष तक, संतान वाली १२ वर्ष तक और राजकार्यप्रवासी की जीवनपर्यन्त प्रतीक्षा करे। हाँ, अगर किसी समान वर्ण के पुरुष से वह गर्भवती होजाय तो वह निन्दनीय नहीं है।

यहाँ पर प्रतीक्षा करने के बाद पति के पास जाने की बात नहीं लग सकती। जब ऐसी हालत में परपुरुष से गर्भवती होजाने की बात भी निन्दनीय नहीं है तब उनके पुनर्विवाह की बात का तो कहना ही क्या है।

कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥ ३२ ॥ कुटुम्बकी सम्पत्ति नष्ट होने पर या उनके द्वारा छोड़े जाने पर जीवन निर्वाह के लिये इच्छानुसार विवाह करे।

श्रीलालजी विन्देत का अर्थ करते हैं पतिके पास जावे। हम सिद्धकर चुके हैं कि विन्देत का अर्थ 'विवाह करे' है। साथ ही इस ग्रन्थ का सारा प्रकरण ही स्त्री पुनर्विवाह का है यह बात पहिले उद्धरणों से भी सिद्ध है। 'यथेष्ट' शब्द से भी

विवाह करने की बात सिद्ध होती है । इच्छानुसार पति के पास जावे—यहाँ इच्छानुसार शब्द का कुछ प्रयोजन ही नहीं मालूम होता, जब कि, इच्छानुसार विवाह करे—इस वाक्य में इच्छानुसार शब्द आवश्यक मालूम होता है ।

आपद्गताधर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥३३॥ संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय ॥३४॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥३५॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ३६ ॥ एक देशदत्त शुल्कं त्रीणीतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥३७॥ श्रूयमाणम् सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥३८॥ दत्त शुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥३९॥ दश श्रूयमाणम् ॥४०॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टम् विन्देत् ॥४१॥ निर्धनता से आपद्ग्रस्त कुमारी (अक्षतयोनि) जिसका चार धर्मविवाहों में से कोई विवाह हुआ और उसका पति बिना कहे परदेश चला गया हो तो वह सात मासिकधर्म पर्यंत प्रतीक्षा करे । कहकर गया हो तो एक वर्ष तक। प्रवासी पति की ख़बर न मिलने पर पाँच मासिकधर्म तक। ख़बर मिलनेपर दश मासिकधर्म तक प्रतीक्षा करे। विवाह के समय प्रतिज्ञात धन का एक भाग ही जिसने दिया हो ऐसा पति विदेश जानेपर अगर उसकी ख़बर न मिले तो तीन मासिकधर्म तक और ख़बर मिलने पर सात मासिक धर्म तक उसकी प्रतीक्षा करे। अगर प्रतिज्ञात धन सारा देदिया हो तो ख़बर न मिलने पर तीन और ख़बर मिलने पर सात मासिकधर्म तक प्रतीक्षा करे । इसके बाद धर्माधिकारी की आज्ञा लेकर इच्छानुसार दूसरा विवाह कर ले (यहाँ भी यथेष्ट' शब्द पड़ा हुआ है ।) । साथ ही धर्माधिकारीसे आज्ञा लेने की बात कही गई है। पुनर्विवाह के लिये ही धर्माधिकारी की आज्ञा की ज़रूरत है न कि पति के पास जाने के लिये। फिर

जिस पति की खबर ही नहीं मिली है उसके पास वह कैसे जा सकती है ?

दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्याऽमृतीर्थाऽन्याकांक्षेत ॥ ४३ ॥ संवत्सरं प्रजाता ॥ ४४ ॥ ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् ॥ ४५ ॥ बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्म समर्थं कनिष्ठमभार्यं वा । तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम् ॥ ४७ ॥ एतेषां एष एव क्रमः ॥ ४८ ॥

दीर्घप्रवासी, संन्यासी या मर गया हो तो उसकी स्त्री सप्त मासिकधर्म तक उसकी प्रतीक्षा करे। अगर सन्तान वाली हो तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे, इसके बाद पति के भाई के साथ शादी करले। जो भाई पतिका नज़दीकी हो, धार्मिक हो, पालन पोषण कर सके और पत्नी रहित हो। अगर सगा भाई न हो तो पति के वंश का हो या गोत्र का हो।

यहाँ तो श्रीलाल जी पति के पास जाने की बात न कहेंगे ? क्योंकि पति तो संन्यासी हो गया है या मर गया है। फिर पति के भाई के पास जाने की आज्ञा क्यों है ? अपने भाई या पिता या श्वसुर के पास जाने की क्यों नहीं ? फिर पति का भाई भी कैसा ? जिसके पत्नी न हो। क्या अब भी श्रीलाल जी यहाँ विवाह की बात न समझेंगे।

आक्षेप (ङ)–आचार्य सोमदेवजी ने जिन स्मृतिकारों के विषय में लिखा है वह सब चर्चा सगाई बाद की है। वैष्णवों के किसी ग्रन्थ में भी विधवाविवाह की आज्ञा नहीं है।

(श्रीलाल)

समाधान—"विकृतपत्यूढापि पुनर्विवाहमर्हतीति स्मृतिकाराः" विकृतपति के साथ विवाही गई स्त्री भी पुनर्विवाह कर सकती है। स्मृतिकारों के इस वक्तव्य में सगाई की ही धुन लगाये रहने वाले श्रीलाल जी का साहस धन्य है।

'तावद्विवाहो नैवस्याद्यावत्सप्तपदी भवेत्' तब तक विवाह नहीं होता जब तक सप्तपदी न हो जाय। इसलिये जिस स्त्री को विवाही गई कहा है वह अभी तक वाग्दत्ता ही बनी हुई है, ऐसी बात श्रीलाल जी ही कह सकते हैं। फिर पुनर्विवाह शब्द भी पड़ा हुआ है। यह पुनर्विवाह शब्द ही इतना स्पष्ट है कि विशेष कहने की ज़रूरत नहीं है। ख़ैर, श्रीलाल जी इस वाक्य का जो चाहे अर्थ करें परन्तु उनने यह बात मानली है कि सोमदेव जी को इस वाक्य में कुछ आपत्ति नहीं है। अन्यथा उन्हें इस वाक्य के उद्धृत करने की क्या ज़रूरत थी, जब कि खण्डन नहीं करना था। वैष्णवों के ग्रन्थों में पुनर्विवाह की कैसी आज्ञा है यह बात हम इसी लेख में विस्तार से सिद्ध कर चुके हैं।

प्रश्न अट्ठाईसवाँ

इस प्रश्न में यह पूछा गया था कि अगर किसी अबोध कन्या के साथ कोई बलात्कार करे तो फिर उसका विवाह करना चाहिये या नहीं। हमने उत्तर में कहा था कि ऐसी हालत में कन्या निरपराध है। इसलिये विधवा-विवाह के विरोधी भी ऐसी कन्या का विवाह करने में सहमत होंगे; क्योंकि उसका विवाह पुनर्विवाह नहीं है, आदि। श्रीलाल जी का कहना है कि 'उसी पुरुष के साथ उसका विवाह करना चाहिये या वह ब्रह्मचारिणी रहे, तीसरा मार्ग नहीं जँचता।' जब तक मिथ्यात्व का उदय है तब तक श्रीलालजी को कुछ जँच भी नहीं सकता। परन्तु श्रीलालजी, न जँचने का कारण कुछ भी नहीं बतला सके हैं इसलिये उनका यह वक्तव्य दुराग्रह के सिवाय और कुछ नहीं है।

आक्षेप (क)–ऐसी कन्या का विवाह बलात्कार करने

वाले पुरुष के साथ ही करना चाहिये । पाण्डु और कुन्ती के चारित्र से इस प्रश्न पर प्रकाश पड़ता है । (विद्यानन्द)

समाधान—पाण्डु और कुन्ती का सम्बन्ध बलात्कार नहीं था जिससे हम पाण्डु को नीच और राक्षसी प्रकृति का मनुष्य कह सकें । और ऐसी हालत में पाण्डु अपात्र नहीं कहा जा सकता । बलात्कार तो शैतानियत का उग्र और बीभत्सरूप है । बलात्कार सिर्फ़ कुशील ही नहीं है, किन्तु वह घोर राक्षसी हिंसा भी है । इसलिये बलात्कार के उदाहरण में पाण्डु-कुन्ती का नाम लेना भूल है । हम पूछते हैं कि बलात्कार, विवाह है या नहीं ? यदि विवाह है तो फिर विवाह करने की आवश्यकता क्या है ? अगर विवाह नहीं है तो वह कन्या अविवाहिता कहलाई; इसलिये उसका विवाह होना चाहिये ।

आक्षेप (ख)—बिलाव अगर दूध को जूठा करदे तो वह अपेय हो जाता है, यद्यपि इसमें दूध का अपराध नहीं है । इसी प्रकार बलात्कार से दूषित कन्या भी समझना चाहिये । (विद्यानन्द)

समाधान—इस दृष्टांत में अनेक ऐसी विषमताएँ हैं जो दूध के समान कन्या को त्याज्य सिद्ध नहीं करतीं । पहिली तो यह है कि दूध जड़ है । वह अगर नाली में फैंक दिया जाय तो दूध को कुछ दुःख न होगा । इसलिये हम दूध के निरपराध होने पर भी उसकी तरफ़ से लापर्वाह रह सकते हैं । परन्तु कन्या में सुख दुःख है । उसकी पर्वाह करना समाज का कर्तव्य है । इसलिये कन्या के निरपराध होने पर हम ऐसा कोई विधान नहीं बना सकते, जिससे उसको दुःख या उसका अपमान हो ।

दूसरी विषमता भोज्य भोजक की है । स्त्री को हम

भोज्य कहें और पुरुष को भोजक, यह बात सर्वथा अनुचित है। क्योंकि जिस प्रकार स्त्री, पुरुष के लिये भोज्य है उसी प्रकार पुरुष, स्त्री के लिये भोज्य है। इसीलिये स्त्री जूठी हो और पुरुष जूठा न हो, यह नहीं कहा जा सकता। जब पुरुष जूठा होकर के भी स्त्री के लिये भोज्य रहता है तो स्त्री भी क्यों न रहेगी ?

तीसरी बात यह है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को आक्षेपक ने भोग मान लिया है जबकि वह उपभोग है। भोग का विषय एक बार ही भोगा जाता है, इसलिये उसमें जूठापन आजाता है; परन्तु उपभोग अनेकबार भोगा जाता है। सभ्य आदमी अपना ही जूठा भोजन दूसरे दिन नहीं खाता जबकि एक ही वस्त्र को अनेकबार काम में लाता रहता है। अगर स्त्री को भोज्य माना जाय तो जिस स्त्री को आज भोगा गया उसको फिर कभी न भोगना चाहिये। तब तो हर एक पुरुषको महीनेमें चार चार छः छः स्त्रियोंकी आवश्यकता पड़ेगी अन्यथा उन्हें जूठी स्त्री से ही काम चलाना पड़ेगा।

स्त्री और पुरुषके सम्बन्धमें तो दोनोंही सुखानुभव करते हैं, इसलिए कौन किसका जूठा है यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो लोग स्त्रियों में जूठेपन का व्यवहार करते हैं वे माता को भी जूठा कहेंगे, क्योंकि एक बच्चे ने एक दिन जिस माता का दूध पीलिया वह दूसरे दिन के लिये जूठी हो गई। और दूसरे बच्चे के लिये और भी अधिक जूठी हो गई। इतना ही नहीं इस दृष्टि से पृथ्वी, जल, वायु आदि जूठे कहलायेंगे, सारा संसार उच्छिष्टमय हो जायगा, क्योंकि किसी भी इन्द्रिय का विषय होने से जब पदार्थ उच्छिष्ट माना जायगा तो स्पर्श करने से पृथ्वी, जल और वायु जूठी कहलायगी और आँखों से देख लेने पर सारा संसार जूठा कहलायगा। यदि

रसना इन्द्रिय के विषय में ही उच्छिष्ट अनुच्छिष्ट का व्यवहार किया जाय तो कन्याको हम उच्छिष्ट नहीं कह सकते, क्योंकि वह चबाने खाने की वस्तु नहीं है, जिससे वह जूठे दूधके समान समझी जाय।

उन्तीसवाँ प्रश्न।

"त्रैवर्णिकाचार से तलाक़ के रिवाज का समर्थन होता है।"—यह बात हमने संक्षेप में सिद्ध की थी। परन्तु ये दोनों आक्षेपक कहते हैं कि उसमें तलाक़ की बात नहीं है। भले ही तलाक़ या (Divorce) आदि प्रचलित भाषाओं के शब्द उस ग्रन्थ में न हों परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध के त्याग का विधान अवश्य है और इसी को तलाक़ कहते हैं—

> अप्रजां दशमे वर्षे स्त्री प्रजां द्वादशे त्यजेत्।
> मृतप्रजां पंचदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥११-१९७॥
> व्याधिता स्त्रीप्रजा वन्ध्या उन्मत्ता विगतार्तवा।
> अदुष्टा लभते त्यागं तीर्थतो न तु धर्मतः ॥११-१९८॥

अगर दस वर्ष तक कोई संतान न हो तो दसवें वर्षमें, अगर कन्याएँ ही पैदा होती हों तो बारहवें वर्षमें, अगर संतान जीवित न रहती हो तो १५वें वर्ष में स्त्री को छोड़ देना चाहिये और कठोर भाषिणी हो तो तुरन्त छोड़ देना चाहिये॥ १९७॥ रोगिणी, जिसके केवल कन्याएँ ही पैदा होती हों, वन्ध्या, पागल, जो रजस्वला न होती हो ऐसी स्त्री अगर दुष्ट न हो तो उसके साथ संभोग का ही त्याग करना चाहिए; बाक़ी पत्नीत्व का व्यवहार रखना चाहिए॥ १९८॥ इससे मालूम होता है कि १९७ वें श्लोक में जो त्याग बतलाया है उसमें स्त्री का पत्नीत्व सम्बन्ध भी अलग कर दिया गया है। यह तलाक़ नहीं तो क्या है?

श्रीलाल जी कहते हैं कि दक्षिण में तलाक़ का रिवाज ही नहीं है। सौभाग्य से दक्षिणप्रान्त आज भी बना हुआ है। कोई भी आदमी वहाँ जाकर देख सकता है कि चतुर्थ पंचम सेनवाल आदि दिगम्बर जैनियों में विधवाविवाह और तलाक़ का रिवाज आमतौर पर चालू है या नहीं। बल्कि वहाँ पर विधुर कुमारियों के साथ शादी नहीं करते। इसलिये कुमारियों के साथ पहिले किसी अन्य पुरुष की शादी करदी जाती है इसके बाद तलाक़ दिलाया जाता है फिर उस विधुर के साथ उस तलाक़ वाली स्त्री की शादी होती है। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी तलाक़ देती हैं, पुनर्विवाह करती हैं॥

दक्षिणप्रान्त में तलाक़ का अभाव बतला कर श्रीलाल जी या तो कूपमण्डूकता का परिचय दे रहे हैं या समाज को धोखा दे रहे हैं।

तीसवाँ प्रश्न।

पुराणों में विधवा-विवाह का उल्लेख क्यों नहीं मिलता, इसके कारणोंका सप्रमाण दिग्दर्शन किया था। दोनोंही आक्षेपकों से यहां पर भी कुछ खण्डन नहीं बन सका है। परन्तु इस प्रश्नमें विद्यानन्द जीने तो सिर्फ़ अपनी अनिच्छाही ज़ाहिर की है, परन्तु पण्डित श्रीलालजी ने अण्ड बण्ड लिख मारा है। बल्कि धृष्टताका भी पूर्ण परिचय दिया। जैनजगत् आदि पत्रों का काला मुँह करने का उपदेश दिया है। ख़ैर, यहाँ हम संक्षेप में अपना वक्तव्य देकर आक्षेपोंका उत्तर देंगे।

अ—पुराणों में विधवा-विवाह का उल्लेख नहीं है और विधुर विवाह का उल्लेख नहीं है। परन्तु यह नहीं कहा जासकता कि पहिले ज़माने में विधुर विवाह नहीं होते थे। न यह कहा जासकता है कि विधवाविवाह नहीं होते थे।

आ—आजकल भी प्रथम विवाह के समय ही विशेष समारोह किया जाता है। द्वितीय विवाहके समय विशेष समारोह नहीं किया जाता। इसी तरह पहिले ज़माने में भी स्त्री पुरुषों के प्रथम विवाह के समय विशेष समारोह होता था; द्वितीयादि विवाहों के समय नहीं। रामचन्द्र आदि के प्रथम विवाह का जैसा उल्लेख मिलता है वैसा द्वितीयादि विवाहोंका नहीं मिलता। इसी तरह स्त्रियोंके भी प्रथम विवाहका उल्लेख मिलता है द्वितीय विवाहों का नहीं।

इ—पुरुषोंके द्वितीयादि विवाहोंका जो साधारण उल्लेख मिलता है वह उन के बहुपत्नीत्व का महत्व बतलाने के लिए है। पुराने ज़मानेमें जो मनुष्य जितना बड़ा वैभवशाली होता था वह उतनी ही अधिक स्त्रियाँ रखता था। इसीलिए चक्रवर्ती के ९६ हज़ार, अर्द्धचक्रीके १६०००, बलभद्रके ८००० तथा साधारण राजाओंके सैकड़ों स्त्रियाँ होती थीं। स्त्रियाँ अपना पुनर्विवाह तो करती थीं, परन्तु उनका एक समय में एक ही पति होता था; इसलिये उनके बहुपतित्व का महत्व नहीं बतलाया जासकता था। तब उनके दूसरे विवाहका उल्लेख क्यों होता?

ई—आजकल लोग अपनी लड़कियों का विवाह जहाँ तक बनता है कुमार के साथ करते हैं, विधुरके साथ नहीं। ख़ासकर श्रीमान् लोग तो अपनी लड़की का विवाह विधुरोंके साथ कदापि नहीं करते। परन्तु इस परसे यह नहीं कहा जासकता कि आज विधुरविवाह नहीं होता, या विवाह करने वाले विधुर जातिच्युत समझे जाते हैं। इसी प्रकार पुराने समय में लोग यथाशक्ति कुमारियों के साथ शादी करते थे और श्रीमान् लोग तो विधवाओं के साथ शादी करना ही नहीं चाहते थे। परन्तु इससे विधुर विवाह के समान विधवाविवाह का भी निषेध नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि स्त्रियों को विवाह के

बाद एक कुटुम्ब छोड़कर दूसरे कुटुम्ब में जाना पड़ता है। इसलिये भी श्रीमन्त घरानों की स्त्रियाँ पुनर्विवाह नहीं करती थीं, क्योंकि ऐसी अवस्थामे उन्हें ग़रीब घरमें जाकर रहना पड़ता था। चूँकि श्रीमान् लोगों को तो कुमारियाँ ही मिल जाती थीं इसलिये वे विधवाओं से विवाह नहीं करते थे। ग़रीब घरानों में होने वाले वैवाहिक सम्बन्धों का महत्व न होने से शास्त्रों में उनका उल्लेख नहीं है।

उ—प्रायः कुमारियाँ ही स्वयम्बर करती थीं और स्वयम्बर बड़े २ विग्रहोंके तथा महत्वपूर्ण घटनाओं के स्थान थे; इसलिए शास्त्रों में स्वयम्बर का ज़िकर आता है। विधवाओं का स्वयम्बर न होने से विधवाविवाह का ज़िकर नहीं आता।

ऊ—हिन्दू पुराणों में द्रौपदी के पाँच पति माने गये हैं। दिगम्बर जैन लेखकोंने द्रौपदीके प्रकरणमें इस बातका खण्डन किया है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मन्दोदरीका भी पुनर्विवाह हुआ था, परन्तु मन्दोदरी के प्रकरण में उसके पुनर्विवाह का खण्डन नहीं किया गया. इससे मालुम होता है कि दिगम्बर जैन लेखक बहुपतित्व (एक साथ बहुत पति रखना) की प्रथा के विरोधी थे, परन्तु विधवाविवाह के विरोधी नहीं थे।

ऋ—हमारे पुराण जिस युग के बने हैं उस युग में भारत में सतीप्रथा ज़ोर पकड़ रही थी, विधवाविवाहकी प्रथा लुप्त होरही थी। ऐसी अवस्थामें दिगम्बर जैन लेखकोंने ज़माने का रुख देखकर विधवाविवाह वाली घटनाओंको अलग कर दिया, परन्तु कोई आदमी विधवाविवाह को जैनधर्म के विरुद्ध न समझले, इसलिये उनने विधवाविवाहका विरोध नहीं किया।

लृ—हिन्दू पुराणों से और स्मृतियों से वैदिक धर्मावलम्बियों में विधवाविवाह का रिवाज सिद्ध है। गौतम गणधर ने हिन्दू पुराणों की बहुतसी बातोंका खण्डन किया, परन्तु

विधवाविवाहका खण्डन नहीं किया। इससे भी विधवाविवाह की जैनधर्मानुकूलता मालूम होती है।

ए—प्रथमानुयोग, पुण्य और पापका फल बतलाने के लिये है, इसलिये उसमें रीतिरिवाजों का उल्लेख नहीं होता है। इसलिये उसमें ऐसे किसी भी विवाहका उल्लेख नहीं है जो असाधारण पुण्य या पुण्य फल का द्योतक न हो। ऊपर हम कह चुके हैं कि विधवाविवाह में ऐसी असाधारणता न होने से उसका उल्लेख नहीं हुआ।

ऐ—ऐसी बहुत बातें हैं जो जैनधर्मके अनुकूल हैं, शास्त्रोक्त हैं, परन्तु पुराणों में जिनका उल्लेख नहीं है—जैसे विवाहमें होनेवाली सप्तपदी, वैधव्यदीक्षा, दीक्षान्वय क्रियाएँ आदि।

ओ—परस्त्रीसेवन आदि का जिस प्रकार निन्दा करने के लिये उल्लेख है, उस तरह शास्त्रमें विधवाविवाहका खण्डन करने के लिए उल्लेख नहीं है।

औ—भगवान महावीर के द्वारा जितना प्रथमानुयोग कहा गया था उतना आजकल उपलब्ध नहीं है। सिर्फ़ मोटी मोटी घटनाएँ रह गई हैं इसलिए भी विधवाविवाह सरीखी साधारण घटनाओं का उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त बारह छेदकों में मेरे वक्तव्य का सारांश आगया है और आक्षेपों का खण्डन भी हो गया है। फिर भी कुछ बाक़ी न रह जाय, इसलिये आक्षेपकोंके निःसार आक्षेपोंका भी समाधान किया जाता है। लेखनशैली की अनभिज्ञता से श्रीलालजी ने जो आक्षेप किये हैं उन पर उपेक्षा दृष्टि रक्खी जायगी।

आक्षेप (क)—दमयन्तीने अपने पति नलको ढूँढने के

लिये स्वयम्बर रचदिया तो क्या हिन्दू शास्त्रोंमें पुनर्विवाह सिद्ध होगया ? [श्रीलाल]

समाधान—दमयन्ती पुनर्विवाह चाहती थी, यह हम नहीं कहते; परन्तु उस समय हिन्दुओं में उसका रिवाज था यह बात सिद्ध होजाती है। दमयन्ती के स्वयम्बर का निमन्त्रण पाकर किसीने इसका विरोध नहीं किया—सिर्फ दमयन्ती के पति नल को छोड़कर और किसी को इसमें आश्चर्य भी न हुआ। सब राजा महाराजा स्वयम्बर के लिये आये। यदि विधवा-विवाहका रिवाज न होता तो राजा महाराजा क्यों आते ?

आक्षेप (ख)—अन्तराल में चाहे धर्म कर्म उठ जाय परन्तु सजातीयविवाह नष्ट नहीं हुआ करता है। [श्रीलाल]

समाधान—अन्तरालमें धर्मकर्म उठ जाने पर भी अगर सजातीय विवाह नष्ट नहीं हुआ करता तो इससे सिद्ध हो जाता है कि सजातीय विवाह से धर्मकर्म का कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऐसी हालत में सजातीय विवाह का कुछ महत्व नहीं रहता।

सजातीय विवाह का बन्धन तो पौराणिक युग में कभी रहा ही नहीं। जातियाँ तो सिर्फ व्यापारिक क्षेत्र के लिये थीं। भगवान् ऋषभदेव के समय से जातियाँ हैं और उनके पुत्र सम्राट् भरतने ३२००० विवाह म्लेच्छ कन्याओं के साथ किये थे। तीर्थङ्करों ने भी म्लेच्छों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किये थे। अनुलोम और प्रतिलोम दोनों तरहके उदाहरणोंसे जैन-पुराण भरे पड़े हैं। विजातीयविवाह और म्लेच्छ कन्याओं से होने वाले विवाहके फलस्वरूप होने वाली सन्तान मुक्तिगामी हुई है इसकेभी उदाहरण और प्रमाण बहुतसे हैं। यहाँ विजातीय विवाह का प्रकरण नहीं है। विजातीय विवाह की चर्चा उठाकर श्रीलाल जी धूप के डरसे भट्टी में कूद रहे हैं। अन्त-

राल में विजातीय विवाह रहे चाहे जाय परन्तु जब उस समय जैनधर्म की प्रवृत्ति नहीं थी तब वैदिकधर्म के अनुसार विधवाविवाह का रिवाज अवश्य था और पीछे के जैनी भी उन्हीं की सन्तान थे।

आक्षेप (ग)—मुसलमानों में भी सैय्यद का सैय्यद के साथ और मुग़ल का मुग़ल के साथ विवाह होता है।

(श्रीलाल)

समाधान—विधवा विवाह के विरोध के लिये ऐसे ऐसे आक्षेप करने वाले के होश हवास दुरुस्त हैं इस बात पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है। सैय्यद सैय्यद से विवाह करे इसमें विधवाविवाह का खण्डन क्या हो गया? बल्कि इससे तो यही सिद्ध हुआ कि जैसे मुसलमान लोग (श्रीलाल जी के मतानुसार) सजातीय विवाह करते हुये भी विधवाविवाह करते हैं तो अन्यत्र भी सजातीय विवाह होने पर भी विधवाविवाह हो सकता है। इसलिये अन्तराल में सजातीयविवाह के बने रहने से विधवाविवाह का अभाव सिद्ध नहीं होता। फिर मुसलमानों में विजातीयविवाह न होने की बात तो धृष्टता के साथ धोखा देने की बात है। जहाँगीर बादशाह की माँ हिन्दु और बाप मुसलमान था। मुसलमानों में आधे से अधिक हिन्दूरक्तमिश्रित हैं। आज भी मुसलमान लोग चाहे जिस जाति की स्त्री से शादी कर लेते हैं।

आक्षेप (घ)—विजातीयविवाह से एक दो सन्तान के बाद विनाश हो जाता है। बनस्पतियों के उदाहरण से यह बात सिद्ध है।

समाधान—आक्षेपक को बनस्पति शास्त्र या प्राणि शास्त्र का ज़रा अध्ययन करना चाहिये। प्राणिशास्त्रियों ने

विजातीय सम्बन्धों से कैसी विचित्र जातियों का निर्माण किया है और उनकी कैसी वंशपरम्परा चल रही है, इस बात का पता आप को थोड़े अध्ययन में ही लग जाता। किसी मूर्ख माली की अधूरी बात के आधार पर सिद्धान्त गढ़ लेना आप ही सरीखे कूपमंडूक का काम हो सकता है। खैर, मान लीजिये कि विजातीय सम्पर्क की वंश परम्परा नहीं चलती, परन्तु मनुष्य में तो विजातीयविवाह की वंशपरम्परा चलती है। जहाँगीर हिन्दू माँ और मुसलमान बाप से पैदा हुआ था। इसके बाद के भी अनेक बादशाह इसी तरह पैदा हुए जिनकी परम्परा आज तक है। कई शताब्दियों तक तो वह वंश राज्य ही करता रहा। बाद में १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के बाद भी उसी वंश के बहुत से मनुष्य ग़रीबी की हालत में गुज़ार करते थे और उनमें बहुत से आज भी बने हुए हैं। यदि यह सिद्धान्त मान लिया जाय कि विजातीयविवाह की सन्तान परम्परा अधिक नहीं चलती तो इससे विजातीय विवाह का निषेध नहीं होगा किन्तु मनुष्यों में होने वाला विजातीय-विवाह, विजातीय नहीं है अर्थात् मनुष्यमात्र एक जाति के हैं यही बात सिद्ध होगी. क्योंकि मनुष्यों में विजातीय सम्बन्ध से भी वंश परम्परा चलती रहती है।

आक्षेप (ङ)—क्या श्रेणिक के समय में रामायण आदि ग्रन्थ बन गये थे ?

समाधान—ये ग्रन्थ बहुत प्राचीन हैं यह बात ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। साथ ही अपने पद्मपुराण में भी यह लिखा है।

देखिये पद्मपुराण द्वितीय पर्व—

श्रूयंते लौकिके ग्रन्थे राक्षसाः रावणादयः ॥ २३० ॥

एवंविधं किलग्रन्थं रामायणमुदाहृतं ॥ २३७ ॥
अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः ॥ २४८ ॥

ये सब श्रेणिक के मुंह से निकले हुए वाक्य हैं। रामायण का नाम तक आया है। श्रेणिक ने रामायण की अन्य बातों की तो निन्दा की, परन्तु विधवाविवाह की कहीं भी निन्दा न की, न गौतम ने ही निन्दा की, इससे विधवाविवाह की जैनधर्मानुकूलता सिद्ध होती है।

आक्षेप (च)—जब कुछ न बना तो एक श्लोक ही बना कर लिख दिया। इस मायाचार का कुछ ठिकाना है!

(श्रीलाल)

समाधान—

यथा च जायते दुःखं सद्धायामात्मयोषिति।
नरान्तरेण सर्वेषामियमेव व्यवस्थितिः ॥ १४-१६२ ॥

इस श्लोक में यह बताया गया है, कि परस्त्री रमण से परस्त्री के पति को कष्ट होता है इसलिये परस्त्री सेवन नहीं करना चाहिये। यह श्लोक पद्मपुराण का है जिसे श्रीलाल जी ने मेरा कह कर मुझे मनमानी गालियाँ दी हैं। इतना ही नहीं ऐसे अच्छे श्लोक के खण्डन करने की भी असफल चेष्टा की है। परन्तु इससे हमारा नहीं पद्मपुराण का खण्डन और आचार्य रविषेण का अपमान होता है।

इस श्लोक से यह बात सिद्ध होती है, कि परस्त्री रमण से पति को कष्ट होता है, इसलिये वह पाप है। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि विधवाविवाह से पति को कष्ट नहीं होता, क्योंकि पति मर गया है इसलिये विधवा-विवाह पाप नहीं है। ऐसी सीधी बात भी श्रीलाल जी न समझें तो बलिहारी इस समझ की।

श्रीलाल जी ने यह स्वीकार किया है कि 'अपनी विवा-

हिता को छोड़ कर शेष सब में व्यभिचार है चाहे वह कुमारी हो सधवा हो या विधवा हो'। श्रीलालजी के इस वक्तव्य का हम पूर्ण समर्थन करते हैं और इसीसे विधवा-विवाह का समर्थन भी हो जाता है। जिस प्रकार कुमारी के साथ रमण करना व्यभिचार है, किन्तु कुमारी को विवाहिता बना कर रमण करना व्यभिचार नहीं है। उसी प्रकार विधवा के साथ रमण करना व्यभिचार है परन्तु विधवा के साथ विवाह कर लेने पर उसके साथ रमण करना व्यभिचार नहीं है। विधवा के साथ विवाह करने पर उसे अविवाहिता नहीं कहा जा सकता, जिससे यहाँ व्यभिचार माना जावे। इस तरह श्रीलाल जी के वक्तव्य के अनुसार भी विधवा-विवाह उचित ठहरता है।

आक्षेप (छ)—महर्षिगण आठ विवाह बताने वालों की हम मानें या नौमी प्रकार का ये विधवा-विवाह बनाने वाले तुम्हारी मानें।

समाधान—विधवा-विवाह नवमा भेद नहीं है किन्तु जिस प्रकार कुमारीविवाह के आठ भेद हैं उसी प्रकार विधवा-विवाह के भी आठ भेद हैं। इस विषय में पहिले विस्तार से लिखा जा चुका है।

आक्षेप (ज)—प्राचीन समय में लोग विधवा होना अच्छा नहीं समझते थे। यदि पहिले समय में विधवाविवाह का रिवाज होता तो फिर विधवा शब्द से इतने डरने की कोई आवश्यकता नहीं थी। (विद्यानन्द)

समाधान—आज मुसलमानों में ईसाइयों में या अन्य किसी समुदाय में, जिसमें कि विधवाविवाह होता है, क्या विधवा होना अच्छा समझा जाता है? यदि नहीं तो क्या वहाँ भी विधवा-विवाह का अभाव सिद्ध हो जायगा? आजकल या

प्राचीन ज़माने में क्या लोग अपनी स्त्री का मरजाना अच्छा समझते थे ? यदि नहीं तो विधुर होना भी बुरा कहलाया। तब तो विधुर-विवाह का भी अभाव सिद्ध हो जाना चाहिये।

प्राचीन ज़माने में विधवा को अच्छा नहीं समझते थे, इससे विधवाविवाह का अभाव सिद्ध नहीं होता बल्कि सद्भाव सिद्ध होता है। विधवा होना अच्छा नहीं था, इसलिये विधवा विवाहके द्वारा उसे सधवा बनाते थे। क्योंकि जो चीज़ अच्छी नहीं होती उसे हटाने को कोशिश होती है। निरोग अगर रोगी हो जाय तो उसे फिर निरोग बनाने की कोशिश की जाती है। इसी प्रकार सधवा अगर विधवा हो जाय तो उसे फिर सधवा बनाने की कोशिश की जाती थी। इस तरह विद्यानन्द का तर्क भी विधवा-विवाह का समर्थन ही करता है।

इस प्रश्न में कुछ आक्षेप ऐसे भी हैं जो कि पहिले भी किये जा चुके हैं और जिनका उत्तर भी विस्तार से दिया जा चुका है। इसलिये अब उनकी पुनरुक्ति नहीं की जाती।

इकतीसवाँ प्रश्न।

'सामाजिक नियम या व्यवहार धर्म बदल सकते हैं या नहीं' इसके उत्तर में हमने कहा था कि बदल सकते हैं, क्योंकि व्यवहार धर्म साधक है। जिस कार्य से हमें निश्चय धर्म की प्राप्ति होगी वही कार्य व्यवहार धर्म कहलायगा। प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता और प्रत्येक समय की परिस्थिति एकसी नहीं होती। इसलिये सदा और सब के लिये एकसा व्यवहार धर्म नहीं हो सकता। अनेक प्रकार के मूलगुण, कभी चार संयम, कभी पांच संयम, किसी को कमण्डलु रखना,

किसी को नहीं रखना आदि शास्त्रोक्त विधान व्यवहार धर्म की विविधता बतलाते हैं।

सामाजिक नियमों के विषय में विद्यानन्द कहते हैं कि "सामाजिक नियम व्यवहार धर्म के साधक हैं अतः उनमें तबदीली करना मोक्ष मार्ग की ही तबदीली है...सामाजिक नियमों में रद्दोबदल करने और मोक्षमार्ग में रद्दोबदल करने का एक ही अर्थ है।" परन्तु इनके सहयोगी पण्डित श्रीलाल जी कहते हैं कि "सामाजिक नियम भिन्न भिन्न देशों में और भिन्न भिन्न कालों में और भिन्न भिन्न जातियों में प्रायः भिन्न भिन्न हुआ करते हैं।......लौकिक विधि उसी रूप में करना चाहिये जैसी कि जहाँ हो"। इस तरह ये दोनों आक्षेपक आपस में ही भिड़ गये हैं। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि विद्यानन्दजी ने सामाजिक नियम का कुछ अर्थ ही नहीं समझा और वे प्रलापमात्र कर गये हैं। सामाजिक नियमों के विषय में श्रीलालजी का कहना ठीक है और वह हमारे वक्तव्य की टीका मात्र है। श्रीलालजी कहते हैं कि सामाजिक नियम धर्म की छाया में ही रहते हैं। हमने भी लिखा था कि सामाजिक नियम धर्मपोषक होना चाहिये। अब व्यवहार धर्मविषयक मत-भेद रह जाता है, इसलिये उसके आक्षेपों का समाधान किया जाता है।

आक्षेप (क)—व्यवहार धर्म निश्चय का साधक है। न संसारी आत्मा की अवस्था पलटती है न निश्चयधर्म की, न उसके साधक व्यवहार धर्म की। (श्रीलाल)

समाधान—किसी भी द्रव्य की शुद्धावस्था दो तरह की नहीं होती परन्तु अशुद्धावस्था अनेक तरह की होती है, क्योंकि शुद्धावस्था स्वापेक्ष है और अशुद्धावस्था परापेक्ष है। पर द्रव्य अनन्त हैं इसलिये उनके निमित्त से होने वाली

अशुद्धि भी अनन्त तरह की हैं। इसलिये उनका उपचार भी अनन्त तरह का होगा। लोक और शास्त्र दोनों ही जगह साध्य की एकता होने पर भी साधन में भिन्नता हुआ करती है। श्रीलालजी का यह कहना बिलकुल झूठ है कि संसारी आत्माओं की अवस्था नहीं पलटती। अगर संसारी आत्मा की अवस्था न पलटे तो सब संसारियों का एक ही गुणस्थान, एक ही जीवसमास और एक ही मार्गणा होना चाहिये। निम्नलिखित बातों पर दोनों आक्षेपकों को विचार करना चाहिये।

१—मनुष्य अगर अणुव्रत पाले तो वह पानी छानकर और गर्म करके पियेगा, जब कि अणुव्रती पशु ऐसा न कर सकेगा। वह बहताहुआ पानी पीकरके भी अणुव्रती बनारहेगा। व्यवहार धर्म अगर एक है तो पशु और मनुष्य की प्रवृत्ति में अन्तर क्यों?

२—कोई कमण्डलु अवश्य रक्खेगा, कोई न रक्खेगा, यह अन्तर क्यों?

३—किसी के अनुसार तीन मकार और पाँच फल का त्याग करके ही [बिना अणुव्रतोंके] मूलगुण धारण किये जा सकते हैं, किसी मत के अनुसार मधु सेवन करते हुएभी मूलगुण पालन किये जा सकते हैं क्योंकि उसमें मधु के स्थान पर द्यूत का त्याग बतलाया है। इस तरह के अनेक विधान क्यों हैं? अगर कहा जाय कि इस में सामान्य विशेष अपेक्षा का भेद है तो कौनसा सामान्य और कौनसा विशेष है? औरइस अपेक्षा भेद का कारण क्या है?

४—२२ तीर्थङ्करों के तीर्थ में चार संयमों का विधान क्यों रहा? और दो न पाँच का विधान क्यों किया? [कोई सामायिकका पालन करे, कोई छेदोपस्थापना का, यह एक

बात है, परन्तु छेदोपस्थान का विधान न होना दूसरी बात है।]

ऐसे और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु इन सबके उत्तरमें यही कहा जासकता है कि जिस व्यक्ति में जितनी योग्यता होती है या जिस युग में जैसे व्यक्तियों की बहुलता रहती है व्यवहार धर्म्म का रूपभी वैसा ही होता है। हाँ, व्यवहार धर्म्म हो कैसा भी, किंतु उस की दिशा निश्चय धर्म्म की ओर रहती है। अगर निश्चय साधकता सामान्य की दृष्टिसे व्यवहार धर्म्म एक कहाजाय तो किसीको विवाद नहीं है परन्तु वाह्यरूप की दृष्टि से व्यवहार धर्म्म में विविधता अवश्य होगी।

अब इस कसौटी पर हम विधवाविवाह को कसते हैं। धार्मिक दृष्टि से विवाह का प्रयोजन यह है कि मनुष्य की कामवासना सीमित हो जाय। इस प्रयोजनकी सिद्धि कुमारी विवाह से भी है और विधवाविवाह से भी है। निश्चय साधकता दोनों में एक समान है। अगर दोनों आक्षेपक निश्चय साधकता सामान्य को दृष्टि में रखकर व्यवहार धर्म्म को एक तरह का मानें तो कुमारीविवाह और विधवाविवाह दोनों एक सरीखे ही रहेंगे। दोनों की समानता के विषय में हम पहिले भी बहुत कुछ कह चुके हैं।

आक्षेप (ख)—जो लोग अजितनाथसे लेकर पार्श्वनाथ तक के शासन में छेदोपस्थापनाका अभाव बतलाते हैं उनकी विद्वत्ता दयनीय है। (विद्यानन्द)

समाधान—मेरी विद्वत्ता पर दया न कीजिये, दया कीजिये उन बट्टकेर स्वामी की विद्वत्ता पर जिनने मूलाचारमें यह बात लिखी है। देखिये—

बावीसं तित्थयरा सामाइय संजमं उवदिसन्ति ।
छेदुव ठावणियंपुण भयवं उसहो य वीरोय ॥ ५३३ ॥

'अर्थात् बाईस तीर्थङ्कर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं और भगवान् ऋषभ और महावीर छेदोपस्थापना का। अगर आप बट्टकेर स्वामी की विद्वत्ता पर दया न बतला सकें तो अपनी विद्वत्ता को दयनीय बतलायें, जो कूप-मण्डूक की तरह हंस के विशाल अनुभव को दयनीय बतला रही है।

आक्षेप (ग)—बिना व्यवहारका आलम्बन लिये मोक्ष मार्ग के निकट पहुंच नहीं हो सकती। (विद्यानन्द)

समाधान—व्यवहार का निषेध मैं नहीं करता, न कहीं किया है। यहाँ तो प्रश्न व्यवहारके विविध रूपों पर है। कुमारीविवाह में जैसी व्यवहार-धर्मता है वैसी ही विधवाविवाह में भी है। यहाँ व्यवहार के दो रूप बतलाये हैं—व्यवहार का अभाव नहीं किया गया।

आक्षेप (घ)—जब पथ भ्रष्टता होचुकी तो लक्ष्य तक पहुंच ही कैसे होगी ?

समाधान—मार्ग की विविधता या यान की विविधता पथभ्रष्टता नहीं है। कोई बी० बी० सी० आई० लाइनसे देहली जाता है, कोई जी० आई० पी० लाइन से, कोई ऐक्सप्रेस से, कोई मामूली गाडी से, कोई फ़र्स्टक्लास में, कोई थर्ड-क्लास में, परन्तु इन सब में पर्याप्त विविधता होने पर भी कोई पथभ्रष्ट नहीं है: क्योंकि समय-भेद मार्ग-भेद होने पर भी दिशाभेद नहीं है। विधवाविवाह, कुमारीविवाह के समान निरर्गल कामवासनाको दूर करता है। इसलिये दोनोंकी दिशा एक है, दोनों ही लक्ष्यके अनुकूल हैं, इसलिये उसे पथ-भ्रष्टता नहीं कह सकते।

इस तरह विधवाविवाह जैनधर्म के अनुकूल सिद्ध हो गया। मैं विधवाविवाह के प्रत्येक विरोधी को निमन्त्रण देता हूँ कि उसे विधवाविवाह के विषय में अगर किसीभी तरहकी शङ्का हो तो वह ज़रूर पूछे। मैं उसका अन्त तक समाधान करूँगा।

* आवश्यक सूचना *

देहली में एक जैनबाल-विधवा-विवाह-सहायक सभा स्थापित है। वे सज्जन जो विधवाविवाह के सिद्धान्त से सहमत हों या जो सभा के मेम्बर होना चाहें या जिन्हें अपने लड़के या लड़की का ऐसा सम्बन्ध कराना स्वीकार हो, वह नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें:—

मन्त्री—
जैन बाल-विधवाविवाह सहायक सभा
दरीबा कलाँ, देहली।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अन्यत्र प्रकाशित महानुभावों के अतिरिक्त श्रीमान् बाबू राजकृष्ण प्रेमचन्द्र कोल मरचेन्ट ने भी [illegible], प्रदान किये हैं—धन्यवाद।

—मन्त्री

अन्य उपयोगी पुस्तकें

१. शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण—लेखक-श्रीमान् पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार मूल्य)॥
२. विवाह क्षेत्र प्रकाश " ... मूल्य ।=)
३. जैनजाति सुदशा प्रवर्त्तक—लेखक-श्रीमान बाबू सूरजभान जी ... ... " -)
४. मंगला देवी— " " " -)
५. कुमारों की दुर्दशा " " " -)
६. गृहस्थ धर्म— " " ")॥
७. राजदुलारी " " " ॥)
८. विधवा-विवाह और उन के संरक्षकों से अपील लेखक—ब्र० शीतल प्रसाद जी ")॥
९. उजलेपोश बदमाश—लेखक-पं० अयोध्याप्रसाद गोयलीय देहली ... " -)
१०. अबलाओं के आँसू " " " ।)
११. पुनर्लग्न मीमांसा—ले०-बाबू भोलानाथ मुख्तार बुलन्दशहर ... ")॥
१२. विधवा-विवाह समाधान ले०-श्री० सव्यसाची ")॥
१३. सुधारसंगीतमाला—ले०-पं० भूरामल मुशरफ़ जैपुर ... ... ")॥
१४. जैन-धर्म और विधवा-विवाह (पहिला भाग) " -)।
१५. जैन-धर्म और विधवा विवाह (दूसरा भाग) " ।=)

मिलने का पता:—

ला० जौहरीमल जैन सर्राफ़, दरीबा कलाँ, देहली

ट्रैक्ट नं० ९

विधवा विवाह समाधान

लेखक :—

श्रीयुत "सव्यसाची"

प्रकाशकः—

जैन बाल विधवा सहायक सभा

दरीबा कलाँ, देहली।

शान्तिचन्द्र जैन के प्रबन्ध से

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस बिजनौर में छपी।

प्रथमावृत्ति 2000	पौष वीर नि० सम्वत २४५५	मूल्य)॥

* धन्यवाद *

श्रीमान् पं० "सव्यसाची" जी ने इस अपूर्व विद्वत्ता पूर्ण लेख द्वारा जो अनेकों युक्तियों से विधवा विवाह का समाधान किया है, यह सभा उसके उपलक्ष में लेखक महोदय के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है और जिन निम्नांकित सज्जनों ने हमारे उद्देश्य से प्रेम भाव धारण करके इस रहस्य पूर्ण निबन्ध के छपाने में हमारी आर्थिक सहायता की है यह सभा हृदय से उनकी आभारी है :-

१०) ला० भोलानाथ जैन (दरख्शाँ) मुख्तार बुलन्दशहर

१०) ला० काहनचन्द रामलाल पंजाबी अमृतसर।

१०) राजकृष्ण प्रेमचन्द्र कोल मर्चेंट देहली।

३०) कुल जोड़।

मन्त्री

जैन बाल विधवा सहायक सभा

देहली।

विधवा विवाह

[लेखक—एक "सव्यसाची"]

विधवा-विवाह के विषय में इस समय काफ़ी चर्चा चल रही है। विधवा विवाह के प्रचारकोंका कहना है कि इससे धर्म में विशेष हानि नहीं है और वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है। विरोधी इसको हर तरह धर्म विरुद्ध कहते हैं, महापातक समझते हैं और उन्हें इस बात का दुःख है कि विधवा विवाह प्रचारकों को भेजने के लिये आठवां नरक क्यों नहीं है? खैर!

सामाजिक दृष्टि से विधवा विवाह कैसा है इस विषय पर मैं इस लेख में विशेष विचार न करूंगा। मुझे तो धार्मिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करना है। यद्यपि मैं पंडित नहीं हूँ फिर भी थोड़ी सी संस्कृत जानता हूँ। धर्म शास्त्रों का भी स्वाध्याय किया है। विद्वानों की सङ्गति का भी सौभाग्य मिला है। इससे मेरी इच्छा हुई कि इस विषय पर मैं भी कुछ अपने विचार प्रगट करूं। बड़े बड़े विद्वानों के बीच में मुझ सरीखे क्षुद्र व्यक्ति के पड़ने की ज़रूरत तो नहीं है, बल्कि यह एक प्रकार की धृष्टता है, फिर भी समय ऐसा आगया है कि चुप रहना भी बड़े साहस का काम है।

मेरे विचार मे विधवा-विवाह धर्म विरुद्ध अथवा पाप

नहीं है। अथवा दूसरे शब्दों में इसे यों कहना चाहिये कि यह उतना ही बड़ा पाप है जितना कि कुमारी विवाह। जो लोग यह कहते हैं कि "विधवा विवाह आदर्श नहीं है, लेकिन ......" उनके शब्दों से भी मैं सहमत नहीं हूँ। 'लेकिन' 'किन्तु' 'परन्तु' लगा कर विधवा-विवाह को नीची दृष्टि से देखना मैं समझ का फेर समझता हूँ। आदर्श तो ब्रह्मचर्य है, उससे उतरती अवस्था विवाह है: फिर चाहे वह विधवा के साथ हो या कन्या के साथ। विवाह पाप होने पर भी, जिन युक्तियों और आवश्यकताओं से हम कुमारी विवाह को उचित समझते हैं, उन्हीं युक्तियों और आवश्यकताओं से विधवा-विवाह भी उचित है। कन्या का विवाह इस लिये किया जाता है कि जिससे सन्तान चले और कन्या दुराचारिणी न हो जावे। यद्यपि अभी तक वह दुराचारिणी हुई नहीं है, सिर्फ़ दुराचारिणी होने की सम्भावना है। इसी प्रकार विधवा-विवाह भी इसी लिये किया जाता है जिससे कि सन्तान चले और वह दुराचारिणी न हो जावे। भले ही वह अभी तक दुराचारिणी न हुई हो, सिर्फ़ सम्भावना ही हो।

जो लोग यह कहने लगते हैं कि "विधवाओं ने क्या आपके पास दरख्वास्त भेजी है?" उनको यह भी सोचना चाहिये कि कुमारी कन्यायें भी क्या दरख्वास्त भेजती हैं? कुमारियों के विषयमें तो भ्रूणहत्या और गुप्त व्यभिचार की भी शिकायतें यहाँ सुनने में नहीं आतीं, फिर भी आप उनका विवाह कर देते हैं: तब विधवा समाज तो भ्रूण हत्या, गुप्त व्यभिचार आदि कार्यों द्वारा ज़बरदस्त दरख्वास्तें भेजती हैं, फिर उनका विवाह क्यों न किया जाय? विधवा-विवाह के निषेध के लिये लोग

जल्दी से सीता और अञ्जना का नाम लेने लगते हैं, परन्तु सीता और अञ्जना को वैधव्य कब भोगना पड़ा? पुराणों में विधवाओं का उल्लेख नहीं के बराबर है और जो मिलती हैं वे आर्जिका के रूप में। हम मानते हैं कि उस समय भी अनेक विधवायें गृहवास करती थीं, परन्तु इससे भी उनके विवाह का निषेध नहीं होता। भगवान ऋषभदेव की पुत्रियों (ब्राह्मी, सुन्दरी) ने अखण्ड ब्रह्मचर्य पाला था। क्या उनका उदाहरण देकर हम कुमारी विवाह का निषेध कर सकते हैं? और क्या सीता अञ्जना को भी पापिनी कह सकते हैं? यदि नहीं तो सीता अञ्जना का उदाहरण देकर हम वर्तमान में विधवा विवाह का भी निषेध नहीं कर सकते। जैसे ब्राह्मी और सुंदरी का उदाहरण देकर हम कुमारी विवाह और विधवा विवाह का निषेध नहीं कर सकते, उसी प्रकार पवनंजय का उदाहरण देकर पुरुषों के पुनर्विवाह का भी खण्डन नहीं किया जा सकता। पवनंजय अञ्जना को बाईस वर्ष छोड़े रहा। फिर भी उसने दूसरा विवाह न कराया। आजकल कितने पुरुष भर जवानी में बाईस वर्ष तक संयम रख सकते हैं? स्त्रियों के लिये तो ब्राह्मी, सुन्दरी, सीता आदि आदर्श हैं. परन्तु पुरुषों के लिये क्या वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ महावीर, पवनंजय आदि आदर्श नहीं हैं? बात यह है कि आदर्श से हम रास्ते का पता लगा सकते हैं, उसकी तरफ़ मुंह करके चल सकते हैं, लेकिन समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसके ऊपर आरूढ़ नहीं हो सकता।

जब हम देखते हैं कि अपने तीन तीन चार चार विवाह करने वाले पुरुष विधवा-विवाह का निषेध करते हैं तब हमें

उनकी बेशरमी पर ताज्जुब होता है। अरे भाई ! तुम मर्द होकर जब काम की ज़रासी चपेट नहीं सह सकते,तो विचारी स्त्रियाँ कैसे सहेंगी। जिस काम को तुम स्वयं करते हो, उसी पर तुम दूसरों को दण्ड देना चाहते हो। भला इस बेहयाई का कुछ ठिकाना है। जो विधवा विवाह के विरोधी हैं, उन्हें चाहिये कि वे एक अलग समाज स्थापित करें जिसमें न तो पुरुषों का पुनर्विवाह होता हो न स्त्रियों का।

बहुत से लोग विधवा-विवाह के निषेध के लिये स्त्रियों को आगे करने लगे हैं। परन्तु हम **कुमारी विवाह के निषेध के लिये सैकड़ों कन्याओं को खड़ा करदें** तो क्या आप कुमारी विवाह बन्द कर देंगे ? बात यह है कि शताब्दियों की गुलामी ने स्त्रियों के शरीर को ही नहीं, किन्तु आत्मा और हृदय को भी गुलाम बना दिया है। उनमें अब इतनी हिम्मत नहीं है कि वे हृदय की बात कह सकें। अमेरिका में जब गुलामी की प्रथा के विरुद्ध अब्राहमलिंकन ने युद्ध छेड़ा तो स्वयं गुलामों ने लिंकन साहिब के विरुद्ध अपने मालिकों का पक्ष लिया और जब वे स्वतन्त्र हो गये तो भी मालिकों की शरण में पहुँचे। गुलामी का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। ज़रा स्वतन्त्र नारियों से आप ऐसी बात कहिये, यूरोप की स्त्रियों से विधवा-विवाह के विरोध करने का अनुरोध कीजिए, तब आपको मालूम हो जायगा कि स्त्रीहृदय क्या चाहता है ? हमारे देश की लज्जालु स्त्री कार्य कर सकती है, पर कह नहीं सकती। एक विधवा से—जिसके चिह्न वैधव्य पालन के अनुकूल नहीं थे—एक महाशय ने विधवा-विवाह का ज़िकर

किया तो उनको पचासों गालियाँ मिलीं, घर वालों ने गालियां दीं और बिचारी की बड़ी फ़ज़ीहत की, परन्तु कुछ दिनों बाद वह एक आदमी के घर में जाकर बैठ गई। इसी तरह सैकड़ों विधवाएँ अजैनों के साथ भाग सकती हैं, भ्रूण-हत्या कर सकती हैं, गुप्त व्यभिचार कर सकती हैं, परन्तु मुँह से अपना जन्म सिद्ध अधिकार नहीं मांग सकतीं। प्रायः प्रत्येक पुरुष को इस बात का पता होगा कि ऐसे कार्यों में स्त्रियाँ मुँह से 'ना' 'ना' करती हैं और कार्य से 'हां' 'हां' करती हैं। इसलिये स्त्रियों के इस विरोध का कोई मूल्य नहीं है।

अब हम इस विषय में विचार करते हैं कि क्या विधवा विवाह पाप है और अगर पाप है तो कौनसा? विधवाविवाह के विरोधियों का कहना है कि यह व्यभिचार है। अगर पूछा जाय कि व्यभिचार किसे कहते हैं तो उत्तर मिलेगा कि पर-पुरुष या परस्त्री के साथ रमण करना। अगर पूछा जाय कि परपुरुष और परस्त्री किसे कहते हैं? तो उत्तर मिलेगा कि पुरुष का जिस स्त्री के साथ विवाह न हुआ हो वह पर स्त्री, और स्त्री का जिस पुरुष के साथ विवाह नहीं हुआ, वह पर पुरुष है। विवाह के पहिले अगर कोई पुरुष, किसी कुमारी के साथ अनुचित सम्बन्ध करे, तो भी उसे व्यभिचार कहेंगे: लेकिन विवाह होने के बाद वह सम्बन्ध व्यभिचार न कहला-येगा। इस से यह बात साफ़ मालूम होती है कि विवाह में ऐसी खूबी है जो व्यभिचार के दोष को अपहरण कर लेती है। जो आज परपुरुष है विवाह होने के बाद वह स्वपुरुष बन जाता है, जो आज परस्त्री है विवाह होजाने के बाद वह ही स्वस्त्री बन जाती है। जो विधवा आज परस्त्री है वह विवाह

हो जाने पर स्वस्त्री हो जावेगी; जो पुरुष, एक विधवा के लिये आज परपुरुष है वही विवाह हो जाने पर स्वपुरुष होजायगा। फिर अब व्यभिचार कहां रहा। क्या स्वस्त्री और स्वपुरुष के साथ सम्बन्ध करना भी व्यभिचार है ? यदि विवाह हो जाने पर भी हम व्यभिचार व्यभिचार चिल्लाते रहें तब तो पूर्ण ब्रह्मचारी के सिवाय सभी व्यभिचारी कहलायेंगे ।

कहा जाता है कि विधवा का तो विवाह ही नहीं हो सकता, फिर वह व्यभिचार का दोष कैसे दूर होगा ? ठीक है; अगर विधवा का विवाह न हो सके तब तो व्यभिचार का दोष बना ही रहेगा। लेकिन हमें कोशिश तो करनी चाहिये कि विधवा का विवाह हो सकता है या नहीं ? यदि कर सकेंगे तो ठीक है, न कर सकेंगे तो वश क्या है । अगर विधवा-विवाह करते ही वज्र पड़ जाय, स्त्री का जीवन समाप्त हो जाय या पुरुष का जीवन समाप्त हो जाय, मासिकधर्म बन्द हो जाय, स्त्रीत्व के चिन्ह नष्ट हो जावें तब समझना चाहिये कि विधवा-विवाह हो ही नहीं सकता । अगर ऐसी बात नहीं है तब तो आलसी बन कर पड़े रहने में क्या फ़ायदा है ? यदि आप स्वयं नहीं कर सकते तो जो लोग कर सकते हैं उन्हें शाबाशी तो दीजिये। जो काम आपके लिये असम्भव है वह उन्होंने सम्भव करके दिखा दिया; यह क्या कम बहादुरी है ? यदि आप कहें कि न करना चाहिये, इस लिये नहीं हो सकता तो हम पूछते हैं कि क्यों न करना चाहिये ? जब विवाह में यह ताक़त है कि व्यभिचार का दोष दूर कर देता है तब, ज़रूरत पड़ने पर उसका उपयोग क्यों न किया जाय ?

अनेक भाई कहेंगे कि शास्त्रों में 'कन्यादानं विवाहः' लिखा हुआ है। इस लिये विधवा का विवाह नहीं हो सकता। यदि कन्यादान विवाह का लक्षण माना जावे तब तो गंधर्व विवाह को विवाह ही न कहना चाहिये; क्योंकि उसमें स्त्री और पुरुष परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करलेते हैं—कन्या का दान नहीं किया जाता। इससे मालूम होता है कि शास्त्रों में विवाह के जो लक्षण मिलते हैं वे किसी समय की विवाह प्रथा के प्रदर्शकमात्र हैं। विवाह का व्यापक लक्षण है **'स्त्री पुरुष का एक दूसरे को स्वीकार करना'।**

कन्या शब्द के ऊपर जब हम नज़र डालते हैं तब हमें इसमें और ही रहस्य दीखता है। कन्या शब्द का अर्थ 'लोग' अविवाहिता लड़की करते हैं। लेकिन कन्या शब्द का अर्थ पुत्री भी होता है। विवाहित हो जाने पर भी यह कहा जाता है कि अमुक पुरुष की कन्या है। विवाह में कन्यादान (पुत्रीदान) शब्द के प्रयोग करने का मतलब यह है कि कन्या दान करने का सबसे बड़ा अधिकार पिता को है। पिता को अधिकार है कि वह कुमारी कन्या के समान विधवा का भी दान करे।

दूसरी बात यह है कि **'कन्या' शब्द का अर्थ 'विवाह योग्य स्त्री' है चाहे वह कुमारी हो या विधवा।** सैकड़ों वर्षों से भारतवर्ष में कुमारी विवाह का ही विशेष चलन रहा है इस लिये कुमारी और कन्या दोनों *ही शब्द पर्यायवाची बन गये हैं। देखिये कोषकार ने 'कन्या* शब्द का अर्थ 'स्त्री सामान्य' बताया है।

कन्या कुमारिका नार्यो राशिभेदौषधीभिदोः (विश्वलोचन) । इससे मालूम होता है कि कन्या कुमारी को भी कहते हैं और स्त्रीमात्र को भी कहते हैं । इसलिये विधवा को भी कन्या कह सकते हैं । यह न समझिये कि यह अर्थ सिर्फ़ कोष में लिखने के लिये ही है, शास्त्रकारों ने इसका प्रयोग भी किया है । इसका उदाहरण भी लीजिये—

सुग्रीव की स्त्री सुतारा, दो बच्चों की माता हो गई थी । फिर भी साहसगति विद्याधर उसके ऊपर आसक्त था । वह सोचता है कि वह कन्या (सुतारा) मुझे कब मिलेगी—'कदा नु प्राप्स्यामि तां कन्यां लक्ष्मीं निवृत्तिदायिनीं' । जब दो बच्चों की माता को कन्या कहा जा सकता है तब विधवा को कन्या क्यों नहीं कहा जा सकता ? ऐसे व्यापक अर्थ में कन्या शब्द का प्रयोग और भी मिलता है: जैसे—'देवकन्या' आदि । विवाह के लक्षण के फेर में पड़ कर जो लोग विधवा-विवाह का निषेध करते हैं, उनसे हम कह देना चाहते हैं कि वास्तविक विवाह का लक्षण 'सद्वेद्यचारित्रमोहोदयात् विवहनं विवाहः' है जिसमें कन्या और विधवा का कोई प्रश्न ही नहीं है । कन्याशब्द का प्रयोग एक समय के रिवाज के अनुसार है । दूसरी बात यह है कि शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है ।

कई लोग कहने लगते हैं कि "कन्या तो देने की चीज़ है । जिसको वह दी जाती है, वह उसी की सम्पत्ति हो जाती है: फिर किसी दूसरे को लेने का क्या अधिकार है" । इसके उत्तर में हम पहिले यही निवेदन करेंगे कि स्त्री किसी की सम्पत्ति नहीं है । जैन धर्म कहता है कि महाव्रत न पाल सकने के कारण जैसे पुरुष एक स्त्री को ग्रहण करके अणु-

व्रत पालता है उसी प्रकार स्त्री भी महाव्रत न पाल सकने के कारण एक पुरुष को ग्रहण कर अणुव्रत पालती है; इसमें कोई किसी की सम्पत्ति नहीं कहलाती। सीताकी जब अग्निपरीक्षा हो चुकी तब रामचन्द्र ने फिर घर में रहने को उनसे प्रार्थना की, परन्तु सीताने रामचन्द्र की प्रार्थना नामंजूर की और आर्यिका की दीक्षा लेली। क्या सम्पत्ति, मालिक की इच्छा के विरुद्ध चली जा सकती है? अब ज़रा और भी विचार कीजिये— अगर स्त्री, पुरुष की सम्पत्ति है तो पुरुष के मरने के बाद उसके समस्त सम्पत्ति का स्वामी उसका पुत्र होता है उसी प्रकार उसकी स्त्री का अर्थात अपनी माता का भी स्वामी पुत्र कहलायेगा। क्या विधवाविवाह के विरोधियों को यह बात इष्ट है? यदि वह स्वामी नहीं है तो मानना चाहिए कि वह पिता की सम्पत्ति नहीं थी। उसने तो अणुव्रत पालन के लिये एक पुरुष का सहारा लिया था; अब वही महाव्रत पालेगी या वैधव्य दीक्षा लेगी अथवा छठवीं प्रतिमा के आगे न बढ़ सकेगा तो पुनर्विवाह करेगी। उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पति के जीवन भर साथ दिया। अब वह दूसरा प्रबन्ध करने के लिये स्वतन्त्र है। यदि इतने पर भी लोग स्त्री को सम्पत्ति समझें तब यह कहना पड़ेगा कि पति के मरने पर उसका दूसरा पति होना ही चाहिये; क्योंकि सम्पत्ति लावारिस नहीं रह सकती। अगर वह लावारिस रहेगी तब तो प्रत्येक आदमी उसका मन माने रूपमें प्रयोग करेगा। तब हमारी मा बहिनें क्या बन जावेंगी * यह कल्पना भी

* पण्डित नेकीराम शर्मा के शब्दों में आजकल की बहुत सी विधवाएं पब्लिक प्रापर्टी—सार्वजनिक सम्पत्ति-

असह्य है। यदि प्रत्येक आदमी उनका उपयोग न कर सकेगा तो यह कहना पड़ेगा कि "अस्वामिकस्य द्रव्यस्य दायादो मेदिनीपतिः" जिसका कोई स्वामी नहीं होता उसका स्वामी राजा होता है। आजकल हमारे यहाँ राजा है—अंग्रेज़ लोग, तब सब विधवाओं के स्वामी वे ही हो जावेंगे।

स्त्रियों को सम्पत्ति समझने वाले दानवों से हम पूछते हैं कि तुम लोग अपनी इन गन्दी कल्पनाओं से अपनी मां बहिन और बेटियों को कितना नीचे गिरा देते हो? उनका कैसा अपमान करते हो, उनके सतीत्व पर कैसे आक्षेप करते हो, इसकी कल्पना करते ही आँखों में खून टपकने लगता है और जी चाहता है कि..........।

कुछ लोगों का यह कहना है कि जिस प्रकार मनुष्य अनेक थालियों में भोजन कर सकता है लेकिन हमारी झूठी थालीमें दूसरा पुरुष भोजन नहीं करता, उसी प्रकार एक पुरुष अनेक स्त्रियों का सेवन कर सकता है, लेकिन अनेक पुरुष एक स्त्री का सेवन नहीं कर सकते, क्योंकि पुरुष भोजक है और स्त्री भोज्य है। यदि स्त्री को थाली मान लिया जाय तो भी विधवाविवाह का विरोध नहीं होता। क्योंकि जिस प्रकार मांजने धोने के बाद थाली फिर काम में लाई जाती है और दूसरे पुरुष के भी काम में आ सकती है, उसी प्रकार मासिक धर्म के बाद द्वितीय पुरुष के साथ स्त्री का सम्बन्ध होना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

दूसरी बात यह है कि स्त्री पुरुष का भोज्य भोजक सम्बन्ध नहीं है; यदि है तो दोनों ही भोजक और दोनों ही भोज्य हैं। सीधी बात यही है कि भोग के कार्य में दोनों को

बन गई हैं। घर वालों से लेकर बाहर तक के सभी पुरुषों की कुदृष्टि उन पर रहती है। स० जा० प्र०।

सुख होता है: अगर भोज्य भोजक सम्बन्ध होता तो भोज्य (स्त्री) को सुख न होना चाहिये था: अगर स्त्री को भोज्य माना जाय तो स्त्री को कुशील के पाप का बन्ध न होना चाहिये: क्योंकि भोगने वाला तो पुरुष है स्त्री ने तो भोग किया ही नहीं है, फिर पाप कैसा ? तीसरी बात यह है कि वेश्या को भी हमें निर्दोष मानना पड़ेगा: क्योंकि वह तो भोज्य है। जैसे थाली को एक पुरुष झूठा करे या दस, वह अपवित्र होती है, किन्तु इसमें उसका दोष नहीं माना जाता। इसी प्रकार वेश्या का दोष या अपराध भी नहीं मानना चाहिये। रही अपवित्रता की बात, सो तो सधवा विधवा और वेश्या सभी अपवित्र हैं। क्योंकि आपके मत से वे भी झूठी थाली के समान हैं। ऐसी हालत में हमें सधवा विधवा और वेश्या सबको समान सन्मान और धार्मिक व सामाजिक अधिकार देना पड़ेगा। खैर !

भोक्ता किसे कहते हैं ?

अब ज़रा इस पर भी विचार कीजिये। राजवार्तिक में लिखा है "परद्रव्य वीर्यादान सामर्थ्यं भोक्तृत्वलक्षणम्" दूसरे द्रव्य की ताक़त को ग्रहण करने की सामर्थ्य को भोक्तृत्व कहते हैं। स्त्री पुरुष के भोग में हमें विचार करना चाहिये कि कौन किसकी ताक़त को ग्रहण करता है। अथवा कौन अपनी शक्तियों को ज़्यादह बर्बाद करता है। विचार करते ही हमें मालूम होगा कि भोक्तृत्व स्त्री में है, पुरुष में नहीं। क्योंकि इस कार्य में पुरुष की जितनी शक्ति नष्ट होती है उतनी स्त्री की नहीं। दूसरी बात यह है कि स्त्री की 'रज' को पुरुष ग्रहण नहीं कर पाता बल्कि पुरुष के वीर्य को स्त्री ग्रहण कर लेती है। ग्रहण करना ही भोक्तृत्व है: यह बात राजवार्तिक

के लक्षण से साफ़ मालूम होती है। मतलब यह है कि पुरुष को भोजक और स्त्री को भोज्य कदापि नहीं कहा जा सकता। थाली के उदाहरण के स्थान पर गन्ने का उदाहरण रखने से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। पुरुष अगर स्त्री को थाली के अनुसार झूंठी करके फेंक देना चाहते हैं तो स्त्रियां भी ऐसा ही कर सकती हैं। इस उदाहरण से बहुपत्नी की शंका का भी समाधान होजाता है। कहा जाता है कि पुरुष तो एक ही समय में अनेक स्त्रियों को रख सकता है लेकिन एक स्त्री अनेक पुरुषों को नहीं रख सकती। इस तरह स्त्रियाँ हीन हैं। इसका उत्तर गन्ने के उदाहरण में है। अनेक व्यक्ति एक गन्ने के अनेक भागों को चूस सकते हैं; इस लिये वह गन्ना बड़ा नहीं हो जाता और न किसी का दूसरा गन्ना चूसने का अधिकार छिन जाता है। दूसरी बात यह है कि एक पुरुष की अनेक स्त्री होना या एक स्त्री के अनेक पुरुष होना यह देश देश का रिवाज है। यहाँ एक पुरुष अनेक स्त्री रखता है; तिब्बत में एक स्त्री अनेक पति रखती है। शक्ति सब में सब तरह की है; उपयोग होना देशकाल के ऊपर निर्भर है। इसलिये थाली वग़ैरह के उदाहरण देकर या भोज्य भोजक सम्बन्ध बता कर विधवा विवाह का निषेध करना निरर्थक है।

कई लोग कहने लगते हैं कि शास्त्रों में ब्राह्म प्राजापत्य आदि आठ तरह के विवाह लिखे हैं। उनमें विधवाविवाह का नाम क्यों नहीं है? इसका उत्तर बिलकुल सीधा है। ऐसे भाइयों को देखना चाहिये कि इन आठों भेदों में कन्या (कुमारी) विवाह का उल्लेख कहाँ है? तथा सजातीय विवाह, विजातीय विवाह, अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह आदि का भी उल्लेख कहाँ है? मतलब यह है कि जैसे कुमारी का

विवाह आठ तरह का होता है, उसी तरह विधवा का विवाह भी आठ तरह का होता है। जैसे सजातीय विवाह आठ तरह होता है, उसी प्रकार विजातीय विवाह भी आठ तरह का ही होता है: सब तरह के विवाहों में ये आठ भेद हो सकते हैं। आश्चर्य है इस हलकी सी बात को भी विधवा विवाह के विरोधी समझ नहीं पाते।

कई लोग कहते हैं कि "पुरुषों को प्रकृति ने ही अधिक अधिकार दिये हैं और स्त्रियोंको थोड़े अधिकार दिये हैं। देखो! पुरुष वर्ष भर में सौ दो सौ बच्चे भी पैदा कर सकता है और स्त्री सिर्फ़ एक ही बच्चा पैदा कर सकती है" इसका उत्तर भी बहुत सरल है। यदि ऐसा है तो पुरुषों का पुनर्विवाह तुरन्त रोक देना चाहिये और स्त्रियों का पुनर्विवाह तुरन्त चालू कर देना चाहिये, क्योंकि सौ सन्तान पैदा करने के लिये एक पुरुष से ही काम चल सकता है: इसलिये निन्यानवे अगर न हों या कुवारे रहें तो भी कोई हानि नहीं है लेकिन स्त्री तो एक भी कुमारी या विधवा हो जायगी तो एक बच्चा घट जावेगा। यह कहां तक न्याय है कि जिस चीज़ की हमें अधिक ज़रूरत है वह तो व्यर्थ पड़ी रहे और जिसकी ज़रूरत हमें थोड़ी है उस की ज़्यादा क़दर की जाय। मतलब यह है कि प्रकृति ने जो स्त्री पुरुष में अन्तर उत्पन्न कर दिया है उससे भी मालूम होता है कि विधुर विवाह की अपेक्षा विधवाविवाह सौ गुना अधिक आवश्यक है।

कई सज्जन कहने लगते हैं कि विधवाएँ तो पाप कर्म के उदय से होती हैं: उन्हें अपने कर्म का उदय शान्ति से सह लेना चाहिये; विवाह करने की क्या ज़रूरत है? बहुत ठीक है, परन्तु दुःख इतना ही है कि यह सारी कर्म की फ़िलासफ़ी महिलाओं के सिर ही मढ़ दी गई है। जैसे विधवाएँ पाप

कर्म के उदय से होती हैं, उसी प्रकार क्या विधुर पाप कर्म के उदय से नहीं होते ? फिर लोगों ने जब विधुरपन मिटाने का इलाज उचित समझा है तब वैधव्य मिटाने का इलाज उचित क्यों नहीं समझा जाय। ज्ञानावरण कर्म के उदय से मनुष्य अज्ञानी होता है तब शिक्षा का प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता है। निर्बल को सबल क्यों बनाया जाता है ? हम पूछते हैं कि कर्मों के उदय को सफल बनाने का क्या विरोधियों ने ठेका ले रक्खा है ? तब तो स्त्री वेद के उदय को सफल बनाने के लिये विधवा का विवाह करना अत्यन्त आवश्यक है। ज़रा और भी विचार कीजिये। यदि असाता वेदनीय आदि के उदय को सफल बनाना आवश्यक है, तब आपके घर में यदि कोई बीमार पड़ जाय तब भूल करके भी उसका इलाज न करना चाहिये। पाप कर्म के उदय को सहकर कर्मों की निर्जरा करने का अवकाश देना चाहिये। जो लोग रोगियों की चिकित्सा करते हैं वे वैसे ही पापी हैं, जैसे विधवाविवाह के प्रचारक। अगर पाठशाला खोलने वाले, आहार दान देने वाले, औषधालय खोलने वाले, परिचर्या करने वाले तथा अन्य तरह की आपत्तियों को दूर करने वाले अच्छे हैं—पाप कर्म के उदय को भोग कर कर्मों की निर्जरा करने का अवकाश छीनने का पाप उन्हें नहीं लगता—तब विधवाविवाह के प्रचारक भी दोषी नहीं कहे जा सकते।

असली बात तो यह है कि अगर पापकर्म के उदय से मनुष्य को कोई दुःख उठाना पड़े तो उसे सहना चाहिये। परन्तु दूसरों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे पापकर्म के उदय को स्थिर रखने की कोशिश करें और उसे ज़बर्दस्ती सहन करने के लिये बाध्य करें। उस पुरुष को भी सहन करने का ढोंग नहीं करना चाहिये। आज समाज में ऐसी कितनी

विधवाएँ हैं जो स्वेच्छा से वैधव्य की वेदना को शान्तरूप से सहने को तैयार हों ? अगर ऐसी देवियां हैं तो बड़ी खुशी की बात है, अगर नहीं हैं तब तो उनसे निर्जरा की आशा नहीं की जा सकती। बल्कि दिन रात के आर्त ध्यान से वे नीच गति का ही बंध करती हैं। भ्रूण हत्या और गुप्त व्यभिचार से यह बात स्पष्ट जाहिर होती है कि विधवा विवाह की ज़रूरत है। इस प्रकार के तर्क वितर्क से यह बात साफ़ ज़ाहिर हो जाती है कि विधवा विवाह धर्म विरुद्ध नहीं हो सकता। अब ज़रा नज़ीरों पर विचार कीजिये—

देवगति में आम तौर पर विधवा विवाह चालू है। जिन देवियों का पति (देव) मर जाता है, वे अपने स्वामी के स्थान पर पैदा होने वाले देव की पत्नी हो जाती हैं। इतने पर भी उनके सम्यक्त्व और शुक्ल लेश्या में कोई अन्तर नहीं आता। न उनके जिन दर्शनादि सम्बन्धी अधिकार कोई छीनता है। यदि कहा जाय कि उनका शरीर वैक्रयिक है जो कभी अपवित्र नहीं होता, तो यह भी कहा जा सकता है कि नारियों का शरीर रक्त मांसमय औदारिक है जो कभी पवित्र नहीं रहता। चाहे वह अविवाहित रहे या एक बार विवाहित या बहु बार विवाहित। धर्म अधर्म चमड़े में रहने की वस्तु नहीं है; उसका सम्बन्ध आत्मा से है। अरे भाई ! **धर्म अधर्म तो चर्मकार भी चमड़े में नहीं ढूँढता,** फिर आप लोग क्या उससे भी गये बीते हो ? खैर ! जो कुछ हो, परन्तु इतना तो सिद्ध हुवा कि विधवाविवाह का विरोध, सम्यक्त्व (जैन धर्म) और शुक्ल लेश्या से नहीं है। अगर तिर्यञ्चगति के ऊपर नज़र डाली जाय तो हमें यह भी मानना पड़ता है कि देशविरति से भी इसका विरोध नहीं है। किन्तु

सब से बड़ी उदारता तो हमें अपने धर्म ग्रन्थों में मिलती है। कोई मनुष्य चाहे वह कितना भी व्यभिचारी या पापी रहा हो, उसे मुनि बनने का अधिकार है। कोई स्त्री चाहे वह कितनी ही व्यभिचारिणी रही हो, उसे आर्यिका बनने का अधिकार है। देखो राजा मधु का चरित्र—उसकी रखैल रानी चन्द्राभा ने आर्यिका-व्रत लिये; रुद्र की माता ज्येष्ठा एक मुनि के साथ फंस गई, लड़का पैदा हुआ बाद में वह फिर आर्यिका बन गई। प्रायश्चित शास्त्रों में भी ऐसी भ्रष्ट आर्यिकाओं तक को फिर आर्यिका की दीक्षा दे देने का विधान * है। सुदृष्टि सुनार तो व्यभिचारिणी स्त्री की सन्तान होने पर भी मोक्ष गया †। इन सब उदाहरणों से साफ़ मालूम होता है कि व्यभिचार से भी मनुष्य के अधिकार नहीं छिन सकते। फिर विधवा विवाह तो ब्रह्मचर्याणु व्रत का साधक है। उससे धर्म हानि तो कैसे हो सकती है।

यहाँ हमने खास खास बातों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। अभी तो बहुत सी बातें हैं जिनके ऊपर प्रकाश डालना है आशा है समाज के प्रसिद्ध लेखक और विद्वान इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

अन्त में हम जैन जगत आदि पत्रों के सम्पादकों से निवेदन करते हैं कि आप लोग सत्य के पथ में बढ़ करके बीच में ही क्यों रह गये ?। यह बड़े आश्चर्य की बात है

*दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ के 'धर्म और लोकाचार' शीर्षक लेख में इस बात का खुलासा प्रमाण देकर किया गया है। (लेखक)

† जिस तरह से हमारी विधवा बहिनें अत्याचारी पुरुष समाज के भय तथा अपने संकोच स्वभाव के कारण

कि आप लोग "विधवा-विवाह" सरीखे धर्मानुकूल कार्य के भी विरोधी हैं।

जैन गजट आदि पत्र के सम्पादकों से भी हम निवेदन करते हैं कि आप लोग मिथ्यात्व को छोड़ो ! धर्म का निवास स्थान न तो रूढ़ियों में है, न चमड़े में है, न कोरी वाह वाही में है, वह आत्मा में है। धर्म के लिये स्त्रियों पर अत्याचार करने की ज़रूरत नहीं है। हृदय को पत्थर बनाने की ज़रूरत नहीं है। ज़बर्दस्ती वैधव्य पलवाना सती प्रथा से भी बढ़ कर पाप है। सती प्रथा से स्त्रियों को १०-१५ मिनट जलना पड़ता था, वैधव्य से जीवन भर जलना पड़ता है। इसलिये सती प्रथा यदि मिथ्यात्व है तो ज़बर्दस्ती का वैधव्य महा मिथ्यात्व है। आप लोग मिथ्यात्व से छूटकर महामिथ्यात्व में न फँसिये, बल्कि सम्यक्त्व की ओर आइये।

समाज के उन विद्वानों से भी हम निवेदन करते हैं जिन्हें कि आजीविका की चिन्ता नहीं है—कि आप निष्पक्ष रीति से विचार कीजिये। इस बात को भूल जाइये कि लोग क्या कहेंगे। सत्य के लिये, सिर्फ़ सत्य के लिये व जैनधर्म के लिये निःपक्ष हृदय से विचार कीजिये कि धर्म क्या है। जो लोग यह कहते हैं कि विधवा विवाह की बात सुनते ही पृथ्वी क्यों नहीं फट जाती जिसमें हम समा जाते, उनसे भी हम प्रार्थना करेंगे कि पृथ्वी को फटने का निमन्त्रण देने के पहिले हृदय को फाड़िये और एकान्त में देखिये कि उसमें धर्म प्रेम है या झूठे नाम का प्रेम। यदि वह वाहवाही के लिये मर रहा

अपने हृदय के भाव ज़ुबान से खुल्लम खुल्ला प्रकट नहीं करतीं, सम्भव है उसी तरह ये पत्र भी किसी भय या लज्जा के वश सत्य के मार्ग में बढ़ते बढ़ते रुक गये हों। स० जा० प्र०

हो या और कोई ऐहिक स्वार्थ हो तो हमारी बात न सुनिये परन्तु उसमें सच्चा धर्म प्रेम हो तो जब तक पृथ्वी फटे तब तक हमारे लेख पर विचार कीजिये। विरोध करना हो तो अवश्य कीजिये; नहीं तो हिम्मत के साथ सच बोलिये।

पुरुष समाज से हम कहेंगे, कि समाज पुरुषों की ही नहीं, स्त्रियों की भी है। पापोदय की चिकित्सा पुरुषों के लिये ही नहीं,स्त्रियों के लिये भी है। रूढ़ि के लिये सत्यकी हत्या मत करो! किन्तु सत्य के लिये रूढ़ियों को मिटादो।

देवियों से यह कहेंगे कि आप आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करना चाहतीहैं तो बड़ी खुशीसे करें; हम आपके सामने सिर झुकाते हैं;किन्तु रो रो कर ब्रह्मचर्यका पालन न करें और ब्रह्म चर्य का ढोंग न करें। वैधव्य का पालन इसलिये करें कि आपको पालन करने की इच्छा है, न कि इसलिये कि समाज विधवा विवाह को बुरा समझती है। यदि आपको वैधव्य की अपेक्षा गार्हस्थ्य जीवन ही ज्यादः पसन्द है तो अपने पुन-र्विवाह के अधिकार का उपयोग करके विशुद्ध ब्रह्मचर्याणुव्रत पालन करें। धर्मज्ञान शून्य स्वार्थी निर्दय पुरुषों को कोई हक नहीं है कि जिसके पालन में वे स्वयं फिसल जाते हैं वही बात दूसरों से जबर्दस्ती पलवावें। याद रखो! वे स्वार्थी पुरुष तुम्हें मनुष्य नहीं, जूठी थाली समझते है। इसलिये तुम अपने गौरव की रक्षा करो। विश्वास रक्खो कि मनुष्य जाति की स्थिति के लिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक आवश्यक हैं।

आशा है सभी श्रेणी के व्यक्ति इस लेख पर विचार करेंगे और पक्ष में या विपक्ष में सम्मति अवश्य देंगे।

———※———

हिन्दू जाति की सामाजिक दुर्दशा
सुधारने का एक मात्र उपाय

विधवा-विवाह

समाज सुधारक माला
का
तृतिय पुष्प
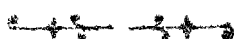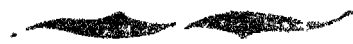
लेखक व प्रकाशक—

मोतीलाल पहाड्या, कुनाड़ी
कोटा [राजपूताना]

प्रथम बार
१०००

वि० संवत १९८

मू० पौना आना
मात्र

हिन्दू जाति की सामाजिक दुर्दशा सुधारने

का

एक मात्र उपाय—

विधवा विवाह।

इस देश में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह और कन्या-क्रय-विक्रय आदि सामाजिक कुप्रथायें भयंकर रूप धारण करती जा रही हैं। इन्हीं कुरीतियों के दारुण परिणाम स्वरूप सन् १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार इस देश में समस्त हिन्दू विधवाओं की संख्या २१२५५५५४ थीं। इनमें से केवल २५ वर्ष तक की आयु वाली विधवाएं १५३७६४४ हैं। इस संख्या में १० वर्ष से कम उम्र वाली विधवाओं की संख्या ६७८५४ है कि जिन बिचारियों को यह भी मालूम नहीं है कि सुहाग और पति किस खिलौने का नाम हुआ करता है। आज इनका सुहाग सिन्दूर धो दिया गया है और इसके साथ ही इनके नन्हें २ हाथों की चूड़ियाँ भी तोड़ दी गई हैं रंगीन वस्त्र तो इन बिचारियों को दिखाये भी नहीं जाते। पहनने के लिये फटी हुई काली साड़ी बिछाने के लिये टूटी सी खाट और खाने के लिये ठंडी बासी रोटी और २-३ रोज की बची

खुची सड़ी बुसी साग ही अब इनके भाग्य में विधाता ने लिखा है दस वर्ष से कम उम्र की विधवाओं की संख्या में ५ वर्ष से कम उम्र की १२०२४ विधवाएं ऐसी दुध मुही नन्हीं २ बच्चियां हैं जो अभी मातृस्तन के दूध का स्वाद भी नहीं भूल पाई है। आगे चलिये, इनमें से २ वर्ष तक की उम्र वाली ४९८ विधवाएं ऐसी हैं जो अभी घुटने के बलही चल सकती हैं और जो तोतली २ बोली बोलती हुई मां की अंगुली पकड़ कर भी खड़ी नहीं हो सकती हैं। कहां तक कहा जाय ? और भी जरा हृदय को थाम कर सुनिये, इनमें से ८९२ विधवाएं एक वर्ष से नीचे की उम्र वाली हैं। ये शिशु विधवाएं अभी मातृ स्तन पर ही चिपटी रहती हैं और जिनके मुंह में अभी दूध के भी दांत नहीं आये हैं। दुनियां के किसी देश में औसतन इतनी विधवाएं नहीं हैं जितनी कि इस अभागे देश में और खास कर इस हिन्दू समाज में हैं। मुश्किल से ऐसा कोई भाग्य शाली घर पाया जावेगा कि जिस में कोई विधवा नहीं हो। प्रत्येक घर विधवा आश्रम बना हुआ है। हा ! लिखते हुए हृदय टूट जाता है कि इस भारत वसुन्धरा की १५ वर्ष से नीचे उम्र की ३३०००८ हिन्दू विधवा पुत्रियां अभी अपने अपने पतियों के साथ २-४ तीज त्योहार भी नहीं व्यतीत कर सकी हैं। इन शीघ्र ही खिलने वाली कुसुम कलियों पर विधवा पन का तुषार पटक दिया गया है। इन बाइयों के सुहाग रूपी मुकुट के मणि को दुर्दैव छीन कर ले गया है। घड़ी भर पहले इनको 'सुहागन' कहा जाता था लेकिन घड़ी भर बाद ही निर्दई समाज ने इस लकब को छीन लिया; अब इनको हत्यारिनी चंडालिनी और पति भक्षका आदि नामों से पुकारा जाता है। अब मांगलिक प्रसंगों पर इन बाइयों का मुख देखना भी अपशकुन माना जाता है। इनके प्रिय वस्त्राभूषण छीन कर उन्हें फटे टूटे मैले कुचैले कपड़े पहनने को दे दिये गये हैं

हास्य विलास और तमाम मनोरंजन की सामग्रियां इनके लिये मना है। इच्छा न होते हुए भी वर्ष भर में इनको दस बीस उपवास करने पड़ते हैं। अब इनके समस्त अधिकारों का हरण हो चुका है। न तो पीहर ही में इन बिचारियों की कुछ कदर है और न सुसराल ही में इन अभागिनों की कुछ इज्जत है! मानो अब तो इन बिचारियों का जीवन कुछ जीवन ही नहीं है। घर के बाल बच्चों का पाखाना साफ करना, झाड़ू बुहारी करना, गाय भैंस बांध देना, घर भर के जूठे बरतन मांजना तथा सासु ससुर, देवर देवरानी, जेठ जेठानी, अड़ोसी पड़ोसी की गालियां और झिड़कियां सुनना और इन सबके मुआवजे में खाने को बासी रोटी और सड़ी बुसी साग पालेना मात्र ही इनका काम रह गया है। बिचारी ये दोना हीना विधवाएं अपने जीवन के समस्त आनन्द, यौवन की समस्त विभूति और हृदय की समस्त इच्छाएं सदैव के लिये समाज के मुखिया पटेल चौधरियों की क्रूर बलिवेदी पर भेंट कर चुकी हैं और आज वे अपनी दग्ध आहों से इस हिन्दू समाज को बुरे २ शाप दे रही हैं। इनमें से बहुत सी युवती विधवाएं तो बड़े २ शहरों में अपने मकानों के झरोखों में बैठ कर अपने सौन्दर्य और सतीत्व को बाजारू वस्तुओं के समान बेचने को मजबूर हुई हैं और बहुत सी विधवाएं ऐसी भी हैं जो अपने पंच परमेश्वरों और हत्यारे मां बापों को रोती हुई अपनी रात्री करवटें बदल २ कर और आकाश के तारे गिन २ कर व्यतीत कर रही हैं। सैकड़ों विधवाएं ऐसी हैं जो कई प्रकार के प्रलोभनों के वशीभूत होकर तथा अपनी कामेच्छाओं को रोक सकने में असमर्थ होने से लोक लाज के कारण दिन रात गर्भपात और भ्रूण हत्याएं करती हुई समाज को कलंकित कर रही हैं। हजारों विधवाएं जगह २ ऐसी भी हैं। जो विधर्मियों तथा अन्यान्य जातियों के घर बसा २ कर अपनी कोख से हमारी ही जड़ काटने वाली संताने पैदा कर रही हैं। सैकड़ों जगह देवर भोजाई और

ससुर बहू के बहुत बुरे २ क़िस्से भी सुनाई पड़ते हैं। यहां तक भी सुना जाता है कि कई युवती विधवा माताएं अपने दत्तक पुत्रों से अनुचित सम्बन्ध रखती हैं।

इस वृद्ध विवाह की कुरीति से देश में कन्या-क्रय-विक्रय तो बहुत ही चल पड़ा है। धनी लोग तो ५० वर्ष की उम्र तक पहुंच चुकने पर भी विवाह की इच्छा रखते हैं और अपनी इच्छा को सफल करने के लिये तीन तीन और चार चार शादियां कर चुकते हैं। पति के मरते ही विधवाओं की जो दुर्दशा होती है उसका थोड़ा सा चित्र ऊपर खींचा गया है। इसके विपरीत पत्नी के मरने पर विधुरों [रंडवों] के कारनामे भी किसी से छिपे हुये नहीं हैं। स्त्री के मरने पर श्मशान ही में सगाइयों की चरचा चलने लग जाती है। लड़की के बाप को देने के लिये थैलियों के मूंह खुल जाते हैं, अपनी उम्र कम दिखलाने के लिये रुपयों के ज़ोर से ब्राह्मण देवता जी भी नक़ली जन्म पत्रिका तैयार करने लग जाते हैं। रंडवे जी या तो अब तक दो दो महीनों में हजामत बनवाते थे लेकिन अब तो दूसरे तीसरे दिन ही उस्तरा फिराया जाता है। मूंछें भी खस खसी कराली जाती हैं ज़रूरत हुई तो बढ़िया खिज़ाब भी लगाया जाता है। क्या कहिये अब तो ज़मीन में गड़े हुये ज़ेवर भी निकाल २ कर पहने जाते हैं: गर्ज़ यह कि रंडवे साहब हर तरह से अपना रूप रंग और धन दौलत बतलाने में लगे रहते हैं और किसी न किसी तरह किसी छोटी सी बालिका से शादी करके उसके भावी सुहाग पर अपनी नीच काम वासना का खंजर झोंक ही देते हैं। प्रकृति के नियमानुसार लड़के और लड़की बराबर ही पैदा होते हैं लेकिन ऐसी दशा में जब कि एक पुरुष मरते २ भी तीसरी और चौथी शादी कर लेता है यानी एक पुरुष तीन २ और चार २ लड़कियों को अपनी अर्द्धाङ्गिनीयां बना लेता है तो उधर लड़कियों की कमी पड़ जाती है। इस तरह कुंवारे

युवकों की संख्या बढ़ती है। यह भी कोई मानने के लिये तैयार नहीं होगा कि सारे ही कुवांरे ब्रह्मचारी बन रह कर शान्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हों। अस्तु! ये लोग भी कई किस्म के पापाचार रचकर समाज में अशान्ति का बीज वपन कर रहे हैं। इस तरह समाज का पतन ही पतन नज़र आरहा है।

इस पर यदि विचार किया जावेगा तो इस पतन की समस्त ज़िम्मेदारियां इस निर्दयी पुरुष जाति के ही ऊपर है। प्रकृति का नियम है कि मनुष्य जाति के सामने जिस प्रकार का आदर्श रखा जावेगा उसी प्रकार उसके हृदय में भावों की उत्पत्ति होगी। जब कि यह निर्लज्ज पुरुष समाज अपनी ४०।४० और ५०।५० बल्कि कई मरतबा इससे भी अधिक ६०।६० वर्ष की आयुमें अपनी पाशविक कामेच्छाओं को पूर्ण करने के लिये निर्दयी होकर १०।१० और १२।१२ वर्ष की सुकुमार और अबोध बालिकाओं के साथ विवाह करके घर पर आते ही बहुत जल्द 'राती जगा' [एकान्त वास] करने में व्याकुल हुआ रहता है तो यह समझ में नहीं आता कि उसे छोटी २ उम्र में होजाने वाली बाल विधवाओं को जबरन सन्यासिनीयां बनाकर जन्म भर के लिये उनसे कठिन संयम के पालने की आशा रखने का अधिकार ही कसे हो सकता है? पवित्र नारी जाति के सामने इस निर्लज्ज पुरुष समाज का कैसा निन्दनीय और घृणित आदर्श है। घर में एक १५ २० वर्ष की युवती विधवा पुत्र बधू काली साड़ी ओढ़कर और चूड़ियां फोड़कर सन्यासिनी बनी बैठी है लेकिन ५० वर्ष के सुसरा जी थैलियों के जोर से एक १२ वर्ष की बच्ची को बन्दिनी बनाकर रंग भवन में सुहाग की रात मनाते हैं। घर में एक १० वर्ष की छोटी बहिन दुर्भाग्य से रंडापे की रात काट रही है लेकिन भौजाई के मरने पर ३०-३५ वर्ष की उम्र में बड़े दादा भाई तो तीसरी शादी कर ही लाते हैं आज तीज का त्यौहार है चमड़ी के जटक जाने पर भी पचास २

वर्ष की छोकरियां सोलह शृंगार करती हैं और दिन में छत्तीस मर्तबा कांच देख २ कर चमकीली टिकियां लगाती हैं, घांवले नेवरी की झनकार मचाती हुई इधर उधर फुदक २ कर उठती बैठती है, मेंहदी से अपने हाथ पांव रचाती हैं, मस्तक को गोटा और लैस आदि से सजाती हैं, फूलदार कांचली पहनती हैं, इत्र में सनी हुई बहुत बढ़िया पोशाक से अपने आप को सजाती हैं और रात को छत पर दस बीस स्त्रियों में बैठकर गहरे शृंगार रस के गीत गाती हैं। कुछ ही देर बाद बाजार से वृद्ध लक्कड़ पति के मिठाई लेकर आते ही वह रंगीली सजीली बुढ़िया चुपके से दड़ने दाखिल हो जाती है; लेकिन वह आकाश की पटकी और धरती की झेली हुई अभागिनी विधवा पुत्र वधू इस हिन्दू समाज को गालियां देकर फटी हुई चटाई पर जा पड़ती है। उस विचारी का समस्त सुख और समस्त आनन्द हमेशा के लिये इस संसार से उठ गया है। हा! फूंक फूंक कर पांव रखते हुये भी उसका हंस कर बोलना और भूल कर कभी २ अच्छी सी चीज़ खाने पीने या पहनने ओढ़ने के लिये मांग लेना भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। कैसा पाशविक दृष्य है।

इसमें कोई शक नहीं कि नारी जाति पर होने वाले पुरुष जाति के अत्याचार एक निष्पक्ष जज के इजलास में बिलकुल भी क्षमा करने के योग्य नहीं है। अगर वास्तव में कोई ईश्वर नाम की शक्ति इस दुनियां में है और वह शक्ति निष्पक्ष होकर स्त्री बनाम पुरुष के मुक़द्दमे को समाप्त करने में दिलचस्पी लेगी तो उसे निस्संदेह पुरुष जाति को एक दम फ़र्द जुर्म सुनाकर सख्त से सख्त सज़ा का फैसला सुनाना पड़ेगा।

विचारी विधवायें अखण्ड सन्यास की मूर्तियां बन कर अपने चारित्र को आदर्श एवं निर्मल रखती हुई चुपचाप बैठी रहना चाहती

हैं परन्तु यह पुरुष समाज इस पर भी संतुष्ट नहीं होता। वह इन देवियों को आदर्श से गिराने के लिये कई प्रकार के प्रलोभनों को साथ में लिये फिरता है। हा ! कहते हुए हृदय को बड़ा दुःख होता है कि इस पुरुष जातिने ही हमारे समाज मन्दिर को आज सब तरह से व्यभिचार और अत्याचार की कुत्सित लीलाओं का अड्डा बना रक्खा है। ऐसी हज़ारों नज़ीरें देखी गई हैं कि लोग कई प्रकार के प्रलोभनदेकर विधवाओं के साथ अपना अनुचित सम्बन्ध जोड़ कर उन के सतीत्व को नष्ट कर बैठते हैं। बिचारी भोली भाली विधवाएँ भी उनके जाल में फँस कर उन की प्रेमिकाएँ बन जाती हैं। जब संयोग से उन के गर्भ रह जाता है तो वे लोग अपने को बदनामी से बचाने के लिये पहले तो उस का गर्भ गिरवाने की कोशीश में रहते हैं और जहां तक हो सकता है दस बीस रुपया खर्च कर के उस का गर्भ पात करवा ही देते हैं। यदि कभी २ इस में वे सफल न हो सकें तो दूसरी कोशीश उनकी यह रहती है कि वह विधवा स्त्री कहीं मेरा नाम नलेदे वरना जाति बाहर होना पड़ेगा। पंचों के बुलाकर पूछने पर कोई २ स्त्रियां तो उस पुरुष पर आयन्दा अपना तथा होने वाले बच्चे का भरण पोषण होते रहने का दावा रखने के लिये अपना सच्चा हाल प्रकट कर देती हैं और कोई २ स्त्रियां इस क़दर भली मानुष होती हैं कि वह अपने प्रेमी को जाति दण्ड व लौकिक तिरस्कार से बचाने के लिये सारा अपराध अपने ही ऊपर लेकर उसका नाम प्रकट नहीं करतीं। पस वह पुरुष तो उस विधवा के गर्भ धारण होते ही उससे अब कोस भर दूर रहने लग जाता है और उससे किसी क़िस्म के दुःख सुख की पूछताछका नाम भी नहीं लेता। या तो वह पुरुष दिन में दस दस मरतबा उसके घर उसके पांव के तलवे चाटने के लिये आया करता था लेकिन अब तो वह उस गली की तरफ़ मुंह करके भी नहीं झांकता। स्त्रियां अगर सच्चा हाल प्रकट करके उस पुरुष का

नाम भी ले दें तो वह पुरुष तो जाति में बदस्तूर बना रहने के लिये कभी भी अपना अपराध स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। कुछ भी हो, जिस प्रकार दूध में से मक्खी निकाल कर बाहर फेंकदी जाती है उसी तरह वह स्त्री तो फौरन ही जाति में से सदैव के लिये निकाल दी जाती है। पुरुष मियां तो सिर्फ २-४ रोज जातिके बाहर रहते हैं। वह हजरत तो शीघ्र ही पंचों की आज्ञानुसार किसी धर्माचार्य जी की व्यवस्था लिखा लाकर तथा उसके अनुसार एक दो उपवास करके या गौमूत्रादि पीकर अथवा कहीं नजदीक की तीर्थयात्रा करके और पंचों को कुछ तरावट माल खिलाकर पीछे ही जाति में आ बैठते हैं और बदस्तूर अपना व्यवहार चलाने लगते हैं। लेकिन उस स्त्री का उद्धार करने के लिये तरन तारन कहाने वाले पंच परमेश्वरों के पास कोई नियम नहीं है। स्वार्थी पुरुष समाज ने अपने सुभीते के लिये सब कुछ नियम बना रखे हैं, लेकिन बिचारी अबला समाज की तरफ तो वह अपनी फूटी आंख से भी नहीं देखना चाहता। वह तो केवल अपनी श्वानवत् नीच काम वासना की तृप्ति के समय ही उसके सामने हाथ जोड़ खड़ा रहने को तैयार रहता है। अब वह पतिता कहीजानेवाली स्त्री जब कहीं भी रक्षा तथा उदर पालन का जरिया नहीं पाती है और न बिरादरी के लोग ही उसका उद्धार करने को तयार होते हैं तो ऐसी दशा में वह अवश्य ही अधिकाधिक गिर जाती है, वेश्या बन जाती है तथा विधर्मियों के घरों में बैठ कर अपनी गौ रक्षक कुक्षि से गौ भक्षक विधर्मी संताने पैदा करने लग जाती है। यही स्त्री अपने साथ दो चार को और भी ले जाती है और ज्यों २ उसको अवसर मिलता है त्यों त्यों वह अपना समुदाय और दम जोल बढ़ाती रहती है ऐसी एक दो नहीं, सौ दो सौ और हजार दो हज़ार नहीं, बल्कि लाखोंन जीरे हैं और सब जानते हैं। सुसराल में तो इन अभा

गिनीयों की पूंछ उसी दिन तक रहती है जब तक कि कमाई करके खिलाने वाले उनके पति देव जीवित रहते हैं। उधर पीहर में भी उनकी इज्जत उसी अवस्था तक थी जब कि उनसे शादी करने के उम्मेदवार दूर २ के बूढ़े हज़ारों की थैलियां लेल कर आया करतेथे। जहां तक ये निर्धन और बेबस बहिनें, सदाचारिणीयां बन कर समाज में बैठी रहती हैं तब तक तो यह पापी पुरुष समाज उनकी रक्षा के लिये फूटी कौड़ी भी देने को तैयार नहीं होता लेकिन जब यही विधवा बहू बेटियां व्यभिचारिणीयां हो कर और अपने सतीत्व से गिर कर वेश्यायें बन जाती हैं तो फौरन ही उनको शादी के जल्सों में बुला कर उनके लिये थैलियों का मुंह खोल दिया जाता है। बूढ़े के साथ लग्न रचाकर धर्म के सेवक बनने वाले ब्राह्मण देवता भी आजके दिन न मालुम कहां मुंह छिपाये रहते हैं। कैसा घृणास्पद व्यवहार है?

समाज सुधार का प्रश्न उठते ही धर्म के ठेकेदार धर्म की दुहाइयां देने लग जाते है। दिन रात हज़ारों हिन्दू विधवायें हिन्दू समाज में से निकल २ कर विधर्मी बन रही हैं लेकिन स्वार्थ के सांचे में ढले हुए कीड़ों ने इस खुद गरज़ी को छोड़ कर तथा अपने हृदय को चीर कर नहीं देखा। धर्म की थोथी दुहाई देने वाले धर्माचार्यों और चिकने चुपड़े बने रहने वाले सफेद पोश बुगले भक्त पापाचार्यों! इस समाज की हालत पर अब तो कुछ तरस लाओ। धर्म शास्त्रों के असूलों को पहचानो। धर्म शास्त्र तो हमेशा द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार चलने की आज्ञा देते हैं।

"समाज और जाति के मुखिया लोगो! तुम किस घोर निद्रा में सोये हो? जरा आंखें तो खोल कर देखो तुमारी जाति किस दुरावस्था को प्राप्त हो रही है। साठ २ साल के बुड्ढे बावाजी तो

पुत्र पौत्र होते हुए भी अपने काम भोग की तृष्णा को बुझाने के लिये एक सुकुमारी कन्या से विवाह कर सकते हैं। परन्तु कितना अन्याय है, कितना अत्याचार है कि समाज उन अबोध और निर्दोष बाल विधवाओं के आर्तनाद की ओर जरा भी ध्यान नहीं देता है। बुड्ढे खूसट होकर भी जब तुम्हारा चित्त विषय वासनाओं की ओर दौड़ता है तो क्या तुम समझते हो कि १५-२० वर्ष की वे अबोध तरुणियां जो अपने कुटुम्ब के अन्य सब स्त्री पुरुषों को सांसारिक भोग विलासों में नित्य आसक्त देखती हैं, अपने चंचल चित्त को क़ाबू में रख सकी हैं? क्या उनका दिल नहीं चाहता कि वे भी तुम्हारी तरह सुन्दर वस्त्राभूषणों को ग्रहण करें, स्वादिष्ट पदार्थों को खायें, और अन्य सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करें, एवं प्राकृतिक कामनाओं को यथा शक्ति तृप्त करें ?"

विधवाओं की इस दुर्दशा और हिन्दू जाति के गहरे ह्रास को देख कर देश के सुधारकों ने एक स्वर से विधवा विवाह की प्रथा को अपनाने का आदेश किया है। और वास्तव में इस मर्ज़ की यही दवा हो सकती है। लेकिन खेद है कि अभी बहुत से लोग इस प्रथा से सहमत होते हुए भी ' विधवा विवाह ' के नाम को समाज के सामने रखते हुए घबराते हैं।

प्यारे वीर, समाज सुधार को ! विधवाओं की भयंकर चीख़ ने इस जड़ आकाश को गुंजायमान कर दिया है। यदि इस समाज की रक्षा ही मंज़ूर है तो अब अपने हृदय के भावों को छिपाते रहने का समय नहीं रहा है। हिन्दुस्तान में सुधार का कार्य इसी लिये रुका हुआ है कि लोग अपने विचारों को दबाये हुये हैं, यह याद रखना कि जो अपने विचारों को दबाता है वह अपनी आत्मा का

× ' नर हो कि नर पिशाच ' शीर्षक एक हस्त पत्रक से।

खून करता है। विधवा विवाह के मिशन का काम अब बहुत जोर से चलना चाहिये। इस मिशन को क्रियात्मक बनाना पड़ेगा और अब इस प्रथा का प्रचार बहुत तेजी के साथ करना पड़ेगा अब यह विषय किसी भी तरह टाल देने योग्य नहीं रहा है। ज्यों २ इसमें ढील की जा रही है त्यों २ ही हमारे सर्व नाश का समय निकट आता जाता है। धर्म के नाम पर शेखी मारने वाले ईर्षा के पुतलों को चिल्लाने दो, खूब गालियां देने दो, गहरा विरोध करने दो लेकिन स्वयं एक वीर सुधारक की तरह अहिंसात्मक भावों के साथ अपना कार्य करते रहो। विरोध होना ही सफलता का चिन्ह है, यही तो सफलता की लहराती हुई पताका है। किसी डूबते हुए को तिराना और गिरते हुए को उठाना महापुण्य कार्य है और इसी दृष्टि बिन्दु से यह विधवा विवाह का मिशन धर्म का स्थिति करण अंग है। इसमें धर्म की प्रभावना के तत्व भरे हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य और शील ही मनुष्य के लिये धर्म का श्रेष्ठ मार्ग है। परन्तु अच्छे और बुरे की तुलना करने में अपेक्षा नय एक प्रधान वस्तु है। अतः गर्भ पात और भ्रूण हत्यायें करने तथा विधर्मियों के घर बसा २ कर अपनी कुक्षि से विधर्मी संतान पैदा करने की अपेक्षा विधवाओं के लिये विधवा विवाह एक महान उत्तम और धार्मिक कार्य है। यदि इस मिशन में पांव पीछा रखा तो इस हिन्दू समाज का मातम मनाने के लिये तैयार हो जाइये। यह खूब याद रखने की बात है कि जिस समाज ने परिस्थिति के महत्व को न समझ कर उसकी उपेक्षा की है वह इस संसार में अधिक नहीं टिक सका है। यदि यह प्रथा पहले न थी तो न सही, प्राचीन होने ही से किसी प्रथा में सर्व श्रेष्ठता नहीं आती। जो प्रथा आज प्राचीन गिनी जाती है वह एक दिन अवश्य ही नवीन थी। नये से नया परिवर्तन भी यदि बुद्धि की परीक्षा में सफल हो सकता है तो वही सर्व श्रेष्ठ है आज की नवीन, प्रथा कुछ ही समय पश्चात् प्राचीनता का रूप धारण कर लेगी

और तब फिर उसमें कोई भी बात आपत्ति जनक न होगी। अब इस विधवा विवाह के विरोध में होने वाले आक्षेपों की ओर कुछ भी ध्यान न देकर हमें अपनी शक्ति को इसके प्रचार में लगा देना चाहिये। धर्म के डूबने का बहाना लेकर चिल्लाने वाले लोग वास्तव में कुछ कार्य नहीं करते हैं और न उनको समाज सुधार के प्रश्न से ही कोई दिलचस्पी है। उनसे यह तो पूछिये कि आपने कहां २ मैदान में जाकर बूढों से कन्याओं की रक्षा की है? किन २ विधवाओं के लिये आपने मासिक वृत्तियां निकाल रखी हैं? कौन २ सी विधवाओं के लिये पंचायतों ने अन्न और कपड़े का प्रबन्ध कर रखा है? दो किरोड़ और बारह लाख हिन्दु विधवाओं के लिये कहां २ विधवा आश्रम क़ायम कर रखे हैं? बूढ़ों का ब्याह रोकने वाली कौन २ सी संस्थाओं को आपने सहायता दी है? समाज में बीस २ और पचीस २ वर्ष के हज़ारों कुंवारे युवक बिना ब्याह अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं उनकी शादी के लिये किस २ ने कितना २ प्रयत्न किया है? बूढ़ों के साथ अपनी छोटी २ कन्याओं को ब्याहने वाले माता पिताओं और छोटी २ बच्चियों के साथ ब्याह करने वाले बूढ़ों को आपने पंचायत से क्या दण्ड दिलवाया है? विवाह आदि मांगलिक प्रसंगों पर जहां बहुत सा रुपया महाव्यभिचारिणी और कुशील रचने वाली वेश्याओं का नाच गाना कराने में खर्च कर दिया जाता है वहां क्या कभी आपने दस बीस रुपया इन सदाचारिणी असहाया और दीना हीना विधवाओं के प्रति पालन में भी सहायता रूप में दिया है? पस उत्तर में मूला और बेहूदा सा जवाब मिल जाता है। परन्तु ये लोग इस विषय पर युक्ति पूर्वक विचारने को कभी तैयार नहीं होते। बल्कि ये धर्म का स्तम्भ बनाने वाले तो उलटा विधवाओं का माल चाटने और हड़पने को तैयार रहते हैं। उनके पतियों का मुक्ता चाटकर बाद में कभी भी उनकी सार सम्हाल नहीं पूछी जाती। हां, बेशक अगर उनके पास कुछ पैसा हुआ तो उसको

हड़पने के लिये गिद्ध की सी नजर लगाये रहते हैं · इनसे तो अमेरिका और युरुप के वे ईसाई अच्छे हैं जो प्रति वर्ष करोड़ों रुपया इकट्ठा करके हिन्दुस्तान में भेजते हैं . और इन निराधार विधवाओं को खाने के लिये अन्न और पहनने के लिये कपड़ा देते हैं . चाहे वे किसी उद्देश्य से ऐसा करते हों परन्तु उनके इस दया धर्म के आगे हमारे दया धर्म को बोलने के लिये कुछ गुंजायश नहीं है · बन्धुओं ! समाज की इन निरपराध विधवाओं की दुर्दशा सुधारना और इस हिन्दू जाति को ह्रास से बचाना अगर मंजूर है तो विधवा विवाह की प्रथा का स्वीकार करना पड़ेगा और जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी इसको क्रियात्मक (Practical) बनाना पड़ेगा । इस एक प्रथा के चल जाने से कई किस्म की कुप्रथाएं एक दम रुक जावेगी . कन्या-क्रय-विक्रय की कुप्रथा का नाश हो जावेगा . पचास २ वर्ष की उम्र में पहुंच कर भी अपनी तन्दुरस्ती शादी करने के योग्य बतलाने वाले बूढ़ों के लिये उनके योग्य विधवाएं मिलने लग जावेंगी तो कुंवारी कन्याओं का जीवन नष्ट नहीं होगा . विधुरों का विधवाओं से विवाह होने लग जावेगा तो कन्याओं की कमी का सवाल हल होजाने से सब सम्बन्ध योग्य होने लग जावेंगे और विचारे समाज के सांड कहाने वाले कुंवारों के घर बसने लग जावेंगे · विधवाओं का पापमय जीवन शान्ति मय हो जावेगा · कुंवारी कन्याओं का ब्याह उन्हीं के योग्य अच्छे और कुंवारे लड़कों से हो सकेगा । व्यभिचार और दुराचार, गर्भ पात और भ्रूण हत्याओं से जो यह समाज कलंकित हो रहा है वह भी रुक जावेगा . रंडवों को तीन तीन और चार चार मरतबा शादियां करने में जो बार २ बहुत रुपया खर्च करना पड़ता है, वह न करना पड़ेगा · हमारा समाज की मूल पूंजी ये विधवा रमणियां, जो हमारे अत्याचारों से घबरा कर विधर्मियों के घर बसाने को बाधित

हो जाती हैं वह बदस्तूर समाज में बनी रहेंगी . जिस हिन्दू जाति का आज तेजी से ह्रास हो रहा है उसका सौभाग्य सूर्य शीघ्र ही उदय हो जावेगा .

भला हो, समाज सुधार के कट्टर पक्षपाती, सुप्रसिद्ध समाज सुधारक शिरोमणि स्व० ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की आत्मा का कि जो बड़ी मुस्तैदी के साथ भारत सरकार से विधवा विवाह का कानून (एक्ट नं० १५ सं० १८५६ ई०) मंजूर करा गये हैं। विधवा विवाह के विरोध में, विधवा से विवाह करने वाले पुरुष को, अपना पुनर्विवाह करने वाली विधवा को तथा इस शुभ कार्य में सहायक होने वालों को कोई जातीय दण्ड नहीं दिया जा सकता। बल्कि जो पंच या मुखिया विधवा विवाह के विरोध में ऐसे लोगों को जाति बाहर कर देते हैं वे राज से दण्ड के भागी बनते हैं। मेरठ में एक विधवा विवाहके समय ब्राह्मण जातिके पटेल चौधरियों ने एक पंचायत करके लगभग डेढ़ सौ आदमियोंको एकत्रित किया और पुनर्विवाह करने वाली विधवा पुत्री के पिता पं० राधेलाल और उनके सहायक पं० घासीराम को जाति बाहर करके उनका जातीय व्यवहार बंद कर दिया। दोनों बहिष्कृत पंडितों ने स्पेशल मजिस्ट्रेट, मेरठ की अदालत में बिरादरी के पटेल चौधरियों के खिलाफ दफा ५०० ताजी रात हिन्द (Section 500, Indian penal code) के अनुसार अलग २ मुकद्दमे दायर कर दिये। लेकिन बहुत विचार के बाद स्पेशल मजिस्ट्रेट साहब ने ता० ३ सितम्बर सं० १६१८ को दोनों मुकद्दमों में फरियादियों को बिरादरी के एक मुखिया पर ३००) और दूसरे दोनों मुखियाओं पर २००) २००) रुपया जुरमाने का हुक्म दिया। जुरमाना अदा न करने की हालत में एक हजरत को चार महीने की और दूसरों को तीन २ मास की कैद का आदेश किया। अपराधियों ने स्पेशल मजिस्ट्रेट के इस फैसले से रुष्ट होकर

इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील मिस्टर सत्यचन्द्र मुकरजी की सहायता से सेशन जज, मेरठ की अदालत में अपील की लेकिन विद्वान जज ने अपने २० नवम्बर सन् १९१८ के फैसले में अदालत मातहत की तजवीज बहाल रखी। अपराधियों ने फिर हाई कोर्ट, इलाहाबाद में निगरानी के लिये प्रार्थना की, लेकिन यह निगरानी भी श्रीयुत ऑनरेबल मिस्टर टी. सी. पेगट, चीफ़ जस्टिस हाई कोर्ट इलाहाबाद ने ता० २८ मार्च सन् १९१९ को खारिज करदी। इससे साफ़ जाहिर है कि विधवा विवाह कानून से भी जायज़ है। अतः किसी को भी यह दुस्साहस न होना चाहिये कि यों ही मनमानी पंचायतें कर के किसी पुरुष को जो ऐसे शुभ कार्य में सहायक होता है, बिरादरी से बाहर करने की धमकी दे अथवा उसकी निन्दा या अपमान करे।

धन्य है, पंजाब के उस वीर समाज सुधारक वैश्य रईस सर गंगा राम अग्रवाल, राय बहादुर, के. टी. सी. आई., ई.एम.वी. ओ. को कि जिसने लाहौर में विधवा विवाह सहायक सभा स्थापित करके हिन्दू जाति को इस घोर पतन से बचाने का बोझा हाथ में लिया है। इस सभा की ओर से हिन्दुस्तान की ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और अन्यान्य जातियों में हजारों विधवा विवाह हो चुके हैं तथा बड़ी तेजी से हो रहे हैं और जगह २ प्रान्तों में विधवा विवाह के प्रचार की शाखा सभाएं भी स्थापित होती जा रही है। हमें जहां तक मालूम हुआ है, दया प्रेमी सर गंगाराम साहब ने इसके प्रचार के लिये लग भग १५-२० हजार रुपयासालाना आमदनी की अच्छी जायदाद निकाल रखी है।

अहिंसा धर्म के मानने वाले वैष्णव और जैनी भाइयों ! अब बहुत पाप हो चुका है। यदि इस पाप के अपराध से बचना चाहते हो तो अपनी २ समाज में विधवा विवाह जारी करके अपने पापों का प्रायश्चित कर डालो।

नोट:—इस ट्रैक्ट में जहां हिन्दू विधवाओं की संख्या बतलाई है उसमें सनातन धर्मी जैनी, आर्य समाजी, सिक्ख, ब्रह्मसमाजी और बौद्ध विधवाओं की संख्या भी शामिल है जो हिन्दू महासभा के नियमानुसार हिन्दू जाति ही में माने गये हैं। लेखक

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

दामोदर प्रेस, रावतपाड़ा आगरा।

जैन समाज का सौभाग्य।

विधवाओं की संख्या जिस कदर अहिंसा धर्मानुयायी जैन समाज में है उतनी हिन्दुस्तान की किसी जाति में नहीं पायी जाती। जहां सनातन धर्मियों में प्रति सैकड़ा १९.१, आर्यसमाजियों में १४.९, ब्रह्म समाजियों में १२.८, सिक्खों में १३.५ और बौद्धों में ११.५ विधवाएं है वहां जैन समाज में २५.५ विधवाएं हैं। जैन समाज के लिये यह बहुत ही सोचने की बात है। लेकिन यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के पारखी सुधारक जैनी भाइयों ने इन विधवाओं की दुर्दशा पर दया लाकर अब विधवा विवाह सहायक सभायें स्थापित करना शुरु कर दिया है। यह भी संतोष की बात है कि जैन समाज में जगह जगह इस प्रथा की आवश्यकता को अनुभव में लाने वाले वीर सुधारक पैदा होते जा रहे है। जो जैनी भाई अपने विधुर लड़के और विधवा पुत्रियों का ऐसा सम्बन्ध करना चाहे उनको नीचे लिखे पतों पर पत्र व्यवहार करना चाहिये :—

(१) श्रीयुत बाबू फूलचन्द जैन,
मंत्री, जैन विधवा विवाह सहायक सभा मोतीकटरा, आगरा (यू० पी०)

(२) श्रीयुत मास्टर चिम्मनलाल जैन, रिटायर्ड स्टेशन मास्टर
उपमंत्री, जैन बाल विधवा विवाह सहायक सभा
गली पीपलवाली, धर्मपुरा, देहली

हमारे जैनी भाइयों को चाहिये कि वे अपनी विधवा बहन बेटियों का दुःख निवारण करके उनका विवाह करादें। दुःखमय जीवन व्यतीत करने और कराने की अपेक्षा शान्तिमय जीवन व्यतीत करना और कराना ही जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त है ॥

निवेदक— **मोतीलाल पहाड़िया जैन, कुनाड़ी।**

ट्रैक्ट नं० १६ जैन जगत के इसी अङ्क का क्रोड़ पत्र

* ॐ *
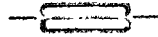
विधवा-विवाह प्रकाश

लेखक—

रघुवीरशरण जैन अमरोहा
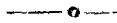
प्रकाशक—

जैन बालविधवा विवाह सहायक सभा

दरीबा कलां देहली।

प्रथमबार २००० | वीर नि० सम्वत् २४५८ | मूल्य)॥

विक्टोरिया क्रास प्रेस, दरियागंज देहली।

"विधवाविवाह" के विरोधी मित्रों से

नम्र निवेदन

मित्रो !

आप जो 'विधवाविवाह' को बुरा समझते हैं, और समाज सुधार के इस शुभ कार्य में अन्तराय डालकर व्यर्थ पाप के भागी बनते हैं-इसका मुझे अत्यन्त से अधिक दुःख है।

क्या आप मुझे आज्ञा देंगे कि......

मैं आपको 'विधवाविवाह' का कुछ रहस्य दिखलाऊं ?

यदि हां तो लीजिये—

मैं आपके चरणकमलों में यह **"विधवाविवाह प्रकाश"** नामक ट्रैक्ट भेंट करता हूँ। साथ ही निवेदन है कि आप इस पर ठण्डे दिल से विचार करें। मुझे आशा है कि इस पर निष्पक्षता से विचार करने पर आपको "विधवा विवाह" का कुछ रहस्य झलक जायगा और आप अपने को हितमार्ग पर लगा कर अपना कल्याण करेंगे। भावना है कि आपका कल्याण हो।

—लेखक,

॥ ॐ ॥

विधवा विवाह-प्रकाश

यह बात सर्व पर प्रगट है कि आजकल "विधवाविवाह" की चर्चा देशव्यापी होती जा रही है। एक समय वह था जब कि लोग "विधवा विवाह" को महा पातक समझते थे, और इसके नाम मात्र से कांपते थे; परन्तु अब वह समय नहीं रहा है, सब इसकी आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं, यहां तक कि सुधार मार्गमें सबसे पीछे रहने वाले सनातन धर्मी व जैन धर्मी बड़े बड़े विद्वान व नेता भी इसके प्रचार में तन मन धन से अग्रसर हैं।

जैनसमाज में भी कुछ समय से यह चर्चा चल रही है। कतिपय रूढ़िदास इसका विरोध करते हैं और इसके समर्थकों व प्रचारकों को कोस २ कर समाज को भड़काने का प्रयत्न करते हैं; परन्तु उनका विरोध सभ्य और शिक्षित समाज की दृष्टि में कुछ मूल्य नहीं रखता। दुर्भाग्य से वे अभी तक मिथ्यात्व के उदय से "विधवा विवाह" के रहस्य को नहीं समझ पाये हैं, वे रूढ़ियों को ही धर्म मान बैठे हैं यही कारण है कि वे "विधवा विवाह" को पाप कह कर व्यर्थ ही पाप के भागी बनते हैं।... खैर ? सौभाग्य से जैनसमाज को "सनातन जैन (वर्धा) व" "जैन जगत (अजमेर)" पत्रों का दर्शन होता रहता है जिनमें पूज्य ब्र०शीतलप्रसाद जी व साहित्य

लिख रहा हूँ। बड़े २ विद्वानों के बीच में मुझ जैसे क्षुद्र व्यक्ति का पड़ना धृष्टता ही है, परन्तु क्या किया जाय, समय ऐसा आगया है कि चुप्पी साधना भी एक बड़े साहस का काम है।

मैं विद्वान नहीं हूँ, परन्तु थोड़ा सा अवश्य पढ़ा हुआ हूँ। सत्य का पुजारी हूँ. जो बात बुद्धि की कसौटी पर ठीक उतरती है उसे अपनाता हूँ। मैं अपने में गलतियों का होना स्वीकार करता हूँ, परन्तु जबतक वह गलती संयुक्ति रीतिसे मेरे सामने न लाई जाय, तब तक मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता। धमकियों, प्रलोभनों सामाजिकदंड व सभाओं के कारण अपनी बात को, जिसे मैं सत्य समझता हूँ, वापिस लेना मेरी शक्ति से बाहर है।

पाठकों से सप्रेम निवेदन है कि वे मेरे लेख पर शांति से विचार करें और असत्य को तिलांजली देकर सत्यको अपनावें।

१. विधवा विवाह व्यभिचार नहीं है।

हमारे विरोधी मित्र "विधवा विवाह" को व्यभिचार बतलाते हैं, वे कहते हैं कि "विधवा विवाह" से व्यभिचार की निवृत्ति नहीं होसकती। यहां मैं पहिले यही विचार करूँगा कि उनका यह कहना कहां तक सत्य है?

व्यभिचार का लक्षण शास्त्रकारों ने यह बतलाया है:—

'निजं विहाय परेणत्याकं भोगत्त्वं व्यभिचारत्त्वं'

अर्थात—"अपने पति को छोड़ कर अन्य के साथ विषय सेवन करना व्यभिचार है।"

जिसके साथ नियमानुसार विवाह हुआ हो वही स्वपुरुष या स्वस्त्री है। और जिसके साथ नियमानुसार विवाह न हुआ हो वही परपुरुष या परस्त्री है।

रत्न पं० दरबारीलाल जी "विधवा विवाह" पर प्रकाश डालते रहते हैं; परन्तु फिर भी जैनसमाजमें "विधवाविवाह" के विरोधी लोग मौजूद हैं, इस बातका मुझे अत्यन्त आश्चर्य व खेद है। निमित्त तो प्रबल है परन्तु ज्ञानावर्णीय कर्म के पर्दे ने उनकी ज्ञान-शक्ति को इतना हीन बना दिया है कि वे उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सके हैं! खेद! महा खेद!!

"विधवा विवाह" के विरोधियों को इसका नाम मात्र भयंकर है। उनके लिये "विधवाविवाह" ठीक ऐसा ही है जैसा कि गीदड़ के लिये सिंह। उनही में के एक प्रतिष्ठित महाशय "विधवा विवाह" पर अपने लिखित व्याख्यान के प्रारम्भ में निम्नलिखित शब्द कहते हैं, जिनसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि आपको "विधवा विवाह" कितना भयंकर है:—

"सज्जनो! आज जिस विषय में सभापति महोदय ने मुझको व्याख्यान देने की आज्ञा दी है-उस शब्द के नाम मात्र से मुझे अत्यन्त ग्लानि और पाप होने की सम्भावना है, परन्तु आज्ञा का उलंघन मेरी शक्ति से बाहर है............।"

आप कहते हैं इस "विधवाविवाह" के नाम मात्र से पाप होने की सम्भावना है" वाहरी बुद्धिमत्ता (?) तेरी इस अपूर्व गूढ़ फिलासफी (philosophy) को समझने में बड़े बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि भी बेकाम है। पाठक आपकी इस अद्भुत फिलासफी पर विचार तो करें।

मेरी राय में "विधवा विवाह" पाप नहीं है। इससे धर्म में कोई रुकावट व हानि नहीं हो सकती, और वर्तमान अवस्था को देखते हुए तो यह 'अत्यन्त से अधिक आवश्यक है। मैं इस लेख में "विधवा विवाह" पर ही विचार करूँगा। मैं पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ कि यह लेख उच्छृंखलता से या किसी समाज व दल को नीचा दिखाने के लिये नहीं

इससे ज्ञात होता है कि विवाह से दो परपुरुष व परस्त्री, स्वपुरुष व स्वस्त्री होजाते हैं। यदि वे विवाह से पहिले विषय सेवन करें तो यह, उनका व्यभिचार होगा; परन्तु यदि वे ही विवाह के पश्चात विषय सेवन करें तो यह, उनका व्यभिचार नहीं होगा। इस तरह विवाह, व्यभिचार दोष को अपहरण करने का "अव्यर्थ" साधन है।

जो कुमारी आज परस्त्री है, और जो पुरुष आज परपुरुष है, वे ही विवाह होजाने पर स्वपुरुष व स्वस्त्री होजाते हैं, तब जो विधवा आज परस्त्री है और जो पुरुष आज परपुरुष है, वे विवाह के बाद स्वपुरुष व स्वस्त्री क्यों नहीं हो सकते? जबकि विवाह में व्यभिचार दोष के अपहरण की शक्ति है और कुमारियों के विषयमें इसका प्रयोग किया जाता है, तो इसका प्रयोग विधवाओं के विषय में क्यों नहीं किया जा सकता? और भी देखिए—

पूज्य जैनाचार्य श्री स्वामी अकलंक देव ने 'राजवार्तिक' में विवाह का लक्षण इस प्रकार बतलाया है:—

"सद्वेद्य चारित्र मोहोदयाद्विवहनं विवाह"

अर्थात—"सातावेदनीय और चारित्र मोह के उदय से स्त्री पुरुष का एक दूसरे को स्वीकार करना विवाह है"—

विवाह का हो जाना साता वेदनीय का फल है; क्योंकि इससे असन्तोषी को संतोष हो जाता है; परन्तु विवाह करने की तीव्र इच्छा चारित्र मोह के उदय से होती है। वेद नाम नोकषाय, काम भावना का प्रेरक है। इस कषाय के उदय का जोर प्रत्येक स्त्री पुरुष को हुआ करता है। बस! जिस प्रकार

* 'विधवा' शब्द का अर्थ है 'विगतो धवो यस्य:—अर्थात जिसका धव (पुरुष) दूर होगया (मर गया) हो।

कुमारी का सातावेदनीय व चारित्र के उदय से विवाह हो सकता है, उसी प्रकार विधवा का भी, जिसमें चारित्र-मोहके उदय से काम की तीव्र इच्छा धधक रही है, विवाह हो सकता है।

इस प्रकार हमारे विरोधी मित्र यह आलाप अलापते हैं कि जब स्त्री ने एक पति बना लिया, तब वह फिर दूसरा पति कैसे बना सकती है?

इसके उत्तर में यह कहना ही काफी है कि जब पुरुष एक २ दो २ पत्नियां होने पर भी दूसरी पत्नि बना लेता है तो फिर स्त्री विधवा होने पर भी अर्थात कोई पति न रखते हुए भी दूसरा पति क्यों नहीं बना सकती? यदि यह हट किया जाय कि विधवाओं को तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिए—चाहे वे रो २ कर पालें, चाहे खुशी से पालें—तो यह विशुद्ध अत्याचार है। यदि किसी मनुष्य में अनुपान त्याग करने की शक्ति नहीं है, फिर भी उसको यह आज्ञा करना कि तुम्हें तो उपवास करना पड़ेगा—चाहे रो २ कर करो, चाहे राजी से करो, तो उसके लिये यह व्रत नहीं, दंड है। व्रत वही कहलाता है जो इच्छा या रुचि पूर्वक अपनी शक्तिअनुसार धारण किया जाए। अतः विधवाओं से, उनमें शक्ति न होते हुए भी जबरदस्ती वैधव्य पलवाना उनके लिये व्रत नहीं, बल्कि दंड है। मैं विरोधी मित्रों से पूछता हूँ कि यह दंड किस अपराध पर उन्हें दिया जाता है? क्या 'विधवा हो जाना' ही उनका अपराध है। हमें ऐसा कोई कारण व अधिकार नहीं है कि हम उनसे जबरदस्ती वैधव्य पलवाएं।

हमारे विरोधी मित्र यह भी आक्षेप करते हैं कि "सर्वार्थ सिद्धि" में "कन्यादानं विवाहः" ऐसा कथन आया है। इसके अनुसार विधवा का विवाह कैसे हो सकता है? अतः विधवा विवाह व्यभिचार है?

यह जो "सर्वार्थ सिद्धि" में ऐसा कथन आया है, सामान्य रूप से है; क्योंकि प्रचार में जब कभी विवाह का विचार आता है, उस समय कुमार व कुमारी को ही संयोग आदर्श माना जाता है, इसी भाव से "सर्वार्थ सिद्धि" में ऐसा कथन आया है।

"कन्यादानंविवाहः इसमें दान का अर्थ रुपये पैसे देने के समान नहीं है; किन्तु 'माता पिता द्वारा किसी योग्यवर के सुपुर्द कन्या का किया जाना है' ऐसा अर्थ है। जिसे लोग प्रचार में कन्यादान कहते हैं, वह वास्तव में विवाह है जो योग्य वर के साथ किया जाता है।

यदि कन्या दान को वस्तु दान के समान माना जाय, तो वह जो कन्यादान पाता है, उसी कन्या को किसी दूसरे को देसकता है। क्या यह हमारे विरोधी मित्रों को इष्ट होगा ?

यदि "कन्यादानं विवाहः" के 'कन्या' शब्द पर सूक्ष्मता से विचार किया जाय, तो नया ही रहस्य दीखता है। 'कन्या' शब्द का अर्थ केवल 'कुमारी ही नहीं है बल्कि साधारण स्त्री भी है।

देखिये—श्री वामन शिवराम आपटे अपने संस्कृत-अंग्रेजी कोष में पृष्ठ ३३३ के दूसरे कालम में कन्या शब्द के कई अर्थ देते हैं:—

१—An unmarried girl or daughter (एक अविवाहिता लड़की या पुत्री)

A girl ten years old. (दस वर्ष की लड़की)

A virgin, maiden. (अक्षत योनि, या, अविवाहिता)

A woman in general. (एक साधारण स्त्री)

नीचे लिखे श्लोक में भी 'कन्या' शब्द साधारण स्त्री के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है:—

अहल्या, द्रोपदी, तारा, कुंती मन्दोदरी, तथा।
पंचकन्याः स्मरेन्नित्यँ महापातक नाशनम्॥

यहां पांचों स्त्रियां विवाहिता तथा क्षत योनि थीं, फिर भी उन्हें 'कन्या' कहा गया है।

"पद्म पुराण में सुग्रीवकी स्त्री सुतारा को उस समय कन्या कहा गया है जब कि वह दो बच्चों की मां होगई थी।

"केनो पायेन तांकन्यां लप्सये निवृत्तिदायिनी।"

जरा विचार कीजिये कि जब दो बच्चों की मां को कन्या कहा है तो फिर विधवा को क्यों नहीं कहा जा सकता? जिस प्रकार विवाह में कुमारी कन्या दी जा सकती है उसी प्रकार विधवा कन्या भी दी जा सकती है; और यही विवाह है, न कि व्यभिचार।

और भी देखिये—

विधवा जब विवाह करती है, तब यह प्रगट रूप से करती है, गुप्त रूप से नहीं करती। जब इसमें किसी प्रकार का गुप्तपना नहीं, न किसी प्रकार का भय, तब यह कार्य कभी भी व्यभिचार नहीं कहा सकता क्यों कि व्यभिचार में भय व लज्जा पाई जाती है।

व्यभिचार एक जुर्म है जिसकी सजा गवर्नमेंट (Government) से मिलती है। यदि "विधवा विवाह" व्यभिचार होता तो यह भी एक जुर्म होता और गवर्नमेन्ट इस पर सजा लगाती, परन्तु गवर्नमेन्ट का कोई कानून (law) ऐसा नहीं जिससे "विधवा विवाह" करने व कराने वालों को सजा दी जाय। इससे स्पष्ट है कि "विधवा विवाह" व्यभिचार नहीं है। यदि यह व्यभिचार होता तो गवर्नमेन्ट इसको जुर्म करार देती।

अतः सिद्ध होगया कि "विधवा विवाह" व्यभिचार नहीं है। यह कहना, कि "विधवा विवाह" से व्यभिचार की निवृत्ति नहीं हो सकती, ऐसा ही कृत्य है जैसा कि यह कहना कि सूर्य से अन्धकार का विनाश नहीं हो सकता, सत्य है! "विधवाविवाह" का आशय विधवा को इत्वरिका व व्यभिचारिणी होने से बचाना है उसको गृहस्थ श्राविका के अणुव्रत में रखकर उसका स्थिति करण करना है।

विधवा का विवाह करके उसको गृहस्थ श्राविका के अणुव्रत में रखकर उसका स्थिति करण करना किसी प्रकार भी व्यभिचार नहीं कहा जा सकता। विधवा को जबरदस्ती वैधव्य पलवाना व्यभिचार है। हमारे विरोधी मित्र इससे बचे हुये नहीं हैं। वे "विधवा विवाह" का विरोध करके बेचारी असमर्थ विधवाओंसे जबरदस्ती वैधव्य पलवाकर उन्हें व्यभिचारिणी बना देते हैं, जो कि 'व्यभिचार' से भी बढ़कर व्यभिचार है। बस! यदि हम "विधवाविवाह" के विरोधियों को " कहें तो कुछ भी अयुक्ति न होगी।

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात हुआ कि "विधवा विवाह" और "व्यभिचार" में केवल इतना ही अन्तर है जितना अन्तर "ब्रह्मचर्य" व "व्यभिचार" में है अर्थात "विधवाविवाह" इतना ही बड़ा व्यभिचार (पाप) है जितना बड़ा व्यभिचार "कुमारी-विवाह" है।

२. क्या कारण है कि पुराणों में "विधवाविवाह" का उल्लेख नहीं मिलता।

"विधवा विवाह" पर हमारे कूपमण्डूक मित्र यह आक्षेप भी करते हैं कि "शास्त्रों में कुमारी विवाहका तो वर्णन आता

है, परन्तु "विधवा विवाह" का वर्णन कहीं नहीं मिलता फिर इसे धर्मानुकूल कैसे कहा जा सकता।"

शास्त्रों में यदि "विधवा विवाह" का उल्लेख नहीं मिलता तो यह कैसे कहा जासकता है कि "विधवा विवाह" धर्म विरुद्ध है। उसकी घटना का शास्त्रों में न होना उसकी असिद्धता प्रगट नहीं करता पुराणों व शास्त्रों में वही घटनाएँ उल्लिखित हैं जो कुछ महत्व (importance) रखती हैं। जहां भी कुमारी विवाह का वर्णन आया है। वहां कोई महत्व पूर्ण (important) घटना अवश्य है "विधवा विवाह" में कोई महत्व पूर्ण घटना की 'सम्भावना' नहीं थी, अथवा कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई, इसलिये उसका उल्लेख भी नहीं हुआ। यदि उसमें कोई महत्व पूर्णघटना होती तो इसका उल्लेख भी शास्त्रकार करते।

घटनाएँ अच्छी भी होती हैं, और बुरी भी। शास्त्रों व पुराणों में दोनों प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। शास्त्रकारों ने जहां अच्छी घटना का वर्णन किया है वहां उसका अच्छा फल भी दर्शाया है; और जहां किसी बुरी घटना (पाप) का वर्णन किया है वहां उसका बुरा फल दिखलाया है। बुरे कार्यों की निन्दा और उनका बुरा फल दिखाने के लिये यह चित्रण हुआ है। जहां शास्त्रकारों ने पर स्त्री हरण. वेश्या सेवन आदि अनेक कुकार्यों का वर्णन किया है, वहां 'विधवा विवाह" का जरा भी वर्णन नहीं किया। यदि "विधवा विवाह" पाप होता तो शास्त्रकारों ने जहां अनेक पापों का वर्णन करके उनकी निन्दा की है। वहां कम से कम एक बार तो इसका वर्णन करके इसकी निन्दा करते। मालूम हुआ कि "विधवा विवाह" का पुराणों में उल्लेख न मिलना इसकी बुराई को प्रकट नहीं करता बल्कि इसकी भलाई व साधारणता को प्रगट करता है।

यदि शास्त्रों में "विधवा विवाह" का निषेध रूप मे वर्णन आता तब यह बात कुछ विचारणीय हो जाती और इसको युक्ति व प्रमाण से बुद्धि की कसौटी तर्क वितर्क से परखा जाता और सत्य असत्य का निर्णय किया जाता, परन्तु शास्त्रों में कहीं भी "विधवा विवाह" निषेध नहीं है।

३. 'विधवा' और 'विवाह' ये दो शब्द कहां तक असंगत है ?

हमारे विरोधी मित्र 'विधवा' और 'विवाह' इन दोनों शब्दों को असंगत बतलाते हैं। यदि यह दोनों शब्द असंगत मान भी लिये जायें तब भी 'विधवा विवाह' पाप कैसे ठहर सकता है! बात यह है कि जब इन दोनों शब्दों का परस्पर मेल होजाता है इनके छहों अक्षरों के एक समूह मे वे बेचारे छक्के भूल जाते हैं, इसलिये वे इन दोनों शब्दों को असंगत कहने लगते हैं। खैर.........!

अधिकतर सुनने में आता है कि अमुक विधवा व्यभिचारिणी हो गई, अमुक विधवा के गर्भ रह गया, अमुक विधवा मुसलमान या ईसाई बन गई, अमुक विधवा वेश्या बन गई, इत्यादि २......। विचार कीजिये, कि यदि 'विधवा और 'विवाह' यह दो शब्द असंगत हैं, तो 'विधवा' और 'व्यभिचार', अथवा 'विधवा' और 'गर्भ' ये तो इनसे भी अधिक असंगत हैं। विधवा के धव नहीं होता और बिना धव (पुरुष) के गर्भ नहीं रहसकता इसलिये जब कोई विधवा स्त्री

१ २ ३ ४ ५ ६
* 'विधवा' x 'विवाह'="विधवा विवाह"

गर्भवती होगई तो वह सधवा हो चुकी इसमें कुछ संदेह नहीं। जब 'विधवा' और 'गर्भ' इन दो शब्दों को प्रकृत्ति सङ्गत बनाती है तो फिर 'विधवा' और विवाह इन दो शब्दों का सङ्गत होना कितनी बड़ी बात है ?

४. "विधवाविवाह" से शरीर की विशुद्धि नष्ट हो जायेगी"

इस पर विचार:—

हमारे विरोधी मित्र "विधवा विवाह" पर यह भी आक्षेप करते हैं कि "विधवा विवाह से शरीर की विशुद्धि नष्ट हो जायेगी।"

इससे मालूम होता है कि वे शरीर को विशुद्ध मानते हैं। दुःख है कि हमारे मित्र इन छोटी २ बातों में बड़ी २ गलतियां कर बैठते हैं, नहीं तो वे अपवित्र शरीर को विशुद्ध कभी नहीं कहते। शरीरके विषय में यह हर कोई जानता है:—

"पलरुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तें मैली।
नव द्वार बहें घिनकारी, अस देह करे किम यारी॥"

ऐसी अपवित्र देह को जो विशुद्ध बतलाते हैं, उनकी बुद्धि पर हंसी आती है। उनकी आंखों व बुद्धि की तीव्रता पर पाठक ज़रा विचार तो करें ?

५. "स्त्री" "पुरुष" में भोज्य भोजक सम्बन्ध नहीं है।

हमारे विरोधी मित्र यह आक्षेप भी करते हैं कि जिस प्रकार एक मनुष्य अनेक थालियों में भोजन कर सकता है, लेकिन एक थाली में कई पुरुष भोजन नहीं कर सकते, उसी

प्रकार एक पुरुष अनेक स्त्रियों का सेवन कर सकता है, लेकिन अनेक पुरुष एक स्त्री का सेवन नहीं कर सकते क्योंकि स्त्री पुरुष में भोज्य भोजक सम्बन्ध है।

भोग के काम में स्त्री पुरुष दोनों को सुख होता है, यदि उनमें उपरोक्त सम्बन्ध होता तो स्त्री (भोज्य) को सुख नहीं होना चाहिये था, अर्थात् पुरुष (भोजक) को ही सुख होना चाहिये था, लेकिन यहां स्त्री पुरुष दोनों को सुख होता है। इसलिये मालूम हुआ कि स्त्री पुरुष में भोज्य भोजक सम्बन्ध नहीं है।

हमें इस बात का अत्यन्त खेद है कि हमारे विरोधी मित्र इतनी सरल बातों में, जिनमें युक्ति व प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है गलती कर जाते हैं खैर.........!

यदि 'दुर्जनतोष न्याय' से स्त्री पुरुष में भोज्य भोजक सम्बन्ध मान भी लिया जाय तब भी "विधवा विवाह" में इससे कोई विरोध नहीं आता। क्यों कि जिस प्रकार थाली को मांझ धोकर साफ कर लिया जाता है। और उसमें दूसरा पुरुष भोजन कर सकता है, उसी प्रकार 'मासिक-धर्म' के बाद स्त्री दूसरे पुरुष के काम में लाई जा सकती है।"

६. अद्भुत न्याय !

हमारे विरोधी मित्र विधवाओं के विवाह का तो खूब विरोध करते हैं, परन्तु विधुरों के विवाह का समर्थन करते हैं। वाह ! वाह !! क्या अच्छा न्याय है।

जब कि पुरुष पत्नि रखते हुये भी दूसरी पत्नि बना लेता है, तो विधवा पति न रहते हुये भी दूसरा पति क्यों नहीं बना सकती समझ में नहीं आता कि विधुरों का विवाह तो हो जाय। परन्तु विधवाका न हो ! विधुरों को यह रियायत क्यों ? स्त्रियों के लिये तो पुरुषों से भी जियादा रियायत

होनी चाहिये क्योंकि स्त्रियों में पुरुष की अपेक्षा काम की तीव्रता कई गुनी होती है।

जब हम देखते हैं कि "विधवा विवाह" के विरोधी विधुर हो जाने पर बुढ़ापे में भी अपना दूसरा विवाह कर लेते हैं, परन्तु बाल व युवान विधवाओं का विवाह नहीं होने देते हैं तो हमें उनकी इस करतूत पर बहुत क्रोध आता है और दिल में आता है कि.........।'

७. वर्तमान अवस्था में

"विधवा विवाह" की आवश्यकता

वर्तमान अवस्था में "विधवाविवाह" 'अत्यन्त' से अधिक आवश्यक है हमारे रूढ़ि प्रेमी मित्रों की कृपा (?) से बाल विवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह आदि अनेक कुप्रथाओं ने अड्डा जमा रक्खा है जिसके कारण आज समाज में हजारों की संख्या में विधवाएँ पाई जाती है उनका जीवन भी उनकी दया (?) से दयनीय बन रहा है।

बहुत से मित्र यह कहते है कि "कुप्रथाओं से विधवाएँ बनती हैं, इसलिये सबसे पहिले इन कुप्रथाओं को रोकना चाहिये. जब कुप्रथाएँ नष्ट हो जायेंगी, तब विधवाएँ भी न बनेंगी। इसलिये "विधवा विवाह" के प्रचार को बन्द रखकर इन कुप्रथाओंको नष्ट करने में अपनी शक्ति लगानी चाहिये।"

यदि मान लीजिये कि इन कुप्रथाओं का आज ही अभाव हो जाय तो वर्तमान समय हजारों विधवाओं को उससे क्या लाभ होगा। उनका जीवन तो संकट मय ही रहेगा उनका जीवन अभी सुखी बन सकता है जब कि उनका विवाह किया जाय। इसलिये कुप्रथाओ को बन्द करने के साथ "विधवाविवाह" प्रचार भी आवश्यक ठहरता है।

कुप्रथाओं का सर्वदा अभाव होने जाने पर भी विधवाएँ बन्द नहीं हो सकती--चाहे वह अल्प संख्या में ही बनें—इस लिये उन विधवाओं के विवाह की भी आवश्यता रहेगी अत. "विधवाविवाह" का प्रचार किस तरह बन्द किया जासकता है।

कुप्रथाओं को रोकने के साथ साथ "विधवाविवाह" का प्रचार भी अत्यन्त आवश्यक है, क्यों कि कुप्रथाओं के बन्द होने से विधवाएँ बहुत थोड़ी बनेंगी और विधवाविवाह से उनका जीवन सुखी बन सकेगा।

उपरोक्त विवेचन से मालूम हुआ कि बिना विधवाविवाह के कुप्रथाओं का अभाव भी अधिक लाभदायक नहीं हो सकता जो दोष 'विधवाविवाह' से अपहरण हो सकता है वह कुप्रथाओं के अभाव से सर्वथा दूर नहीं हो सकता।

हम चाहते हैं कि तमाम कुप्रथाओं का शीघ्र सर्वथा अभाव हो जाय, परन्तु मित्रों ! "विधवाविवाह" की आवश्यकता हर समय है। संवर के साथ साथ निर्जरा न हो तो कैसे काम चल सकता है ?

❀ अंतिम निवेदन ❀

अब मैं अपना लेख समाप्त करता हूं। मैंने यहां "विधवा विवाह" की खास खास बातों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। आशा है कि बड़े २ विद्वान इस विषय पर प्रकाश डाल कर साधारण समाज का भ्रम दूर करेंगे। मैं समझता हूँ कि बुद्धिमान् मनुष्य के लिये इतना ही लेख बहुत काफी होगा, क्योंकि बुद्धिमान् के लिये इशारा ही काफी होता है। जैसा शेखसादी* ने कहा भी है "अक्लमदांरा इशारा काफीस्त" अर्थात्—बुद्धिमान् के लिये संकेत काफी है।"

* यह फारसी के बड़े उत्तम कवि हो चुके हैं।

मैं अपने मित्रों से निवेदन करता हूँ कि आप अपने हृदय से इस मिथ्या वासना को कि "विधवा विवाह" धर्म विरुध है, दूर कर दीजिये। यदि आप निष्पक्ष रीति से विचार करें तो आपको अपनी गलती ज्ञात हो जायगी। आपको चाहिये कि आप सत्य के कहने में निर्भय बनें। इस बात का भ्रम छोड़ दीजिये कि इसका फल क्या होगा? सत्य बात के लिए यदि जीवन भी न्योछावर हो जाय तो भी कुछ चिन्ता मत करो। सच्चा वीर वही होता है जो सत्य बात के कहने में कुछ भी नहीं भय खाता। यदि उसको सत्य बात पर जान भी देनी पड़े, तो वह वीरता से हंसते हुए जान पर खेल जाता है। सच्ची बात के कहने में डरना या संकोच करना महा पाप है। जो मनुष्य हठ पूर्वक अपनी झूठी बात पर जमा रहता है और सत्य को ग्रहण नहीं करता, वही नीच है। आपको मिथ्यात्व छोड़ कर सम्यक्त्व की ओर आना चाहिये, क्योंकि यही हित का मार्ग है। झूठी बात पर डटे रहना बुद्धिमानी नहीं है। "धर्म डूबा" "धर्म डूबा" की आवाज लगा कर व्यर्थ ही अपनी जिव्हा को न थकाइये। धर्म न तो रुढ़ियों में है, न रक्त मांस में, न हड्डी में, न कोरी 'अहा—हू हू' में, न कोरी 'धर्म डूबा २' में, वह आत्मा में है। पेट के लिये ढोंग बना कर अपनी आतमा का घात न कीजिये सुधारकों को बुरा कह २ कर साधारण समाज को धोके में न डालिये। विधवाओं पर अत्याचार करना छोड़ दीजिये उनका विवाह करने से ही उनका जीवन सुखी बन सकता है और वे व्यभिचार से बच सकती हैं, इसलिये आप "विधवा विवाह" का विरोध छोड़ कर इसके प्रचार में जुट कर अपनी सत्यता, वीरता, निर्भयता तथा मनुष्यता का प्रमाण दीजिये। स्त्रियों पर अत्याचार करना महाअनर्थ है, विधवाओं से जबरदस्ती वैधव्य पलवाना महा अत्याचार है। यह महा अत्याचार सती प्रथा

से बढ़कर पाप है; क्योंकि सती प्रथा में स्त्री को थोड़े समय ही जलना पड़ता है, परन्तु वैधव्य मे उन्हें जीवन भर जलना पड़ता है। प्रिय मित्रों ! 'रूढ़ियों' के लिये 'सत्य' का गला मत घोंटो, किन्तु 'सत्य' के लिये 'रूढ़ियों' का गला घोंट डालो।

मैं समस्त जैन समाज से भी निवेदन करूँगा कि वह 'विधवा विवाह' को अपनायें, क्योंकि "विधवा विवाह" के प्रचार के बिना जैनियों की उन्नति असम्भव है जैन समाज "विधवा-विवाह" से बहुत दूर है यही कारण है कि संसार की अन्य समस्त जातियों में यह सब से गिरी हुई जाति गिनी जाती है। जैनसमाज को "विधवा विवाह" के प्रकाश की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि वह इसके प्रचार में जुट कर अपने को उन्नत बनायें, अतः विद्वानों को चाहिये कि वे इस पर प्रकाश डालें।

आशा है कि पाठकगण इस लेख पर ठंडे दिल से निष्पक्ष विचार करने का कष्ट उठायेंगे और इस पर अपनी सम्मति अवश्य देंगे। जो महाशय मेरे लेख से सहमत न हों, वे इसके विरुद्ध अवश्य लिखें। मैं उनके लेख पर शान्ति से विचार करूँगा, क्योंकि मेरा आशय किसी बात पर हठ पूर्वक जमा रहना नहीं है। मेरी नीति तो यह है:—

न पर खण्डन से कुछ मतलब न मण्डन मुद्दआ अपना।
सतासत निर्णय करते हैं, करायें जिसका जी चाहे॥

धन्यवाद

इस ट्रैक्ट के छपवाने में निम्न लिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की है, जिनको सभा हार्दिक धन्यवाद देती है और साथ ही समाज के अन्य स्त्री पुरुषों से निवेदन करती है कि वे भी निम्न श्रीमानों का अनुकरण करके अपनी दुखिया बहिनों पर तरस खाकर इसी प्रकार सहायता प्रदान करने की उदारता दिखावें:—

१०) लाला बिशम्बरदास बज़ाज जैन जगाधरी

५) लाला जुगलकिशोर जैन बहादरगढ़

४) गुप्तदान अमरोहा

२) लाला मूलचन्द अमरोहा

२) लाला रघुबीर सरण अमरोहा

२) लाला मंगतराम जैन स्यादवादी देहली।

---

२५)
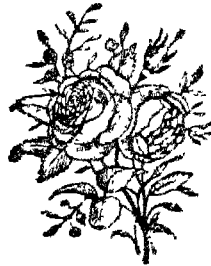
❀ अन्य उपयोगी और क्रांतिकारी पुस्तकें ❀

		मूल्य
१	शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण—लेखक श्रीमान पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार	)॥
२	विवाह क्षेत्र प्रकाश „ „	|=)
३	जैन जातिसुदशा प्रवर्त्तक ले० श्री० बाबू सूरजभान जी	‒)
४	मंगला देवी „ „ „ „	‒)
५	कुमारी की दुर्दशा „ „ „	‒
६	गृहस्थ धर्म „ „ „ „	)॥
७	विधवाविवाह और उनके संरक्षकों से अपील लेखक—ब्र० शीतल प्रसाद जी	)॥
८	उजले पोश बदमाश लेखक अयोध्याप्रसाद गोयलीय	‒
९	अबलाओं के आंसू „ „ „	|
१०	पुनर्लग्न मीमांसा ले० बाबू भोलानाथ मुख्तार बुलन्दशहर	)॥
११	फरियाद बेगमान उर्दू „ „ „	)॥
१२	विधवा विवाह समाधान लेखक सव्यसाची	)॥
१३	जैन धर्म और विधवा विवाह पहिला भाग	‒)॥
१४	जैन धर्म और विधवा विवाह (दूसरा भाग)	|=)
१५	सुधार संगीत माला ले० पं० पूरामल मुशर्रफ जैपुर	॥
१६	त्याग मीमांसा ले० पं० दीपचन्द जी वर्णी	‒)
१७	प्रार्थना स्तोत्र जैन पाठशाला के विद्यार्थियों तथा कन्या पाठशाला के हितार्थ	॥
१८	विधवा विवाह प्रकाश ले० रघुवीरशरण जैन अमरोहा	॥

मिलने का पता—

जौहरीमल जैन सराफ दरीबा कलां, देहली।

ट्रैक्ट नं० ७ 'जाति प्रबोधक' के इसी अङ्क का क्रोड़पत्र

विधवाओं और उनके संरक्षकों से अपील।

लेखक—

जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी

प्रकाशक—

जैन बाल-विधवा विवाह सहायक सभा

दरीबा कलां देहली।

संवत् १९८५

मुद्रक—

गयादत्त प्रेस, क्लोथ मारकेट देहली।

※ मेरे दो शब्द ※

प्रिय पाठकगण ! सब से प्रथम अपनी विधवा बहिनों की पुकार सुनिये और फिर हृदय पर हाथ रखकर विचारिये कि क्या कभी आपने उनकी आहोंका नोटिस लिया? नहीं, कदापि नहीं, हाय शोक ! महाशोक !! देखिये वह अपने भाइयों से क्या प्रार्थना करती है —

किस काम की जिन्दगी तुम्हारी । रक्षा न हुई अगर हमारी॥
तलवार का वक्त अब नहीं है । कांटा सा जिगर में जा गड़ा है॥

मैं अपने को बड़ा ही भाग्यवान समझता हूं कि जैन धर्म-भूषण धर्मदिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने मेरे अन्धकार रूपी परदे को हटा कर सुमार्ग पर लगाया। मैं इस विधवा-विवाह के अति विपरीत था और मैंने इसके वा 'जैन ला' के खिलाफ हिन्दी 'जैन गजट' में लेख भी दिये, परन्तु संयोगवश हमारे आर्गेनाईजिंग इन्सपैक्टर श्रीमान् बाबू बलवन्तराय जैन का एक ब्राह्मणी विधवा से विवाह निश्चित हुआ, उसमें मुझे शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उस समय पूज्य ब्रह्मचारी जी से कुछ देर शंका समाधान होने पर मेरा भ्रम दूर होगया और मैंने समय,काल और व्यवस्था को देखकर यह प्रण किया कि जैन जाति का उद्धार तभी हो सकता है जबकि विधवा बहिनों की करुणा नाद के सामने मस्तक झुकाया जाय और जैन शास्त्रोक्तानुसार उनका शुभविवाह कराते हुये जैन जाति का उत्थान कियाजाय और चौधरी चौकड़ायतों के फंदे और भय से जैन जाति के सच्चे सपूतों को बचाया जाय।

मैं अधिक न लिखते हुए १००८ श्री महावीर भगवान के दरबार में प्रार्थना करता हूं कि वह मेरे नवयुवक भाइयों को ऐसी सुबुद्धि प्रदान करें जिससे कि वह छाती ठोक कर मैदान में आएं और इस शुभकार्य में हमारा हाथ बटायें कि जिस प्रकार हम जैनजाति की भंवरे में पड़ी नय्या को पार लेजावें।

ज्योतिषमार्तण्ड(पं० शीतलप्रसाद जैन, F.A A, रिवाड़ी।

विधवाओं और उनके संरक्षकों से अपील

इक्कीस करोड़ की हिन्दू जाति की आबादी में जब २ दो करोड़ से अधिक विधवाएं हैं तब ११॥ साढे ग्यारह लाख की जैन संख्या में १॥ लाख विधवाएं हैं जब कि विधुर मात्र ६१ हजार हैं। परन्तु कुमारे पुरुष ३ लाख हैं और कुमारी स्त्रियां १८५००० अर्थात् दो लाख से कम हैं। जो जैन समाज को मरने से बचाना चाहते हैं उनको सन १६२१ की जैन मर्दुम शुमारी की रिपोर्ट को भली प्रकार पढ डालना चाहिये। उससे साफ विदित हो जायगा कि जैन लोग जो ८००० आठ हजार प्रति वर्ष घट रहे हैं इसका बड़ा भारी कारण यह है कि जैन जाति में कुमारियों की संख्या कम होने पर भी उनका विवाह कुमारों और विधुरों से करना होता है। पुरुषों का प्रभुत्व होने से वह जिस तरह बनता है एक दफे विवाह के पीछे स्त्री के मरने पर दूसरी दफे कुमारी कन्या को विवाह लेते हैं। यदि कदाचित यह स्त्री भी मर गई तो तीसरी दफे फिर अपनी पुत्री व पोती के समान किसी कुमारी को ब्याह लेते हैं। किसी २ पुरुष को जीवन में ६ या ७ दफे कुमारी को विवाहने का प्रसंग आजाता है। इस प्रकारकी व्यवस्था का कडुवा फल यह होता है कि बहुतसी जवान विधवायें जो बड़ी उमर के पुरुषों को विवाह दी जाती हैं अपने पतिके मरने पर

बिना किसी संतान को पैदा किये हुये बेकाम विधवायें रहकर अपना जिस तिस प्रकार जन्म काटती है। समाज में बाल्य विवाहों की भी कमी नहीं है। निदान १५-१६ वर्ष के बालक ११या१२ वर्षकी कन्यासे विवाह दिये जाते हैं। दैवयोग से यदि यह बालक मर जाता है तो ये बाल विधवायें भी बेकार अपनी जिन्दगी बिताती हैं। ये भी बिना संतानके पैदा किये हुये मर जाती हैं। उधर कुमारी कन्यायें योंही कम हैं तिस पर उनमें से बहुत सी कन्याओं को विधुर पुरुष विवाह लेते हैं। कुमारों की संख्या भी अधिक है इसलिये अधिक कुमार बिन विवाहे तथा बिना किसी संतान को पैदा किये हुए मर जाते हैं। सन १९२१ की रिपोर्ट बताती है कि २० वर्ष से ७० वर्ष व ऊपर तक के कुमार ६२३०८ हैं। जिस जाति में ७० हजार कुमार बिन विवाह रह जावें उस जाति की संतानें अवश्य कम होंगी इसमें कोई संदेह नहीं बुद्धिमान जैन भाई तथा बहिन विचार सकते हैं कि जैन समाज की संख्या को स्थिर रखने वाला समाज के बालक व बालिकायें हैं। जब इनकी उत्पत्ति कम होगी तब अवश्य संख्या घटेगी जो बुरी दशा मर्दुम शुमारी की रिपोर्ट से झलकती है वही बुरी दशा प्रत्यक्ष जैनियों की आबादी को देखने से झलकती है। हम जब अपने भ्रमण में किसी स्थान की दशा को जांचने लगते हैं तो

मालूम होता है कि जहां आज ५० घर हैं वहां २०व२५ वर्ष पीछे २५ घर रह जांयगे क्योंकि ये सब ५० घर जोड़ेवाले नहीं हैं इनमें कितने घरोंमें मात्र कुमारे व विधुर पुरुष हैं व कितने घरों में मात्र विधवाएं ही हैं ।

किसी भी समाज के जीवन को स्थिर रखने के लिये पुरुषों का विवाहित होकर संतान जन्म देना अतिशय आवश्यक है । तब जैन समाज में इस आवश्यकता को कैसे पूरा किया जावे । इसका उपाय यही समझ में आता है कुमारी कन्यायें कुमारों ही को व्याही जावें ऐसा पक्का नियम किया जावे । फिर भी यदि अविवाहित कुमारे रहें तो उनको उनकी उम्र से छोटी बाल विधवाएं व युवती विधवाएं विवाही जावें । तथा वे पुरुष जिनको दुबारा तिबारा या चौबारा विवाह करना हो वे अपनी उम्र से कुछ छोटी विधवाओं को ही विवाहें । समाज में इस व्यवस्था को जारी करने से बिना संतान पैदा किये बहुत कम पुरुष व स्त्रियें मरेंगी । इस व्यवस्था के लिये यह अति आवश्यक है कि विधवाएं अपने जीवन को सफल करें । विधवाओं को अपना जीवन न्याय मार्गी बनाना चाहिये उनको कभी भी व्यभिचार व गुप्त पाप में नहीं फंसना चाहिये । यह व्यभिचार मनुष्य हत्या आदि आदि घोर अनर्थों का कारण है । यदि उनको इस लोक में सदाचार मय जीवन बिताना है और परलोक में

खोटी गति में नहीं जाना है तो उनको व्यभिचार के पाप से अपने को हर तरह बचाना चाहिये। इस पाप से बचने का उपाय यही है कि वे ब्रह्मचर्य व्रत के मतलब को अच्छी तरह समझ लेवें।

ब्रह्मचर्य व्रत दो तरह से पाला जाता है एक पूर्ण या सर्व देश दूसरे अपूर्ण या एक देश। पूर्ण ब्रह्मचर्य में पुरुष को मन वचन कायसे सर्व स्त्री मात्र का व सर्व प्रकार काम भाव का त्याग होता है इसी तरह स्त्री को मन वचन काय से सर्व पुरुष मात्र का व सर्व प्रकार काम भाव का त्याग होता है। अपूर्ण व एक देश ब्रह्मचर्य में पुरुष जिस स्त्री को समाज व नीतिके अनुसार विवाह ले उस स्त्री के सिवाय उसके सर्व अविवाहित व विवाहित स्त्रियों का त्याग होता है इसी तरह स्त्री जिस पुरुष को समाज व नीति के अनुसार विवाहले उस पुरुष के सिवाय उसे अन्य विवाहित व अविवाहित पुरुषोंका त्याग होता है

स्त्री वियोगी पुरुष को अर्थात् विधुर को अपने भावों को व अपनी शरीर की शक्ति को देखना चाहिये कि इन दो प्रकार के ब्रह्मचर्य में से वह किस को पालने की शक्ति रखता है। यदि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य पाल सके तो उसे ब्रह्मचारी रहकर स्वपर कल्याण करते हुये मानव जन्म को सफल करना चाहिये। यदि वह विधुर अपनी शक्ति पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की न देखे तो उसे अपूर्ण या

एक देश ब्रह्मचर्य पालना चाहिये और तब उसको किसी योग्य स्त्री से विवाह करके ग्रही जीवन संतोष से विताना चाहिये—वेश्या व पर स्त्री सेवन आदि अनेक प्रकार व्यभिचारोंसे अपने को इस तरह बचाना चाहिये।

इसी तरह पुरुष वियोगी स्त्री को अर्थात् विधवा को अपने भावों की व अपनी शरीर की शक्ति को देखना चाहिये कि इन दो प्रकार के ब्रह्मचर्यों में वह किस को पालने की शक्ति रखती है। यदि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य पाल सके तो उसको ब्रह्मचारिणी रहकर स्वपर कल्याण करना चाहिये और अपने मानव जन्म को भले प्रकार सफल करना चाहिये। यदि वह विधवा अपनी शक्ति पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की न देखे तो उसे पुरुषकी तरह अपूर्ण या एकदेश ब्रह्मचर्य पालना चाहिये औरतब उस विधवा को उचित है कि वह किसी योग्य पुरुषसे विवाह सम्बन्ध करके ग्रही जीवन संतोष से वितावें, संतानों को जन्म दे और उन्हें पाले।

साधारण जैन भाइयों ने यह भ्रम बना रक्खा है कि विधवा को पुनर्विवाह करने का हक नहीं है। हम जहां तक जैन शास्त्र, नीति व तर्क को समझते हैं उससे हम कह सक्ते हैं कि यह मानना कि विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है किसी भी सुतर्क से सिद्ध नहीं हो सकता है। जो हेतु एक विधुर को पुनर्विवाह करने में है

वही हेतु एक विधवा को पुनर्विवाह करने में है दोनों की अन्तरंग की कामवासना व शारीरिक स्थिति द्वितीय विवाह करने की प्रेरणा करती है। यदि विधवाओं में कदाचित् किसी कारण से रजस्वला होना बंद हो जाता और उन में काम वासना ही न रहती तब तो ऐसा कहा जा सका था कि जिन कारणों से प्रेरित होकर एक विधुर को पुनर्विवाह करना पड़ता है वे कारण विधवामें नहीं पाए जाते इसलिये उनका विवाह करना निरर्थक है परन्तु ऐसा नहीं है दोनों स्त्री और पुरुषों में समान कारण है तब जैसे विधुर को पुनर्विवाह करने का हक है वैसे एक विधवा को पुनर्विवाह करने का हक है। यह विधवा विवाह न व्यभिचार है न अन्याय है किन्तु नीति पूर्ण विवाह सम्बन्ध तथा न्याय युक्त मार्ग है। इसमें श्राविका के ब्रह्मचर्य अणुव्रत में अर्थात् एक देश ब्रह्मचर्य पालने के प्रण में कोई बाधा नहीं आती है।

बहुत से पुरुष युवक इस सच्चे सिद्धांत को समझ गए हैं और इस लिये विधवाओं से लग्न करने को तय्यार हैं—इस संबन्ध में उनके पत्र नित्य ही विधवा विवाह सहायक सभाओं के मंत्रियों के पास आया करते हैं परंतु बाल व युवान विधवाओं की समझ में अभी तक यह सच्चा सिद्धांत नहीं बैठा है। वे विचारी भोली विधवाएं व्यभिचार को पुनर्विवाह से बहुत बुरा समझती

हैं और मन में चाहती भी हैं कि यदि ब्रह्मचर्य नहीं पलना है तो पुनर्विवाह कर डालें परन्तु समाज की लाज के भय से या संरक्षकों के भय से अपना भाव प्रगट करने से हिचकिचाती हैं।

यह हिचकिचाना उनके जीवनका नाशक होरहा है इधर लज्जा वश वे पुनर्विवाह को तय्यार नहीं होतीं हैं उधर काम भाव की प्रेरणा वश गुप्त पाप में फंस जाती हैं और अपना उभय लोक का जीवन बिगाड़ लेती हैं इसलिये हम उन असमर्थ बाल व युवान विधवाओं से कहेंगे कि वे अपने को अधम से बचावें या तो वे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालें या पुनर्विवाह करके एक देश या अपूर्ण ब्रह्मचर्य पालें। व्यसनों में फंसकर अपना अमूल्य जीवन न नष्ट करें। हमारी अपील इन भोली भाली विधवाओं के संरक्षकों से भी है—चाहे वे उनके माता पिता हों, भाई बहिन हों या सास श्वसुर जेठ देवर हों व अन्य कोई संबन्धी हों कि वे विधवाओं को यह सच्चा सिद्धांत समझावें—पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने के भाव हों तो श्राविकाश्रमों में भेजें या वैराग्यके सामानों में रक्खें नहीं तो उनको पुनर्विवाह कराने में तय्यार करके उनके जीवन को गृही जीवन बनवादें जिस से व्यभिचार आदि पापों से बचें।

यदि विधवाओं ने और उनके संरक्षकों ने ध्यान

न दिया तो जो खराबियां जैन समाज में हैं वे कभी भी दूर न होंगी—असदाचार, गुप्त पाप बढ़ता जायगा और समाज की संख्या घटती जायगी और यदि उन्होंने इस सच्चे सिद्धांत पर ध्यान दिया तो कुमारों का, विधुरों का तथा विधवाओं का इन सब का जीवन संतोष रूप हो जायगा- सन्तानों की विशेष उत्पत्ति होगी, समाज की घटी अवश्य दूर होगी और जैन समाज मरने से बचेगी क्योंकि धर्म धर्मात्मा के आश्रय रहता है इससे यदि समाज जीता रहेगा तो धर्म भी देखने में आयगा।

इसलिये जैन धर्म की स्थिति और जैन समाज की रक्षा के लिये विधवाओं को अपना भला या बुरा स्वयं विचारना चाहिये और उनके संरक्षकों को भ्रम दूर करके उनके जीवन को संतोषी व आर्तध्यान रहित बनाना चाहिये स्त्री समाज विद्या के बिना अपने हकों को बिलकुल भूल बैठी है। उसको पराधीनता की बेड़ी ने बिलकुल गुलाम सा बना दिया है। उनकी दशा उन पक्षियों के अनुसार है जिनको पिंजरों में बहुत काल बन्द रक्खा जावे—पीछे यदि छोड़ा भी जावे तो वे फिर पिंजरे में बन्द होने को आजाते हैं। इसी तरह स्त्रियों को गुलामी में रहने की आदत पड़ गई है वे इस आदत को छोड़ नहीं सकती हैं यही उनको आपत्तियों में पड़ने का कारण है। हम यहां स्त्री समाज को उसके कर्तव्य बताते हैं:—

(१) पहिला कर्तव्य तो यह है कि खूब विद्या पढ़ें, शरीर से परिश्रम करना सीखें. घर के काम बड़ी खुशी से करें, आटा पीसने की, झाड़ू देने की, अन्न चुगने की, सफाई रखने की, पानी भरने की, रसोई बनाने की, कपड़ों को साफ रखने की, आदतें बनालें। प्यार से मीठे वचन बोलने की आदत डालें। विद्या पढ़ती हुई अपने चरित्र पर पूरा ध्यान रक्खें। जो कन्या चरित्र पर पूरा ध्यान नहीं देती है वह अच्छी गृहस्थ महिला नहीं बन सकती है एक कन्या को शुरू से ही नीचे लिखे आठ पापों से अपना मन अलग रखना चाहिये।

(१) जान बूझकर किसी मनुष्य को या पशु पक्षी को सताना न चाहिये न उसके प्राण लेना चाहिये, दया धर्म को पालना चाहिये. काम काज करते हुये देखभाल करके करना चाहिये जितनी जीवों की रक्षा होगी उतना भला होगा। पानी सदा छानकर पीना पिलाना चाहिये, दयाभाव रखकर जो कोई भूखे गरीब अपाहज भाई व बहन हों उनको भोजन व वस्त्र देना चाहिये भूखे जानवरों को, पक्षियों को खिलाना चाहिये सब से प्रेम रखना चाहिये, रोगी आदमियों की सेवा टहल करनी चाहिये परन्तु यदि कोई चोर बदमाश सतावे तब उस पर दया न करनी चाहिये उसको मार भगाना चाहिये और अपने जान माल को व अपने शील को बचाना चाहिये इसलिये

कन्याओं को कुछ कसरत भी सीख लेनी चाहिये, लाठी आदि चलाना भी जान लेना चाहिये जिससे संकट पड़ने पर अपनी रक्षा कर सकें इस तरह अहिंसा अणुव्रत पालना चाहिये।

(२) सत्य वचन सदा बोलना चाहिये, ऐसा वचन नहीं कहना चाहिये जिससे दूसरे का नुकसान हो जावे। पर को बुरा करने वाला सत्य वचन भी झूठ है। कड़वा वचन, पर की निन्दा का वचन, गाली गलौज का वचन, कठोर वचन, यह सब झूठ है—स्त्री की मुख की शोभा सत्य हितकारी वचनों से है झूठ बोलना महापाप समझना चाहिये। सत्यवादीको कोई भय नहीं रहता है। कन्याओं को मीठे वचनों के द्वारा अपने घर वालों को अपने वश करलेना चाहिये। मीठा हितकारी वचन तो जगत भर को वश कर सकता है।

(३) कन्याओं को कभी भी चोरी करने की आदत न डालना चाहिये। घर में खाने पीने की सब चीज़ोंको माता पिता से पूछ कर लेना चाहिये चुराकर एक लड्डू भी खाया जायगा तो आदत बुरी हो जायगी। मांगकर लेना अच्छा है परन्तु चोरी करना अच्छा नहीं है चोरी से जगत में विश्वास उठ जाता है।

(४) कन्याओं को शीलव्रत की महिमा सीखनी चाहिये जहां तक विवाह न हो बहनों को पूरा ब्रह्मचर्य

मन लगाकर पालना चाहिये। अपने मन में कभी भी किसी दूसरे पुरुष से मिलने का बुराभाव न लाना चाहिये न आपस में विवाह शादी की चर्चा लाना चाहिये, न खोटे गीत गाना चाहिये, न उन स्त्रियों की संगत करनी चाहिये जो बुरे चारित्र वाली हैं। कभी लड़कों से व लड़कियों से आपस में हंसी मश्करी न करनी चाहिये शील धर्म बड़ा धर्म है। जो स्त्री शील बिगाड़ देती है उसका पाप छिपता नहीं है। वह यहां भी अपना जन्म नाश करती है और परलोक के लिये नरकादि गति बांध लेती है जग में अपयश पाती है। कन्या को उचित है जब तक विवाह न हो विद्या पढ़ने में मन लगावे ब्रह्मचर्य पाले, ब्रह्मचारिणी रहे, पान न खावे, खाट पर न सोवे, शृंगारित कपड़े न पहने सादगी से रहे, गहनों का शौक न करे, मेले तमाशों में न जावे, कहानी किस्से न पढ़े, बाजार की चाट न खावे, शुद्ध घर का भोजन दो दफे संतोष से करले। मन अपना विद्यालाभ व धर्म में लगावे रोज भगवान का ध्यान करे, पूजन करे, शास्त्र पढ़े, गुरु महाराज का कई स्त्रियों के साथ दर्शन करे, उनका उपदेश सुने, उनको भक्ति पूर्वक दान देवे नियम आखड़ी लेते रहे, सवेरे व शाम को थोड़ी देर अलग बैठ करके सामायिक ध्यान करती रहे। जहां तक हो दिन में खावे जो कन्या धर्म में चित्त रक्खेगी, सतसंगति में रहेगी वही

ब्रह्मचर्य को पाल सकेगी। ब्रह्मचर्य ही से कन्या का शरीर दृढ़ बनता है।

(५) परिग्रह की ज्यादा लालसा न रखनी चाहिये घर में जो संतोष से मिले उसे खाकर व पहन कर मनको आनन्द में रक्खे।

(६) कभी मांस को न खावे, वह डाक्टरी दवा भी न खावे जिन में मांस का मेल हो। सड़ी बुसी बासी चीज खाने से भी मांस का दोष लगता है उससे भी जहां तक हो बचे।

(७) नशा न पीवे, कन्या को चाहिये कि कभी भूल कर भी शराब न पीवे, भांग न पीवे, कोकेन न खावे। नशा पागल बना देता है नशे की आदत से प्राणी नशे-बाज़ बन जाता है जिन डाक्टरी दवाओं में शराब पड़ी हो उनको भी न खावे।

(८) मधु न खावे—मधु मक्खियों को कष्ट देकर व उनके बच्चों को मारकर व निचोड़ कर आता है व मांस के समान उसमें कीड़े पैदा होते हैं व मरते हैं।

इन आठ बातों का पालन भले प्रकार करती रहे जब तक विद्या पढ़े और विवाह न होवे।

(२) दूसरा कर्तव्य यह है कि १६वां वर्ष जब शुरू हो तब अपना विवाह कराने का बिचार करें १६ वर्ष से पहले विवाह न करावें माता पिता को समझादें कि जल्दी

हम विवाह न करेंगे। तथा जिसके साथ माता पिता ने विवाह ठीक किया हो उस पुरुष को भी समझ लें कि वह २० वर्ष के अनुमान है या नहीं, कहीं छोटा तो नहीं है या बूढ़ा तो नहीं है जवान सदाचारी कमाऊ वर के साथ विवाह करें- यदि वर पसंद नहीं हो तो तुरन्त माता पिता को मना करदें यदि न माने तो ज़िद करें तथा परोपकारी भाई हों उनको अपने मनका दुःख कहकर उनकी मदद से अनमेल विवाह को रोकें आज कल लोभी माता पिता पैसे के लोभ से बूढ़े व निर्बल पुरुष के साथ विवाह पक्का कर देते हैं इस जुल्म को न होने दें। यदि माता पिता न मानें तो पुलिस में खबर देकर या मजिस्ट्रेट को लिखकर इस अन्याय से बचें।

(३) तीसरा कर्तव्य यह है कि विवाह हो जाने पर कभी भी परपुरुष की चाह न करें अपने पति की हर-तरह भक्ति करें व योग्य सन्तान को पैदा करें सन्तान को अच्छी आदतें सिखावें। घर में सब से प्रेम रक्खें किसी से कठोर वचन बोलकर लड़ाई झगड़ा न करें।

(४) यदि संतान रहित हों और विधवापना आजावे तब अपने मन को देखें कि सच्चे हृदय से ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति हो तबतो पुनर्विवाह न करें परन्तु यदि मन वश में न हो तो कभी भी व्यभिचार में न पड़ें और खुशी से किसी सभा द्वारा पुनर्विवाह कराकर ग्रही धर्म में रहें।

(६) यदि कदाचित् संतान होने पर भी मन काबू में न आता हो तो समाज के विचारवान भाइयों से सलाह करके संतान का योग्य प्रबंध करके फिर पुनर्विवाह करें परन्तु व्यभिचार के नरक में कभी न पड़ें।

प्यारी बहनो—तुम्हारे हित के लिये ऊपर की शिक्षा दी गई है उस पर निर्भय हो चलो, पाप से सदा बचो—यह बात अच्छी तरह याद रक्खो कि जैसे विधुर को पुनर्विवाह का अधिकार है वैसे ही विधवा को है। दोनों को श्राविकाचार में अणुव्रती कहते हैं। विधवा विवाह अधर्म नहीं है इसे नीति व्यवहार समझो व्यभिचार महा अधर्म है उसमें अपने को कभी न डालो।

विधवाओं के संरक्षकों को भी इस लेख पर पूरा ध्यान देकर विधवाओं के जीवन सुधारने चाहियें।

आवश्यक सूचना।

दिल्ली में एक जैन बाल विधवा विवाह सहायक सभा स्थापित हुई है। वे सज्जन जो विधवा विवाह के सिद्धांत से सहमत हों, जो सभा के मेम्बर होना चाहें या जिन्हें अपने लड़के या लड़की का ऐसा सम्बन्ध करना स्वीकार हो, वे नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें: –

उपमंत्री--